श्रीहरिः

आइये !

यह जानेका नहीं, आनेका मार्ग है । प्रवृत्ति नहीं, निवृत्ति है । बहिरङ्ग नहीं, अन्तरङ्ग है । जहाँ आप हैं, वहीं है । मार्ग कठिन तब होता है जब कहीं जाना पड़े, कुछ समय लगाना पड़े, कुछ देना पड़े, कुछ करना पड़े, किसी दूसरेको मनाना पड़े । भक्तिमार्गमें ऐसा, यह सब कुछ नहीं है । भावकी बात । मिले हैं तो मिले हैं । बिछुड़े हैं तो बिछुड़े हैं । मनसे बिछुड़कर रो लो, मनसे मिलकर सुखके समुद्रमें डूबो-उतराओ । कौड़ी लगा न छदाम, बिना गुठलीके आम । इससे बढ़कर और क्या सुगमता हो सकती है ? उसपर विश्वास करो, उससे प्रेम करो, 'मैं' न मानकर गुम-सुम बैठ जाओ । नाम लेकर पुकारो, चीखो-चिल्लाओ या मौन हो जाओ । यह सब होना चाहिये उसके लिये, उसके रूपमें उसको देखते हुए, 'मैं' को उसमें डुबोकर । आइये, इस सुगम भक्तिमार्ग पर । कहीं जाइये मत, केवल लौट भर आइये । परन्तु गये कहाँ हैं कि लौट आवें ?

बिल्कुल ठीक, आप वहीं हैं जहाँ जाना चाहते हैं । आप उसीको देख रहे हैं जिसको देखनेके लिये व्याकुल हैं । आप उसीसे मिले हुए हैं जिसका मिलना अभी असम्भव मालूम पड़ता है । वह अभी, यहीं और यही है । वह तुमसे अलग हुआ नहीं, अलग है नहीं, तुम्हारा बुद्धिका ही विपर्यय है, चित्तका ही विक्षेप है, मनकी ही मलिनता है । यह पहचाननेकी भूल मिलनमें ही विस्मरण है । आप अपने प्यारेकी सेजपर उसके साथ मिलकर शयन करते हुए ही पराये घर और परायेके साथ सोनेका स्वप्न देख रहे हैं । बस, यही स्वप्न भङ्ग करना है । सो-जागकर हो,

उछल-कूदकर हो, चिल्लाने से हो या चुप लगा जानेमें। कोई दूसरा जगाये, अपना प्यारा ही जगा दे या स्वयं ही जग जाओ। शरीर पर पानी छिड़कना पड़े, साँस बन्द करना पड़े चाहे और कुछ भक्ति भावका क्रियामें आग्रह नहीं है। द्रव्यकी अपेक्षा नहीं है। आकारविशेषमें यह चिपका हुआ नहीं है। शून्य, महाशून्य पार करनेकी नहीं, केवल सावधान होनेकी, जग जानेकी आवश्यकता है। आप देखेंगे कि आप उसके अनुराग भरे उत्सङ्गमें ही रंगरेलियाँ कर रहे हैं और वह आपके कोमल प्रेमपूर्ण अन्तरङ्गमें ही रस रङ्गकी पिचकारियाँ चला रहा है। न उससे दूर आप, न आपसे दूर वह। न देर न सबेर, केवल मनका फेर।

आइये, सुगम भक्ति मार्गपर मिलिये अपने प्राणप्रियतम, हृदयेश्वर परम प्रेमास्पदसे।

बम्बई
संन्यास जयन्ती
माघ शुक्ल एकादशी
संवत् २०१८

—अखण्डानन्द सरस्वती

श्रीहरिः

नाम और प्रणाम

नर्मदाका पावन तट । सायङ्कालीन सन्ध्या वन्दनके पश्चात्का समय । नर्मदाकी लहरोंमें चन्द्रज्योत्स्ना चमक रही है । पक्षियोंका कलरव शान्त है । एक सौम्यमूर्ति महात्मा तटके पास ही एक शिलाखण्डपर बैठकर ध्यानमग्न हो रहे हैं । शान्तिका साम्राज्य है । इसी समय एक तरुण जिज्ञासुने आकर उनके चरणोंका स्पर्श किया । महात्माजीकी आँखें कुछ खुलीं मुखपर मन्द मन्द मुसकराहट आयी । उन्होंने कहा—'बेटा, शान्तिसे बैठ जाओ।' युवकने आज्ञापालन किया ।

क्षणभर ठहरकर महात्माजीने कहा—'बेटा ! बोलो, क्या पूछना चाहते हो ?'

जिज्ञासु—'भगवन्, मैं आपकी आज्ञाओंके अतिरिक्त और जानता ही क्या हूँ कि प्रश्न करूँ । मेरे तो लोक-परलोक, ईश्वर-परमेश्वर—सब आप ही हैं । आप सबके सम्मान, सबकी पूजाका उपदेश करते हैं, इसलिये करता हूँ । उनके अस्तित्व और नास्तित्वके आप ही परम प्रमाण हैं । आप जो उचित समझिये, उपदेश कीजिये ।'

महात्माजी—'बेटा, तुम्हारा कहना ठीक है । फिर भी जब साधक साधनामें लगता है तब उसके सामने कितनी ही कठिनाइयाँ आती हैं, कितनी ही स्थितियाँ प्राप्त करनेकी इच्छा होती है । मनको एकाग्र करनेकी चेष्टा करते ही उसके सामने अनेक प्रकारके

लुभावने हृदय उपस्थित होते हैं। उनके सम्बन्धमें प्रश्न किये बिना काम नहीं चलता। प्रश्नसे मालूम हो जाता है कि यह साधक अन्तर्मुख हो रहा है या नहीं, अथवा इसकी अन्तर्मुखता किस श्रेणीकी है। इसके प्रश्नमें विचार, कौतूहल, जिज्ञासा अथवा श्रद्धाका भाव है, इस बातका पता चल जाता है। यदि अधिकारका पता चले बिना ही कोई बात कही जाती है तो वह साधकके चित्तपर बैठती नहीं। ऊँचे अधिकारकी बात वह ग्रहण नहीं कर सकेगा और नीचे अधिकारकी बातमें रुचि नहीं होगी। इसीसे शास्त्रमें निषेध है कि 'नापृष्ट कस्यचिद् ब्रूयात्'—'बिना पूछे किसीको न बतलाये।' आजकल लोग वर्षोंतक अच्छी-अच्छी बातें सुनते हैं, पढ़ते हैं और कहते हैं, परन्तु अधिकारके अनुरूप न होनेके कारण उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिये अपनी रुचि, प्रवृत्ति और अधिकारके प्रकाशके लिये अपने हृदयकी बात अवश्य पूछनी चाहिये।'

जिज्ञासु—'भगवन्, महात्मालोग तो स्वयं ही सर्वज्ञ और अन्तर्यामी होते हैं। वे बिना पूछे भी सब कुछ जानकर अधिकारके अनुसार उपदेश कर देते हैं।'

महात्माजी—'वैसे तो सर्वज्ञ, शक्तिमान् एवं परम दयालु परमात्मा सबके हृदयमें ही बैठे हुए हैं, परन्तु उनसे भी प्रार्थना करनी पड़ती है। यद्यपि वे सबको स्वीकार किये हुए हैं, फिर भी उस स्वीकृतिसे न जीवके दुःखकी निवृत्ति होती है और न तो सुख-शान्तिका अनुभव ही होता है। 'उन्होंने स्वीकार कर लिया'—इस भावका उदय आत्मनिवेदन करनेके पश्चात् ही होता है। इसी प्रकार यद्यपि महात्मा पुरुष सबके कल्याणका ही उपदेश किया करते हैं, फिर भी यह उपदेश मेरे लिये है, इस बातका निश्चय प्रश्नसे ही होता है। यदि बिना पूछे ही किसी उपदेशको ऐसा

मान लिया जाय कि यह मेरे लिये है तो आगे चलकर यह शङ्का हो सकती है कि 'शायद वह उपदेश मेरे लिये रहा हो या न रहा हो।' अपने मनकी मान्यतापर विश्वास कर लेना खतरेसे खाली नहीं है, क्योंकि मनकी गति अनिश्चित है। इसलिये अपने सम्बन्धमें प्रश्न करके सर्वदाके लिये पक्का निश्चय कर लेना चाहिये। देखो, शास्त्रमें यह बात स्पष्टरूपसे आती है कि एक बार भगवन्नामके उच्चारण, श्रवण अथवा स्मरणसे परम पदकी प्राप्ति हो जाती है। यथा—

> यन्नामैकं कर्णमूलं प्रविष्टं
> वाचान्विष्टं चेतनासु स्मृतं वा।
> दग्ध्वा पापं शुद्धसत्त्वात्तदेहं
> कृत्वा साक्षात् सविधत्तेऽनवद्यम्॥
>
> (सात्वततन्त्र, नवम पटल श्लो० ५८)

'भगवान्‌के एक नामके श्रवण, उच्चारण अथवा स्मरणसे समस्त पाप भस्म हो जाते हैं, शरीर दिव्य हो जाता है और शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है, केवल नामके सम्बन्धमें ही नहीं, नमस्कारके सम्बन्धमें भी ऐसी बात आती है कि जिसने एक बार भी भगवान्‌को नमस्कार कर लिया, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। वेदान्त-शास्त्रोंमें तो यहाँतक कहा जाता है कि आत्मा तो नित्य मुक्त ही है, बद्धता एक भ्रम है। यद्यपि मुक्ति इतनी सरल, सुगम और नित्य प्राप्त है, फिर भी उसके सम्बन्धमें निश्चय न होनेके कारण जीव भगवद्विमुख और विषयपरायण हो रहा है। यह उसके निश्चयकी न्यूनता है। यह निश्चय स्वयं ही करना पड़ता है। किसी दूसरेके लिये कोई दूसरा निश्चय कर दे, ऐसा नहीं हो सकता। इतना ही साधकका पुरुषार्थ है। फिर तो उसके जीवनसे

साधनाकी धारा फूट पड़ती है, उसका चलना-फिरना, हँसना-बोलना—सब साधनरूप हो जाता है।'

जिज्ञासु—'भगवन्, आपने अभी नाम और नमस्कारकी महिमा बतलायी है। नामकी महिमा तो कई बार सुननेको मिलती है। आप कृपा करके 'नमः' की महिमा बतलाइये।'

महात्माजी—'वास्तवमें नाम और 'नमः' में कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही शब्द 'नम् प्रह्वत्वे' धातुसे बनते हैं। 'प्रणाम' शब्दमें तो 'प्र' उपसर्गयुक्त 'नाम' ही है। और वास्तवमें 'नाम' और 'नमः' दोनों ही भगवत्स्वरूप हैं। साधकोंकी तीन श्रेणियाँ मानी गयी हैं—एक तो वह जो भगवान्‌से अर्थ, भोग अथवा मोक्षकी प्रार्थना करता है। उसके लिये भगवान् साधन हैं और अर्थादि वस्तु साध्य है। दूसरी श्रेणीके वे हैं जो अर्थ, धर्म, क्रिया, मोक्ष आदि वस्तुओंके द्वारा भगवान्‌को प्राप्त करना चाहते हैं। उनकी दृष्टिमें अन्य सब कुछ साधन है और भगवान् साध्य हैं। ये पहली श्रेणीके साधकोंसे अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। तीसरी श्रेणीके साधक वे हैं जो साधन और साध्य दोनों ही रूपोंमें भगवान्‌के दर्शनकी चेष्टा करते हैं और दर्शन करते हैं। ये साधक तो भगवद्रूप ही हैं। इनमें श्रेष्ठ, कनिष्ठ आदि श्रेणियों का भेद नहीं है। इन्हें शरणागत, भगवत्प्रपन्न आदि नामोंसे कहा जाता है। वास्तवमें भगवान्‌के अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं, इसलिये यह साधना, यह भाव, यह स्थिति भगवान्‌से सर्वथा अभिन्न है। इसीसे 'नाम' और 'नमः' दोनों भगवद्रूप हैं। इस स्थितिमें नमस्कर्ता, नमस्कार्य, नमः-शब्द, नमः-क्रिया, नमः-भाव और नमः-का ज्ञान एक ही पदार्थ हैं। और नमस्कारकी यही सर्वोत्तम स्थिति है।'

जिज्ञासु—'भगवन्, नमस्कारका स्वरूप क्या है?'

महाराजजी—'प्रत्येक शब्दके तीन भाव होते हैं—स्थूल, सूक्ष्म और पर। जहाँ वह शब्द कर्मेन्द्रियोंके द्वारा प्रयुक्त होता है अथवा कर्मेन्द्रियोंके द्वारा क्रियामें उतरता है, वहाँ उसका स्थूल भाव है। जैसे वाणीसे 'नमस्कार' कहना, शरीरसे दण्डवत् करना। इस क्रियासे अपनी नम्रता प्रकट होती है। जिसको नमस्कार किया जा रहा है वह अवस्थासे, जातिमें, गुणसे, श्रेष्ठ है, उसकी श्रेष्ठता और अपनी कनिष्ठताकी स्वीकृति ही नमस्कार-क्रियाका स्थूल अर्थ है। इस क्रियाके साथ श्रेष्ठताकी सीमा बनी रहती है-'यह माता है, पिता है, गुरु है, इत्यादि। जहाँ यह क्रिया भगवान्‌के प्रति प्रयुक्त होती है, वहाँ उनकी असीम श्रेष्ठता मनमें आती है। इससे नियोज्य-नियोजकभावकी स्फूर्ति होती है। शरीर, मन और वाणीसे उनकी आज्ञाका पालन हो, मेरा रोम-रोम उनके इशारेपर नाचता रहे, उनके अनुकूल क्रिया हो, उनकी सेवा हो, उनके प्रतिकूल अथवा सेवासे रहित कोई भी क्रिया न हो। इस प्रकार नमस्कार-क्रियाके द्वारा अनुकूलताका सङ्कल्प और प्रतिकूलताके वर्जनका भाव दृढ़ होता है। अपनी अल्पज्ञता, अल्पशक्तिता और अल्पसुखताका भान होता है और भगवान्‌के पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शक्ति एवं पूर्ण सुखका चिन्तन होने लगता है। इस समय यही निश्चय होता है कि वे अंशी हैं, मैं अंश; वे शेषी हैं, मैं शेष, वे सेव्य हैं, मैं सेवक। वे ही मेरे रक्षक हैं, हमेशासे रक्षा करते आये हैं और करेंगे। मैं उनकी शरणमें हूँ। इस प्रकारके भावका उदय 'नमः' शब्दका सूक्ष्म अर्थ है।

'बेटा! जीव अज्ञानके कारण अनादिकालीन वासनासे विजड़ित होकर क्रिया, भावनाकी प्रवृत्ति-निवृत्ति आदिमें अपनेको स्वतन्त्र मानने लगता है और स्थिति, भाव, क्रिया एवं पदार्थोंपर ममत्व कर बैठता है। इसकी निवृत्तिसे ही अर्थात् अहङ्कारमूलक

स्वातन्त्र्य और ममताके नाशसे ही भगवत्प्राप्ति होती है। 'नम' पदमें ममता और अहङ्कारकी निवृत्ति ही भरी हुई है। ये अहङ्कार और ममता मेरे नहीं हैं, इस प्रकारकी वृत्तिका उदय होनेपर 'नम' पदके सूक्ष्म अर्थका साक्षात्कार होता है। 'म' का अर्थ है अहङ्कार और ममता 'न' का अर्थ है उनका अभाव। नमस्कारका सीधा अर्थ है—'हे प्रभो! जिन वस्तुओंको भूलसे मैं अपनी मानता था, वे तुम्हारी हैं स्वयं मैं भी तुम्हारा हूँ।' शास्त्र कहते हैं—

> **अनादिवासनाजातैर्बोधैस्तैस्तैर्विकल्पितै ।**
> **रूपित यद्दृढ चित्त स्वातन्त्र्यस्वत्वधीमयम् ॥**
> **तत्तद्द्वैष्णवसार्वात्म्यप्रतिबोधसमुत्थया ।**
> **नम इत्यनया वाचा नन्त्रा स्वस्मादपोह्यते ॥**
>
> (अहिर्बुध्न्यसंहिता ५२। ३०-३१)

अनादिकालीन वासनाओंसे भिन्न भिन्न प्रकारके व्यावहारिक ज्ञानोंका उदय हुआ करता है। उनके दृढ संस्कारसे चित्तमें अपनी स्वतन्त्रता और स्वत्वका भाव जम जाता है। सब कुछ भगवान्का ही है—इस प्रकार उस व्यावहारिक ज्ञानका विरोधी पारमार्थिक ज्ञान उदय होता है, तब उसी भावको लेकर 'नम' इस पदका उच्चारण होता है, इसके द्वारा नमस्कर्ता अपने पूर्वोक्त दोनों भावोंको निकाल फेंकता है। तब नमस्कारका अर्थ क्या है?—अहङ्कार और ममताको निकाल फेंकना। इनके निकलते ही भगवद्भावकी अनुभूति होने लगती है। वह अनुभूति केवल बौद्धिक अथवा मानसिक नहीं रहती, समस्त इन्द्रियाँ और रोम रोमसे उसका अनुभव होने लगता है। तब अपना अन्त करण, शरीर एवं सारा जगत् भगवान्का और भगवन्मय दीखता है। यह 'नम' पदकी स्थिति है और यही

उसका परम अर्थ है। तब शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि और जीवका जो कुछ वास्तविक स्वरूप है वह भगवत्प्रेरित, भगवन्मय और भगवत्स्वरूपरूपसे स्फुरित होने लगता है। भगवान्की कृपाकी, प्रेमकी, तत्त्वज्ञानकी और समाधिकी यही स्थिति है। यह 'नमः' पदके उच्चारणमात्रसे प्राप्त होती है।'

जिज्ञासु— भगवन्, इसके सम्बन्धमें कोई अनुभव सुनाइये!'

महात्माजी—'एक बार मैं अपने गुरुदेवके सम्मुख बैठा हुआ था। मैंने प्रार्थना की—गुरुदेव, आप कहते हैं कि आत्मसमर्पण एक ही बार होता है, वह कैसा आत्मसमर्पण है? वही करवा दीजिये न? गुरुदेवने कहा—अच्छी बात, करो। संसारकी सभी वस्तुएँ भगवान्के चरणोंमें अर्पित हैं। वे सदासे अर्पित हैं ही। उन्हें अनर्पित समझना अज्ञान था। वे भगवान्की हैं, इस ज्ञानसे वह निवृत्त हो गया न? मैंने कहा— निवृत्त हो गया। उन्होंने पूछा—अच्छा, यह शरीर किसका? मैंने कहा—उनका। गुरुदेवने कहा—अच्छा, यह समझ किसकी? मैंने कहा—मेरा। वे हँसने लगे। उन्होंने कहा—यह समझ भी दे डालो। मैंने कहा—ठीक है। अबतक जो कुछ समझ रहा हूँ या समझूँगा सब उनकी लीला, सब वे। उन्होंने कहा—इतनेसे ही आत्मसमर्पण नहीं हुआ। 'मैंने समर्पण किया'—यह भाव भी छोड़ना होगा। उन्होंने ग्रहण किया, यह भाव भी नहीं बनता। समर्पण और ग्रहण दोनों ही असमर्पित और अगृहीत वस्तुके सम्बन्धमें होते हैं। भगवान्के लिये वैसी कोई वस्तु नहीं है। तुम्हारे मनमें जो असमर्पित, अगृहीतकी भावना थी वह निवृत्त हुई। अब तुम स्वयं अपने-आपको समर्पित करो। मैंने कहा—यह मैंने अपने-आपको भगवान्के चरणोंके समर्पित किया। गुरुदेवने

हँसकर कहा—इस समर्पण क्रिया अथवा भावनाका कर्ता कौन है ? मैंने कहा—मैं। उन्होने कहा—तब समर्पण कहाँ हुआ ? तुम अपनी की हुई समर्पण क्रिया अथवा भावनाको बदल भी सकते हो। इसलिये 'मैं असमर्पित हूँ' इस अज्ञानकी अभी पूर्णतः निवृत्ति नहीं हुई। देखो! तुम, मैं और सब कुछ—जो कुछ था, है और होगा—सब भगवान्‌को समर्पित है, भगवन्मय है और भगवत्स्वरूप है। समर्पणक्रिया अथवा भावना नही करनी है। अपनी क्रिया और भावनाके कर्तृत्वको मिटा दो। वास्तवमें मिटाना भी नहीं है। मिटा हुआ है। देखो, देखो, तुम्हारा देखना भी तो नहीं है।' गुरुदेव इस प्रकार कह रहे थे और मैं एक अनिर्वचनीय स्थितिमे प्रवेश करता जा रहा था। मैंने सुखका समुद्र देखा, शान्तिका साम्राज्य देखा और ज्ञानका असीम आलोक देखा। सुख, शान्ति और ज्ञानका नाम तो इस समयकी दृष्टिमे है। वस्तुतः परमात्माके स्वरूपमे सुख शान्ति और ज्ञान कहनेके लिये भी कुछ नहीं है। वस्तुएँ, क्रियाएँ, इन्द्रियाँ और उनका अभाव—सब परमात्मासे एक हो गया। वह नमस्कारकी वास्तविक स्थिति थी।'

जिज्ञासु—'फिर आपकी वह स्थिति टूटी या नहीं ? वहाँसे उठनेपर गुरुदेवने क्या आदेश दिया ?'

महात्माजी—वह स्थिति तो एकरस है। वह स्मृति विस्मृति, जीवन-मरण, सबमें एक सी रहती है। उसमें विक्षेप और समाधि एक हैं। वह कुछ भी नहीं है और वही सब कुछ है। थोड़ी देरके बाद जब मुझे बाह्य ज्ञान हुआ, तब गुरुदेवने कहा—जाओ, अब तुम अपने जीवनके द्वारा, मन, वाणी और शरीरके द्वारा निरन्तर भगवान्‌की आराधना उनके नामका जप करते रहो। भगवान्‌की आराधना, क्या है ?

रागाद्यदुष्टं हृदयं वागदुष्टानृतादिना ।
हिंसादिरहितः कायः केशवाराधनं त्रयम् ॥

(प्रपन्नपारिजात)

'अन्तःकरण में राग-द्वेष न हो; वाणीमें असत्य, कटुता आदि न हो और शरीरसे हिंसा आदि न हो—यही भगवान्‌की आराधना है।' मैं तभीसे भगवान्‌की इच्छाके अनुसार नर्मदा-तटपर रहता हूँ, उनके इच्छानुसार कृष्ण-कृष्णका जप करता रहता हूँ। सब ओर भगवान्‌के ही दर्शन हो रहे हैं।'

जिज्ञासु—'भगवन्, मैं तो आपके श्रीचरणोंमें ही नमस्कार करता हूँ। आपकी श्रीचरणोंकी प्राप्ति ही मेरे लिये भगवत्प्राप्ति है।' नर्मदाजी अनवरत बह रही थीं, चन्द्र आकाशके मध्यभागकी ओर आ रहे थे, लहरें लहरा रही थीं, हवा चल रही थी और जिज्ञासु महात्माजीके चरणोंपर गिरकर भगवत्स्पर्शका आनन्द ले रहा था।

सत्सङ्ग

'हाय पैसा! हाय पैसा!' की करुण चीख कानोंका परदा फाड़े डालती है। भला यह भी कोई मनुष्यता है! जिसका सब कुछ होना चाहिये मनकी शान्तिके लिये, भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये, वही मानव आज कौड़ी-कौड़ीके लिये दर दर भटक रहा है। कहाँ क्षणभरके लिये भी तो उसे शान्ति मिल जाती। बाबाने आगे कहा—'परन्तु यह सब किसलिये? जिस सुखके लिये यह परिश्रम किया जा रहा है, उसे पानेके पहले ही यदि पागल हो गये, सभीके लिये चल बसे तो वह किस काम आयेगा? उससे कौन सी साध पूरी होगी? भैया! सच्ची बात तो यह है कि जगत्‌की सारी सम्पत्ति भी मनकी एक क्षणकी शान्तिकी तुलनामें कुछ भी नहीं है।'

बाबा बोलते गये—'तुम महात्मा लीलाशीयको तो जानते हो न? वे जब डाक्टरी पढ़ रहे थे, उनका नाम था रामहरि। उस समय कालेजमें लड़कियों और लड़कोंमें बड़ी चख-चख चल रही थी। एक दिन किसी लड़कीसे कालेजकी कोई वस्तु नष्ट हो गयी। लड़कियोंने एक मतसे उसकी जिम्मेवारी रामहरिपर थोप दी। अधिकारीने रामहरिको बुलाया और डर रामहरिने न उस अपराधको स्वीकार किया, न अस्वीकार, तब उसने उनपर पचास रुपया जुर्माना कर दिया। उन्होंने चुपचाप जुर्मानेकी रकम दाखिल कर दी। लड़कोंने इकट्ठा होकर रामहरिकी इस चुप्पीका विरोध किया और कहा कि 'तुम इसकी अपील करो। हमलोग यह बात प्रमाणित कर देंगे कि तुमने यह वस्तु नष्ट नहीं की थी, वह काम

अमुक लड़कीका था। तुम्हारे रुपये वापस मिल जायँगे।' रामहरिने कहा—'आप लोगोंका कहना ठीक है। यदि दस-पाँच दिन तक प्रयत्न किया जाय, प्रमाण इकट्ठे हों, सोच-विचारकर काम हो तो मेरे पचास रुपये लौट सकते हैं। परन्तु पचास रुपयोंके लिये मैं अपने मनको इतने समयतक बेचैन नहीं रखना चाहता। प्रमाणित करनेकी चिन्ता, तरह-तरहकी सन्दिग्ध और व्यर्थका उद्वेग मोल लेकर मैं पचास रुपये नहीं चाहता। जब लोग भाजनके लिये, कपड़ेके लिये, मूर्खमूर्खकी बनावट, शान-शौकत और आमोद-प्रमोदके लिये हजारों रुपये पानीकी तरह बहा देते हैं तब मैं अपने मनको बेचैन होनेसे बचानेके लिये पचास रुपयोंका त्याग कर दूँ, इसमें क्या बुरा है? रुपये गये तो गये, मेरा मन तो शान्त रहेगा न?' रामहरिकी इस बातका लड़कापर तो प्रभाव पड़ा ही, लड़कियाँ भी प्रभावित हुए बिना न रहीं। उन्होंने पश्चात्ताप किया, क्षमा माँगी, पचास रुपये लौटा दिये और उनका आपसका मन-मुटाव हमेशाके लिये मिट गया। इसका यह अर्थ नहीं कि धन कोई चीज ही नहीं है। वह एक उत्तम वस्तु है परन्तु है मनकी शान्तिके लिये। मनको शान्त रखते हुए ही उसे कमाओ भोगो और छोड़ दो। उसके कमाने, माँगने या त्यागनेमें मनकी शान्ति न खो बैठो। उसके द्वारा तुम्हारी सेवा होनी चाहिये, तुम उसके सेवक नहीं हो।'

मैंने पूछा—'बाबा, आप जो बात कह रहे हैं, वह धनियोंके लिये भले ही उपयोगी हो, उससे भला गरीबोंका क्या सन्तोष हो सकता है?'

बाबाने कहा—'तुम तो पागलपनकी बात करते हो। गरीब कौन और धनी कौन? गरीब और धनी शरीरके आसपास रुपयोंके ढेर रहने या न रहनेसे नहीं होते। भगवान्की वस्तुका भ्रमवश

अपनी समझकर अभिमान कर बैठना 'धनी' होना है और भगवान्‌की वस्तुको अपनी बनाकर अभिमानी बननेके लिये ललकते रहना 'गरीब' होना है। भगवान्‌के राज्यमें न कोई धनी है न गरीब, सब उनके द्वारा निर्दिष्ट अभिनयको पूर्ण कर रहे हैं। धनको अपना मानना या अपना बनानेकी चेष्टा करना यही भूल है। एक कथा सुनो।'

'एक था भिक्षुक। उसका यह नियम था कि जिस दिन जो कुछ मिल जाय उसको उसी दिन खा, पी, पहनकर समाप्त कर देना। प्रायः उसे प्रतिदिन आवश्यकताके अनुसार भिक्षा मिल जाया करती थी। एक दिन उसे उसकी जरूरतसे ज्यादा एक पैसा मिल गया। वह सोचने लगा—इसका क्या उपयोग करूँ? उसने उस पैसेको अपने चीथड़े की खूँटमें बाँध लिया और एक पण्डितके पास गया। भिक्षुकने पण्डितजीसे पूछा—महाराज! मैं अपनी सम्पत्तिका क्या सदुपयोग करूँ? पण्डितजीने पूछा तुम्हारे पास कितनी सम्पत्ति है? उसने कहा—एक पैसा! पण्डितजी चिढ़ गये उन्होंने कहा—'जा-जा, तू एक पैसे के लिये मुझे परेशान करने आया है।' सच पूछो तो वे उस पैसे का महत्त्व नहीं समझते थे। वह भिक्षुक निराश नहीं हुआ। कई पण्डितोंके पास गया। कहीं हँसी मिली तो कहीं दुत्कार! किसी सज्जनने बतलाया कि 'अजी यह तो सीधी-सी बात है। किसी गरीब को दे डालो।' अब वह भिक्षुक गरीबकी तलाशमें चल पड़ा। उसने अनेक भिखारियोंसे यह प्रश्न किया कि 'क्यों जी? तुम गरीब हो? परन्तु एक पैसेके लिये किसी भिखारी ने गरीब बनना स्वीकार नहीं किया। जो मिलता उसीके पास दो-चार पैसेकी पूँजी इकट्ठी मिलती। भिक्षुक अभी गरीबकी खोजमें लगा ही हुआ था कि उसे यहाँ मालूम हुआ—अमुक देश के राजा अमुक देश पर चढ़ाई करने जा रहे हैं।

उसने लोगोंसे पूछा 'वे क्यों चढ़ाई कर रहे हैं?' लोगोंने बताया धन सम्पत्ति प्राप्त करनेके लिये। भिक्षुक मन ही मन सोचने लगा अवश्य ही वह राजा बहुत गरीब होगा। तभी तो धन-सम्पत्तिके लिये मार-काट, लूटपीट और बेईमानीकी परवाह न करके धावा बोल रहा है। इसलिये मैं अपनी पूँजी उसे दे दूँ। जो धनके लिये दूसरे के साथ बेईमानी, छल-कपट, धोखा और बलात्कार कर सकता है वास्तव म वही सबसे बड़ा गरीब है।

भिक्षुकने देखा—राजासाहबकी सेना सज-धजकर उनका जय जयकार बोलती हुई आगे बढ़ रही है। राजासाहबकी सवारी भी बड़ी शानके साथ पीछे पीछे चल रही है। पहाड़ी मार्ग था, भिक्षुक एक झाड़के नीचे दुबक गया। जिस समय राजासाहबकी सवारी उसके पाससे गुजरने लगी, वह खड़ा हो गया और झटपट अपने चीथड़ेमें से पैसा निकाल कर राजासाहबके हाथ पर डाल दिया। उसने कहा कि 'मुझे बहुत दिनोंसे एक गरीबकी तलाश थी। आज आपको पाकर मेरा मनोरथ पूरा हो गया, आप मेरी पूँजी सम्हालिये।' राजा साहबने अपनी सवारी रोकवा दी। फौजका आगे बढ़ना भी रोक दिया गया। राजासाहबके पूछने पर भिक्षुकने अपनी कहानी—परेशानी और विचारकी बात कह सुनायी। राजासाहबपर भिक्षुककी कहानीका इतना असर पड़ा कि उन्होंने धावा बोलने का इरादा बदल दिया और सारी फौज के सामने यह बात कबूल की कि किसीकी वस्तु बेईमानी, छल-कपट या बलात्कार से लेना गरीबीका ही लक्षण है। नीतिकारोंने क्या ही सुन्दर कहा है—

> स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला,
> मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ?

'गरीब वह है, जिसकी लालच बढ़ी-चढ़ी है। मन सन्तुष्ट हो तो

धनी-गरीबका कोई भेद नहीं। महल चाहे जितना बड़ा हो सोनेके लिये केवल साढ़े तीन हाथ ही जगह चाहिये।'

बाबाने कहा—'तुमने सुना होगा कि एक गरीब भिखमगा जाड़े के दिनोंमें तीन हाथकी चद्दर ओढ़े ठिठुर रहा था। जब मुँह ढकता तो पैर नंगे हो जाते और पैर ढकता तो मुह नंगा हो जाता। चद्दर बढ़ तो सकती नहीं, वह परेशान था। उधरसे एक मस्त महात्मा आ निकले। उन्होंने उसकी परेशानी देखकर कहा—'अरे मूर्ख! अगर चद्दर नहीं बढ़ सकती तो क्या तू छोटा नहीं हो सकता?' भिखमगेकी समझमें बात आ गयी, उसने अपना पैर सिकोड़ लिया। अब उसका सारा बदन चद्दरके नीचे था। लालचको जितना बढ़ाओ उतना बढ़े, जितना घटाओ उतना घटे। जब तुम शारीरिक आरामके लिये इतना उद्योग करते हो तब क्या मानसिक सुख-शान्तिके लिये लालच भी नहीं छोड़ सकते? इसीने तो गरीब और धनीका भेद पैदा किया है। इसके मिटते ही सब एक-से हो जाते हैं और सभी वस्तुओंको भगवान्की दी हुई समझ कर उनका उपयोग करते समय परम सुख-शान्तिका अनुभव करते हैं।'

मैंने पूछा—'बाबा, जब कभी ऐसा जान पड़ता है कि मैं किसीका कृपापात्र बनकर उसकी दी हुई वस्तुओंका उपयोग कर रहा हूँ तब उपकारके भारसे दब जाता हूँ और ऐसे अवसरोंपर दबावके कारण उसके कहे बिना भी अपने मनके विपरीत काम करने लगता हूँ—यह समझकर कि इसीमें उसकी प्रसन्नता और भलाई है।'

बाबा हँसे। उन्होंने कहा—'जबतक मेरा-तेरा, इसका-उसका भेद बना है तबतक ऐसा ही होता है। यह सब मनकी

खुराफात है, कमजोरी है। भगवान्‌के अतिरिक्त और कौन कृपालु है? भगवान्‌के सिवा और किसने कौन-सी वस्तु दी है? उसके उपकारके अतिरिक्त और किसका उपकार है? मैं तुमसे कई बार कह चुका हूँ कि यदि तुम भगवान्‌के अतिरिक्त और किसीकी कृपा स्वीकार करोगे, और किसीपर विश्वास करोगे तो दुःख पाओगे। आज नहीं तो दस दिन बाद सही, दर-दर ठोकर खाकर भगवान्‌की शरणमें आना ही पड़ेगा। तुम्हारे मनपर किसीका प्रभाव क्या पड़ता है? क्या भगवान्‌के अतिरिक्त और कोई ऐसी शक्ति है, जो तुम्हारे मनपर दबाव डाल सकती है?'

'परन्तु तुम्हारा कहना भी सत्य है। मनुष्य जिसके पास रहता है जिसका खाता है, जिसके उपकारोंको स्वीकार करता है उसका कुछ न कुछ असर जरूर पड़ता है। परन्तु वह असर ही तो उसके असरसे बाहर निकालता है, भगवान्‌की शरणमें ले जाता है। सुनो! मैं तुम्हें एक दृष्टान्त सुनाता हूँ।'

'एक थे साधु। बड़े विरक्त, बड़े मस्त, बड़े मौनी। शायद वे पंजाबके रहनेवाले थे। वे जब मस्तीके साथ गाँवमें घूमनेके लिये निकलते तो कहते-फिरते 'यहाँ कब्र है, कब्र!' लोग उनका अभिप्राय नहीं समझते और बड़े आश्चर्यमें पड़ जाते कि ये महात्मा हर समय कब्र-कब्र क्यों रटा करते हैं? उसी गाँवमें एक बड़े ज्ञानी और बुद्धिमान् सेठ रहते थे। एक दिन अचानक उनके समक्ष महात्माजीकी बात आ गयी। जिस समय महात्मा 'यहाँ कब्र है, कब्र' कहते हुए रास्तेमें चल रहे थे, सेठजी अचानक [illegible] हो गये और मुस्कराते हुए बोले—'कहाँ कब्र है, [illegible]' महात्माजीने अपने शरीरकी ओर संकेत किया और कहा '[illegible]' सेठजीने अपने मकानकी ओर इशारा किया और कहा

महात्माजी मकानमें घुस गये और बारह वर्षतक उससे बाहर नहीं निकले। सेठने अपनी ओरसे उनकी सेवामें कोई कोर-कसर नहीं की।'

'तेरहवें वर्षमें सेठजीके घर डाका पड़ा। लुटेरोंने उनकी अधिकांश सम्पत्ति लूट ली और भाग चले। महात्माजीने सोचा कि 'मैंने बारह वर्षतक इस सेठका अन्न खाया है। इसकी सेवा स्वीकार की है। इस समय कुछ ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे सेठका माल मिल जाय। उन्होंने लुटेरोंका पीछा किया। लुटेरोंने पुलिससे छिपानेके लिये सारा माल एक कूएँमें डाल दिया और अपने-अपने घर चले गये। महात्माजीने अपनी लँगोटी फाड़कर उस कूएँपर एक निशान बना दिया। पुलिसको खबर दे दी। सारा धन मिल गया। गाँवके लोग महात्माजीके इस कार्यकी प्रशंसा करने लगे। सेठजी बड़े विचारवान् पुरुष थे। उन्होंने सोचा कि जो महात्मा अपनेको मुर्दा समझकर कब्रमें रहनेके लिये आये थे, वे इस प्रकारका व्यवहार करें, यह कहाँतक उचित है? हो-न-हो, उनका वैराग्य कुछ ठंडा पड़ गया है। सेठजीने महात्माजीके पास जाकर बड़ी नम्रतासे पूछा—'भगवन्! मुर्दा सच्चा या कब्र सच्ची?' महात्माजीकी आँखें खुल गयीं। अपनी सारी स्थिति उनके सामने नाच गयी। उन्होंने देखा कि उपकारोंके भारसे मैं कितना दब गया हूँ। उन्होंने कहा—'भाई कब्र सच्ची, मुर्दा झूठा!' इसके बाद महात्माजी वहाँसे चले गये और फिर जीवनभर उन्होंने कभी किसीके घर दो बार भिक्षा नहीं ली। वे एक गाँवमें भी दो दिन नहीं रहते थे। बाबाने आगे कहा—'भाई! यदि तुम्हें किसीका उपकार स्वीकार ही करना हो तो केवल भगवान्का करो। दूसरोंसे सम्बन्ध जोड़ते ही बँध जाना पड़ता है।'

मैंने पूछा—'बाबा, ऐसा दृढ़ निश्चय हो कैसे?'

बाबा—'दृढ़ निश्चयके लिये समय और अभ्यासकी आवश्यकता नहीं है। निश्चय तो केवल एक क्षणमें होता है। जबतक निश्चय होनेमें देर होती है तबतक यही समझना चाहिये कि तुम निश्चय करनेमें हिचकिचा रहे हो, वैसा करनेकी तुम्हारी इच्छा नहीं है। इस सम्बन्धमें मैं तुम्हें एक घटना सुनाता हूँ।'

'गङ्गातटपर गौरियाके पास ही एक बेसवाँ नामका ग्राम है। वहाँ एक ब्राह्मणदम्पति निवास करते थे। दोनों बड़े सदाचारी और भगवत्प्रेमी थे। वे सन्त, शास्त्र और भगवान्पर बड़ा विश्वास रखते थे। दोनोंके हृदयमें सत्सङ्गका संस्कार था। एक बार ब्राह्मण बीमार हुआ और ऐसा बीमार हुआ मानो उसकी मौत होनेवाली हो। ब्राह्मण पत्नीने अपने पतिकी मरणासन्न स्थिति देखकर सोचा कि अब तो ये इस लोककी लीला समाप्त करनेवाले ही हैं। कुछ ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे इनका परलोक बने। उन दिनों उस गाँवमें एक दण्डी सन्यासी आये हुए थे। ब्राह्मण पत्नीने स्वामीजीसे प्रार्थना की कि आप मेरे पतिको आतुर सन्यास दे दीजिये, जिससे इनका कल्याण हो जाय। पहले तो स्वामीजीने बहुत मना किया, परन्तु फिर ब्राह्मणकी मरणासन्न दशा देखकर सन्यास दे दिया। उस समय ब्राह्मण बेहोश था, इसलिये उसे अपने सन्यास ग्रहणकी बात मालूम नहीं हुई।'

'संयोगकी बात, कुछ ही दिनोंमें ब्राह्मण स्वस्थ हो गया। ब्राह्मणी शक्तिभर अपने पतिकी सेवा करती, परन्तु स्पर्श नहीं करती। अपनी पत्नीका यह ढंग देखकर ब्राह्मणने पूछा—'प्रिये! तुम इतने प्रेमसे मेरी सेवा करती हो, परन्तु अलग अलग क्यों रहती हो?' पत्नीने कहा—'भगवन्! आपको मरणासन्न समझकर मैंने सन्यास दीक्षा दिलवा दी। अब मैं आपके स्पर्शकी नहीं, केवल सेवाकी अधिकारिणी हूँ।' ब्राह्मणने कहा—'अच्छा, तो मैं सन्यासी

हो गया? अब एक घरमें रहना और काठकी बनी स्त्रीकी सेवा स्वीकार करना भी मेरे लिये पाप है।' वह ब्राह्मण उसी क्षण घरसे निकल पड़ा और विधिवत् सन्यास दीक्षा लेकर वेदान्तके स्वाध्याय तथा ब्रह्मचिन्तनमें अपना समय व्यतीत करने लगा।'

'वर्षोंके बाद हरिद्वारमें कुम्भका मेला लगा। ब्राह्मण पत्नी भी स्नान करनेके लिये वहाँ गयी। जब उसे मालूम हुआ कि मेरे पतिदेव यहीं सन्यासीके वेषमें रहकर सन्यासियोंको वेदान्तका अध्यापन करते हैं तब वह भी कुछ स्त्रियोंके साथ उनका दर्शन करनेके लिये गयी। स्वामीजीका नाम था ज्ञानाश्रम, वे उस समय सन्यासियोंमें वेदान्तका प्रवचन कर रहे थे। उनके दोनों हाथ एक-दूसरेके नीचे बँधे हुए थे और सिर सीधा था। अपनी पत्नीको देखते ही उन्होंने कहा—'अरे, तू यहाँ आ गयी?' स्त्रीके मुँहसे अचानक निकल पड़ा—'स्वामीजी! क्या अबतक आप मुझे भूल नहीं सके?' उसी क्षण स्वामीजीका सिर नीचे झुक गया। हाथ बँधा का बँधा रह गया। उसके बाद स्वामी ज्ञानाश्रमजी तीस वर्षतक जीवित रहे। परन्तु न तो उनका सिर हिला और न तो हाथ खुले। शौच, स्नान, भोजन भी दूसरोंके करानेसे ही करते। उनके मुँहसे कभी एक शब्द भी नहीं निकला। एक बार विधर्मियोंने उनकी पीठमें नश्तर भोंक दिया, उनके गुह्य स्थानमें लकड़ी डाल दी, फिर भी वे ज्यों के त्यों रहे। जब वहाँके ताल्लुकेदारको इस बातका पता चला और उन्होंने विधर्मियोंके घर जलानेकी आज्ञा दे दी, तब उनके हाथोंका बन्धन खुला और उन्होंने हाथ उठाकर मना किया। परन्तु फिर उनका वह हाथ जीवनभर उठा ही रहा, गिरा नहीं। उनका एक क्षणका निश्चय जीवनपर्यन्त ज्यों-का-त्यों अक्षुण्ण रहा। बड़े-बड़े विघ्न और अड़चनें उन्हें उनके निश्चयसे विचलित नहीं कर सकीं।

'निश्चय कैसे हो, यह प्रश्न मत करो। निश्चय करो। उस निश्चयके पीछे अपने जीवनका बलिदान कर दो। माना कि ऐसा निश्चय करनेसे तुम्हारे स्त्री पुत्रोंको कष्ट हो सकता है, धन नष्ट हो सकता है, और शरीरकी मृत्यु हो सकती है। परन्तु एक आध्यात्मिक जिज्ञासुके लिये इन वस्तुओंका कोई मूल्य नहीं है। इन वस्तुओंके बदलेमें तुम्हें अन्त करणकी अनन्त सम्पत्ति श्रद्धा, विश्वास, तितिक्षा, वैराग्य, समता, शान्ति और आनन्दकी प्राप्ति होगी। क्या इस अन्तरङ्ग सम्पत्तिके लिये तुम बहिरङ्ग वस्तुओंका त्याग नहीं कर सकते? करना पड़ेगा और अवश्य करना पड़ेगा। क्योंकि प्रत्येक साधकका यही भाग्य है। जिसके जीवनमें यह महानिश्चय नहीं है, जिसके जीवनकी शैली साधना और साध्य सुनिश्चित नहीं है, वह साधक नहीं है, मनुष्य नहीं है और भगवत्प्राप्तिका अधिकारी भी नहीं है।'

मैंने पूछा—'बाबा तब करना क्या चाहिये?'

बाबाने हँसते हुए पूछा—'कब करनेके लिये पूछ रहे हो, आजके लिये, कलके लिये या दूसरे जन्मके लिये? यदि तुम्हें इस बातका पता नहीं कि तुम इस समय क्या कर रहे हो तब आगेके लिये कर्तव्यका ज्ञान तुम्हारे जीवनमें उतर भी सकेगा, इसका क्या प्रमाण है? देखो, इस समय तुम क्या कर रहे हो! जिस समय तुम्हारी दृष्टि इतनी पैनी हो जायगी कि अपने वर्तमान जीवनको, कर्मको और वृत्तियोंको देख सको, उसी समय तुम स्थूल शरीर और संसारकी उलझनोंसे ऊपर उठ जाओगे और सारा-का-सारा पसारा तुम्हारे एक सङ्कल्पके रूपमें मालूम पड़ेगा। तुम इस समय जैसे स्थूल शरीरकी प्रवृत्तियोंमें उलझ रहे हो, वैसे ही अपने आत्मिक जीवनकी पहेलियोंमें उलझ जाओ। शरीरके कर्तव्यकी नहीं, मनके कर्तव्यकी जाँच करो।'

एक बार प्रेम भूमि श्रीवृन्दावनमें यमुनाजीके पवित्र तटपर कुछ साधु बैठे हुए थे। उनकी धूनी जल रही थी और वे अड़ारे भड़ारेकी चर्चामें मग्न हो रहे थे। उसी समय एक अछूत वहाँ आया और साधुओंके सामनेवाले घाटपर ही स्नान करने लगा। साधुओंसे यह बात सहन न हुई। एकने उठकर जलती हुई लकड़ीसे उसपर प्रहार किया और बुरा भला कहने लगा। अछूत कुछ बोला नहीं। यद्यपि वह एक बार स्नान कर चुका था, फिर भी वह वहाँसे थोड़ी दूर हटकर दुबारा स्नान करने लगा। उसका यह काम देखकर साधुओंके मुखियाको कुछ आश्चर्य हुआ। उन्होंने जाकर पूछा—'क्या भाई तुम दुबारा स्नान क्यों कर रहे हो? अछूतने कहा—'महाराज, मैं शरीरसे तो अछूत हूँ ही, आप लोगों के घाटपर स्नान करके मैंने अपराध भी किया, परन्तु मैं अपने मनको अछूतपनेसे अलग रखता हूँ। जिस साधुने मुझे मारा वह क्रोधावेशमें था, इसलिये उसका मन अछूत हो गया था। उसके अछूत मनका असर मेरे मनपर न पड़ जाय, इसलिये मैंने दुबारा स्नान किया है। क्योंकि क्रोध भी तो एक अछूत ही है न!' साधुओंके मुखिया अवाक् रह गये, अपने अन्तर्जीवनपर वह इतनी पैनी दृष्टि रखता है, यह जानकर उनकी उसपर बड़ी श्रद्धा हुई।'

'जो अपने जीवन, सङ्कल्प और कर्मोंपर वर्तमानमें ही दृष्टि रखता है, वह न केवल अपने जीवनको देखता है, बल्कि सम्पूर्ण जगत्के कर्म और उनके महाकर्ता भगवान्को भी देखने लगता है। जगत् एक लीला है और इसके लीलाधारी स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण। लीला और लीलाधारी दोनोंको देखते रहना, इस दर्शनके आनन्दमें मग्न रहना, यही भक्तका स्वरूप है। ज्ञानीका भी यही स्वरूप है। उसकी साक्षिता यहाँ जाकर पूर्ण होती है। ज्ञानी और भक्त दोनों ही कर्तृत्व और भोक्तृत्वसे अलग हैं और दोनोंकी

दृष्टि महाकर्ता महाभोक्ता भगवान्पर लगी रहती है । यह कोई परोक्ष विश्वास नहीं, प्रत्यक्ष दर्शन है । तब क्या करना चाहिये, यह प्रश्न कहाँ बनता है ? जो करना चाहिये, वह भगवान् कर रहे हैं । शरीरको, संसारको व्यष्टि और समष्टि मनको, जो कुछ वे कराते हैं, करने दो । तुम शान्तरूपसे उनकी लीलाकी तरङ्गको शुद्ध चिन्मयरूपमें देखा करो, वे तुम्हारे लिये सब कुछ तो कर रहे हैं ।

वृन्दावनकी एक कथा बहुत प्रसिद्ध है । एक ग्वालिन अपने घारलसे गौओंका गोबर उठा-उठाकर बाहर ले जा रही थी । परन्तु कोई दूसरा आदमी न होनेके कारण वह अधिक परिमाणमें नहीं उठा पाती थी और इसके लिये चिन्तित हो रही थी कि कहीं इस काममें ज्यादा देर लग गयी तो मैं अपने प्यारे श्यामसुन्दरको समयसे नहीं देख पाऊँगी । वह चाहती थी कि कोई और आ जाय तो मैं अपने सिरपर अधिक-से-अधिक गोबर उठवाकर अपना काम झटपट खतम कर दूँ । उसी समय श्रीकृष्णने पहुँचकर कहा कि 'अरी गोपी, मुझे नेक माखन दे दे ।' गोपीने कहा 'यहाँ बिना काम किये तो कुछ मिलनेका नहीं ।' श्रीकृष्णने कहा—'क्या काम करूँ ?' गोपीने कहा—'तुम गोबरकी खाँची उठाकर मेरे सिरपर रख दिया करो ।' श्रीकृष्णने पूछा-'तब तू मुझे कितना माखन देगी ?' गोपीने कहा—'जितनी खाँची उठा दोग, उतने लोंदे ।' श्रीकृष्णने कहा—'परन्तु ग्वालिन, इसका निर्णय कैसे होगा कि मैंने कितनी खाँचियाँ उठायीं ?' गोपी बोली—'प्रत्येक खाँची उठानेपर गोबरकी एक बिंदी तुम्हारे मुँहपर लगा दिया करूँगी ।' श्रीकृष्णने वैसा ही किया । उनका विशाल ललाट और सुकोमल कपोल गोबरकी बिन्दियोंसे भर गया । गोपीने उनकी अञ्जलि माखनके लोंदोंसे भर दी । श्रीकृष्णने कहा—'अरी ग्वालिन,

नेक मिश्री तो देदे।' गोपीने कहा—'कन्हैया, इसके लिये तुम्हें नाचना पड़ेगा।' श्रीकृष्ण नाचने लगे। स्वर्गके देवता आकाशमें स्थित होकर श्रीकृष्णकी यह प्रेम परवशता देख रहे थे। उनकी आँखोंसे आनन्दके आँसू बहने लगे। सचमुच श्रीकृष्ण प्रेम-परवश हैं। वे अपने प्रेमियोंके लिये छोटी-मोटी, ऊँची नीची सब प्रकारकी लीलाएँ करते ही रहते हैं। तुम स्वर्गके देवता हो। तुम भगवान्‌के पार्षद, उनके निज जन हो। तुम अपनेको स्थूल शरीर मत समझो। अपने दिव्यरूपमें स्थित होकर आकाशमें स्थित दिव्य देवताओंके समान लीला और लीलाधारीको देखते रहो। तुम किसीके बन्धनमें नहीं हो, किसीके अधिकारमें नहीं हो, नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप हो। जगत्‌का करुणक्रन्दन, यह चीख, यह आर्तनाद तुम्हारा स्पर्शतक नहीं कर सकता। सचमुच तुम्हारा ऐसा ही स्वरूप है। तुम ऐसे ही हो।

सद्गुरु और शिष्य

'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् ।'

जन्म-जन्मके सत्संस्कार जब अभिव्यक्त होकर इस अवस्थामें आते हैं कि उनपर आकर्षणके रूपमें भगवत्कृपाका प्रभाव पड़ सके तब मनुष्यके अन्तःकरणमें यह लालसा होती है कि मुझे अपने परम लक्ष्य परमात्माको प्राप्त करनेके लिये साधन करना चाहिये। सत्संग सद्विचार और सच्छास्त्रके आधारपर इस लालसाको उज्जीवित एवं उद्दीप्त करना चाहिये। कहीं प्राचीन असत्कर्मोंकी संस्कारधारा आकर इसको दबा न दे, इसलिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देनी चाहिये। ऐसे शुभ अवसर जीवनमें बहुत कम आते हैं। परन्तु इस स्थितिमें यह एक बहुत बड़ी कठिनाई सामने आती है कि कौन सा साधन किया जाय। साधारण साधकको अपने पूर्व जन्मकी प्रवृत्तियों और वर्तमान अधिकारका तो पता होता नहीं इतनी मँजी हुई बुद्धि भी नहीं होती कि वह अधिकारके अनुसार साधनाका चुनाव कर सके। इसी समय बहुत-से साधक किसी भी साधनकी प्रशंसा सुनकर उसे करने लग जाते हैं, परन्तु अपनी ही बुद्धिसे निश्चित होनेके कारण उसपर उनका दृढ़ विश्वास नहीं हो पाता। वे जब कभी कहीं दूसरे साधनकी प्रशंसा सुनते हैं तब उनका मन विचलित हो जाता है और वे अपने वर्तमान साधनको त्रुटिसे युक्त समझकर दूसरा शुरू कर देते हैं। यह एक प्रकारसे साधनका व्यभिचार है। परन्तु जिसका विवाह ही नहीं हुआ उसके सतीत्वका क्या प्रश्न? यह निश्चित है कि दस वर्ष जप करनेपर भी उस मन्त्रके विषयमें यदि कभी आपके मनमें संशयका उदय हुआ तो समझना चाहिये

कि अभी आप वहीं हैं, जहाँ दस वर्ष पहले थे, क्योंकि आपने अनधिकार उस मार्गपर चलना प्रारम्भ किया है जिसमें न तो आपको कुछ सूझता है और न आप सही-सही अनुमान ही कर सकते हैं। आज कृष्णका ध्यान, कल शिवका ध्यान, आज द्वादशाक्षर तो कल पञ्चाक्षर, आज कैलासकी ओर तो कल कन्याकुमारीकी ओर, यह कोई साधना नहीं है। इस प्रकार कहीं भी नहीं पहुंच सकेंगे। साधनाके लिये ऐसे विश्वासकी आवश्यकता है जो आकाशसे भी विशाल हो, समुद्रसे भी गम्भीर हो, सुमेरुसे भी भारी और वज्रसे भी कठोर हो। परन्तु साधनापर ऐसा विश्वास प्राप्त कैसे हो?

ऐसा विश्वास प्राप्त होता है तब जब साधना का उदय हृदय के अन्तरालसे हुआ हो, उस साधना का एक-एक अंश हृदयको स्पर्श करने वाला हो। ऐसा तभी हो सकता है जब हृदयके आन्तरिक रहस्यको जाननेवाले और इस साधनाके द्वारा लक्ष्यतक पहुँचे हुए महापुरुषने साधकको स्पष्ट रूपसे साधनसे साध्यतकका मार्ग दिखला दिया हो। साध्य और साधकके बीचकी दूरी ही साधना है, जो एकको दूसरे के निकट पहुँचाती है। जिसे साधकके अधिकार और साध्यके स्वरूपका पता नहीं है वह साधनाको भला कैसे जान सकता है? इसीसे सर्वज्ञ महापुरुष ही साधनाका निर्देश करनेके अधिकारी हैं। जीवका शिवसे गठबन्धन कराना साधारण पुरोहित का काम नहीं है। यदि ऐसा पुरोहित मिल जाय, मनुष्य उसे ढूँढ निकाले तो उसके पुरुषार्थका अधिकार वहीं समाप्त हो जाता है। वे ऐसा सूत्र बाँध देते हैं, जो कभी टूटता ही नहीं। परन्तु वे पुरोहित हैं कौन? मिलते कहाँ? मिले भी तो इन्हें पहचाना कैसे जाय?

वर्तमान युगको आधुनिक लोग तो उन्नतिका युग कहते हैं; परन्तु आध्यात्मिक दृष्टिसे देखा जाय तो अधःपतनका ऐसा निकृष्ट

युग कभी नहीं आया था। प्रतारणा और विश्वासघात तो इस युगकी विशेष देन है। आजकल ऐसे बहुत-से लोग प्रकट हो गये हैं जो अपनेको भगवान्का संदेशवाहक अथवा स्वयं भगवान् बतलाते हैं। भोलेभाले साधक उनकी मीठी-मीठी बातोंमें आकर अथवा उनके रहस्यात्मक वाग्जालमें फँसकर अपना सर्वस्व खो बैठते हैं और 'माया मिली न राम' की कहावत चरितार्थ करते हैं। ऐसी स्थितिमें किसपर श्रद्धा की जाय? किसकी शरणमें होकर आगेका मार्ग तै किया जाय? कैसे यह विश्वास किया जाय कि यह मार्ग ठीक है और इसपर चलकर हम अपने गन्तव्य स्थानतक पहुँच सकते हैं? ये बातें ठीक होनेपर भी श्रद्धालु और लगनवाले साधक पर लागू नहीं होतीं। उसकी दृष्टिमें संसारी सम्पत्तियोंका कोई मूल्य नहीं होता, उसकी श्रद्धा और लगनको कोई ठग नहीं सकता। वह आँखें बन्द करके संसारकी ओरसे सचमुच अंधा होकर भगवान्की ओर चलना चाहता है और चलता है। दूसरी बात यह है कि प्रायः वे ही लोग ठग जाते हैं, जो दूसरेको ठगना चाहते हैं। शास्त्रोंमें ऐसा वर्णन है कि अहिंसाकी शुद्ध प्रतिष्ठा होनेपर साधकके सामने पशु पक्षीतक हिंसा नहीं कर सकते। यही बात श्रद्धावान्के सम्बन्धमें भी है। उसको कोई धोखा दे नहीं सकता। उसे तो केवल अपनी श्रद्धा सम्पत्तिकी ही रक्षा करनी चाहिये।

तब क्या किसीपर यों ही श्रद्धा कर लेनी चाहिये? कुछ भी छान-बीन नहीं करनी चाहिये? अवश्य करनी चाहिये और गुरु करनेके पहले तो अवश्य ही कर लेनी चाहिये। परन्तु उस छान-बीनका स्वरूप दूसरा ही होता है। गुरुदेवके नामश्रवण, दर्शन, आलाप और श्रवणमात्रसे ही प्राणोंमें शान्तिका सञ्चार होने लगता है, चिर दिनकी प्यास बुझने लगती है, घोर अतृप्तिमें भी

अनुभव होने लगता है । जिनकी प्रतीक्षा थी, जिनके लिये प्राण तड़फड़ा रहे थे, जिनके बिना मनुष्य अन्धेकी भाँति भटक रहा था, उन्हींके मिलनेपर हृदय शीतल न हो जाय—ऐसा नहीं हो सकता । गुरुदेवकी यह सबसे बड़ी पहचान है, परन्तु यह पहचान भी सर्वसाधारणके लिये व्यावहारिक नहीं है । महापुरुष शरीर और अन्तःकरणसे ऊपर उठे रहते हैं, भगवान्‌से एक रहते हैं, इसलिये उनकी कोई व्यावहारिक पहचान होती भी नहीं । वस्तुतः वे परमार्थस्वरूप हैं । भगवान् ही गुरु और गुरु ही भगवान् हैं । यह केवल भाव नहीं है, क्योंकि परमार्थ सत्य वस्तुको परमार्थ सत्य वस्तुके सिवा और कौन दिखा सकता है ? इसीसे जन्मातक भटकनेके बाद जब अन्तःकरण उनके दर्शनके योग्य होता है तभी वे कृपा करके दर्शन देते हैं और अपने ज्ञान एवं शक्तिसे अपने स्वरूपमें मिला लेते हैं । जिसे परमार्थतत्त्व अथवा भगवान् कहते हैं उन्हींके मूर्तिमान् अनुग्रहका नाम गुरु है । गुरुका दीख पड़नेवाला शरीर स्थूल-शरीर नहीं है, दीख पड़नेवाला रूप मनुष्यरूप नहीं है, वह तो विशुद्ध चैतन्य है । भला, इस जड़ जगत्‌में विशुद्ध चेतनके अतिरिक्त और ऐसा कौन है जो अज्ञानका पर्दा फाड़कर जीवको उसके स्वरूपकी उपलब्धि करा दे । राजकुमारको जो यह चिरकालसे भ्रम हो रहा है कि मैं एक दीन हीन, कंगाल भिक्षुक हूँ, उसको उसके स्वरूप और अधिकारका ज्ञान कराकर स्वपदपर सम्राट्‌के रूपमें प्रतिष्ठित करनेवाले गुरुदेव ही हैं । शिष्य गुरुका उत्तराधिकारी है अर्थात् गुरुका ज्ञान ही शिष्यके रूपमें अभिव्यक्त हुआ है । ज्ञानकी दृष्टिसे परमात्मा, गुरु और शिष्य एक हैं । इस एकत्वके बोधमें ही शिष्यकी पूर्णता है । तभी तो यह शास्त्रवाक्य सार्थक है—'गुरु साक्षात् पर ब्रह्म।' इस रूपमें शिष्य ढूँढ़ पकड़ नहीं सकता, वे स्वयं ही शिष्यके सामने प्रकट होकर अपनेको पकड़ा देते हैं ।

गुरुकी महिमा केवल शिष्य ही समझ सकता है, सो भी तभी जब गुरु उसके सामने अपना स्वरूप प्रकट कर देते हैं। और कोई उन्हें जान नहीं सकता, क्योंकि वे अपनेको गुप्त रखते हैं। शिष्य जानता है कि मेरे गुरुदेव सर्वज्ञ हैं, वे मेरे और चराचर जगत्के सम्पूर्ण रहस्योंके एकमात्र ज्ञाता हैं। वे सर्वशक्तिमान् हैं, बड़े-बड़े देवता भी उनकी शक्तिसे शक्तिमान् होकर अपना-अपना काम कर रहे हैं; वे परम कृपालु हैं, क्योंकि कृपा परवश होकर ही उन्होंने जीवोंके उद्धारकी लीलाका विस्तार किया है। जब वे मेरे हृदयकी बात जानते हैं, उसको पूर्ण करनेकी शक्ति रखते हैं, तब वे परम कृपालु उसे पूर्ण किये बिना रह ही नहीं सकते। यही उनका स्वरूप है। जगत्में जितने भी जीवोंका उद्धार करनेवाले महात्मा प्रकट हैं, वे सब-के-सब उन्हींके लीला-विग्रह हैं। मैं उनको प्राप्त करके धन्य हो गया हूँ। शिष्यकी यह दृष्टि कल्याणकारिणी ही नहीं कल्याणस्वरूपिणी है।

यद्यपि परमात्माके ही समान गुरुदेवके लक्षण भी अनिर्वचनीय हैं, तथापि लोकव्यवहारके लिये शास्त्रोंमें उनका वर्णन भी होता है। उन आदर्श सद्गुण, सद्भाव और सत्कर्मोंको देखकर, जो कि स्वभावसे ही सद्गुरुमें होते हैं, साधक अपने जीवनका निर्माण करता है और मुमुक्षु उन्हें महापुरुषके रूपमें पहचानकर उनकी शरण ग्रहण करता है। महापुरुषोंके लिये तो लक्षणोंकी कोई आवश्यकता ही नहीं हुआ करती। उनका वर्णन केवल साधकोंके लाभार्थ ही होता है। सद्गुरु कैसा होना चाहिये, इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है:—

"मातृतः पितृतः शुद्धः शुद्धभावो जितेन्द्रियः।
सर्वागमानां सारज्ञः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥

परोपकारनिरतो जपपूजादितत्परः ।
अमोघवचनः शान्तो वेदवेदार्थपारगः ॥
योगमार्गानुसन्धायी देवताहृदयङ्गमः ।
इत्यादिगुणसम्पन्नो गुरुरागमसम्मतः ॥
(शारदातिलक २।१४२-१४४)

जो कुलीन हो सदाचारी हो, जिसकी भावनाएँ शुद्ध हों और इन्द्रियाँ वशमें हों जो समस्त शास्त्रोंके सार उपासनाके रहस्यको जानता हो, जो परोपकारमें रसका अनुभव करता हो समस्त शास्त्रोंके तात्पर्यस्वरूप ब्रह्मको जानता हो, जप और पूजा आदिमें संलग्न हो, जिसकी वाणी अमोघ हो, शान्ति जिसे कभी न छोड़ती हो, जो वेद और वेदार्थका पारदर्शी हो योगमार्गमें जिसकी पूर्ण प्रगति हो, जो हृदयके लिये देवताके समान सुखकर हो, तथा और भी अनेकों गुण जिसमें स्वभावसे ही निवास करते हों, वही शास्त्र-सम्मत गुरु है।

गुरुमें अर्थात् जिसे हम गुरु बनाना चाहते हैं चार प्रकारकी शुद्धि होना आवश्यक है—आनुवंशिक शुद्धि, क्रियागत शुद्धि, मानस शुद्धि, और विशुद्ध चैतन्यमें स्थितिरूप परम शुद्धि। जो जानता बहुत है, परन्तु करता कुछ नहीं, किया कुछ नहीं, उससे साधकको साधनामें दृढ़ और स्थिर होनेकी शिक्षा नहीं मिल सकती। जिसकी इन्द्रियाँ अपने वशमें नहीं हैं वह दूसरेको जितेन्द्रिय होनेकी शिक्षा नहीं दे सकता यदि दे भी तो उसकी सुनेगा कौन? इसलिये गुरु ऐसा ही बनाना चाहिये, जो सिद्ध होनेपर साधक हो और इसीसे गुरुमें उपर्युक्त लक्षणोंकी आवश्यकता होती है। जिनमें ये लक्षण दीखते हैं उनमें स्वाभाविक ही श्रद्धा हो जाती है। श्रद्धा करनी नहीं पड़ती होती है। जिसमें श्रद्धा हो, उसमें भगवान्‌का दर्शन और वहाँसे प्रवाहित होनेवाले भागवत ज्ञानका स्वीकार ही गुरुकरण है।

जबतक हम गुरुको भगवान्‌के रूपमें नहीं देख पाते, उनसे प्रवाहित होनेवाले भागवत ज्ञानको नहीं स्वीकार करते और उनकी प्रत्येक क्रिया हमें लीलाके रूपमें नहीं मालूम होने लगती, तब तक गुरुकरण नहीं हुआ है, ऐसा समझना चाहिये। जब तक गुरु गुरु नहीं हुए हैं, तबतक चाहे जो समझ लीजिये। गुरु होनेके पश्चात् उन्हें भगवान्‌से नीचे कुछ भी समझना पतनका हेतु है। इस भागवत स्वरूपमें वे ही एक हैं, जगत्‌के और जितने भी गुरु हैं, वे मेरे गुरुके लीला विग्रह हैं, सर्वत्र उन्हींका ज्ञान और उन्हींका अनुग्रह प्रकट हो रहा है। इसीसे शास्त्रमें भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

> आदिनाथो महादेवि महाकालो हि य स्मृत ।
> गुरु स एव देवशि सर्वमन्त्रेषु नापर ॥
> शैवे शाक्ते वैष्णवे च गाणपत्ये तथैन्दवे ।
> महाशैवे च सौरे च स गुरुर्नात्र सशय ॥
> मन्त्रवक्ता स एव स्यान्नापर परमेश्वरि ।

हे महादेवि! जो आदिनाथ महाकाल अर्थात् भगवान् शिव हैं, वही शैव, शाक्त, वैष्णव आदि सभी मन्त्रोंके एकमात्र गुरु हैं उनके अतिरिक्त और कोई मन्त्रदाता हो ही नहीं सकता।

मन्त्रदानके समय अथवा उसके पश्चात् जो गुरुकी मनुष्य-रूपमें प्रतीति होती है, यह तो शिष्यकी एक कल्पना है। वास्तवमें परमात्मा ही गुरु हैं। इन गुरुकी शरण और इनके कर-कमलोंकी छत्रछाया पाकर शिष्य धन्य धन्य हो जाता है।

आजकलका समय ही दूसरा है। पहले गुरु वर्षोंतक शिष्यकी परीक्षा करते थे, तब उसे स्वीकार करते थे। परन्तु अब तो गुरुओंकी भरमार हो गयी है और जैसे बाजारमें दलाल अपनी अपनी दूकानों पर लानेके लिये ग्राहकोंको परेशान करते हैं, वैसे ही गुरु कहलानेवाले लोग भी अपना शिष्य होनेके लिये लोगोंको

तरह-तरहसे प्रलोभित करते हैं। सिद्धान्ततः सभीको शिष्यके रूपमें स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके लिये बहुत ऊँचे अधिकारकी आवश्यकता होती है। अशुद्ध पात्रमें अच्छी चीज रख दी जाय तो वह बिगड़ जाती है। अनधिकारी शिष्य उत्तम साधनाको सुरक्षित नहीं रख सकता। इसलिये शिष्यकी परीक्षा भी आवश्यक है। संक्षेपमें यदि कहा जाय तो जो सद्गुरुको परमात्माके रूपमें पहचानकर शरीर, धन और प्राण उनके चरणोंमें निवेदन करके उनसे ज्ञान और सिद्धिको प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है, वही शिष्य है—ऐसा कहना पड़ेगा। शिष्यका लक्षण शारदातिलकमें इस प्रकार कहा गया है—

> शिष्यः कुलीनः शुद्धात्मा पुरुषार्थपरायणः ।
> अधीतवेदः कुशलो दूरमुक्तमनोभवः ॥
> हितैषी प्राणिनां नित्यमास्तिकस्त्यक्तनास्तिकः ।
> स्वधर्मनिरतो भक्त्या पितृमातृहितोद्यतः ॥
> वाङ्मनःकायवसुभिर्गुरुशुश्रूषणे रतः ।
> त्यक्ताभिमानो गुरुषु जातिविद्याधनादिभिः ॥
> गुर्वाज्ञापालनार्थं हि प्राणव्ययरतोद्यतः ।
> विहत्य च स्वकार्याणि गुरुकार्यरतः सदा ॥
> दासवन्निवसेद्यस्तु गुरौ भक्त्या सदा शिशुः ।
> कुर्वन्नाज्ञां दिवारात्रौ गुरुभक्तिपरायणः ॥
> आज्ञाकारी गुरौ शिष्यो [illegible]कायकर्मभिः ।
> यो भवेत्स तदा ग्राह्[illegible]
> मन्त्रपूजारहस्यानि [illegible]
> त्रिकालं यो नमस्कु[illegible]
> स [illegible] शिष्य[illegible]
>
> शि[illegible]

· जो कुलीन हो और सदाचारी हो, सिद्धिके लिये तत्पर हो, वेदपाठी हो, चतुर हो और कामवासनासे रहित हो, जो समस्त प्राणियोंका हित ही चाहता हो; आस्तिक हो, नास्तिकोंका सङ्ग छोड़ चुका हो, अपने धर्ममें प्रेम रखता हो, भक्तिभावसे माता-पिताके हितमें सलग्न हो, कर्म, मन, वाणी, और धनसे गुरुसेवा करनेके लिये लालायित रहता हो, गुरुजनोंके सामने जाति, विद्या, धन आदिका अभिमान न रखता हो, गुरुकी आज्ञा पालनके लिये मृत्युतकके लिये तैयार रहता हो, अपने काम छोड़कर भी गुरुके काममें लगा रहनेवाला हो; जो गुरुके पास दासकी भाँति निवास करता हो, शिशुके समान आज्ञा पालन करता हो और दिनरात गुरुभक्तिमें डूबा रहता हो; जो मन, वाणी, शरीर और कर्मसे गुरुकी आज्ञाका पालन करता हो वही शिष्यके रूपमें स्वीकार करने योग्य है, दूसरा नहीं । जो मन्त्र और पूजाके रहस्योंको गुप्त रखता है, त्रिकाल नमस्कार करता है और शास्त्रीय आचारके तत्त्वोंको जानता है वही शिष्यरूपमें स्वीकार करने योग्य है, दूसरा नहीं; क्योंकि जो सब ...ोंसे मुक्त होता है, वही शिष्य होता है ।

..., इन लक्षणोंके स्वाध्यायसे मालूम होता है कि शिष्यका ... ऊँचा होता है । गुरुके सामने किस प्रकार रहना ... शास्त्रोंमें कहा है—

तरह-तरहसे प्रलोभित करते हैं। सिद्धान्ततः सभीको शिष्यके रूपमें स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके लिये बहुत ऊँचे अधिकारकी आवश्यकता होती है। अशुद्ध पात्रमें अच्छी चीज़ रख दी जाय तो वह बिगड़ जाती है। अनधिकारी शिष्य उत्तम साधनाको सुरक्षित नहीं रख सकता। इसलिये शिष्यकी परीक्षा भी आवश्यक है। संक्षेपमें यदि कहा जाय तो जो सद्गुरुको परमात्माके रूपमें पहचानकर शरीर, धन और प्राण उनके चरणोंमें निवेदन करके उनके ज्ञान और सिद्धिको प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है, वही शिष्य है—ऐसा कहना पड़ेगा। शिष्यका लक्षण शारदातिलकमें इस प्रकार कहा गया है—

> शिष्यः कुलीनः शुद्धात्मा पुरुषार्थपरायणः।
> अधीतवेदः कुशलो दूरमुक्तमनोभवः॥
> हितैषी प्राणिनां नित्यमास्तिकस्त्यक्तनास्तिकः।
> स्वधर्मनिरतो भक्त्या पितृमातृहितोद्यतः॥
> वाङ्मनः कायवसुभिर्गुरुशुश्रूषणे रतः।
> त्यक्ताभिमानो गुरुषु जातिविद्याधनादिभिः॥
> गुर्वाज्ञापालनार्थं हि प्राणव्ययरतोद्यतः।
> विहत्य च स्वकार्याणि गुरुकार्यरतः सदा॥
> दासवन्निवसेद्यस्तु गुरौ भक्त्या सदा शिशुः।
> कुर्वन्नाज्ञां दिवारात्रौ गुरुभक्तिपरायणः॥
> आज्ञाकारी गुरोः शिष्यो मनोवाक्कायकर्मभिः।
> यो भवेत्स तदा ग्राह्यो नेतरः शुभकांक्षया॥
> मन्त्रपूजारहस्यानि यो गोपयति सर्वदा।
> त्रिकालं यो नमस्कुर्यादागमाचारतत्त्ववित्॥
> स एव शिष्यः कर्तव्यो नेतरः स्वल्पजीवनः।
> एतादृशगुणोपेतः शिष्यो भवति नापरः॥

जो कुलीन हो और सदाचारी हो, सिद्धिके लिये तत्पर हो, वेदपाठी हो, चतुर हो और कामवासनासे रहित हो, जो समस्त प्राणियोंका हित ही चाहता हो, आस्तिक हो, नास्तिकोंका सङ्ग छोड़ चुका हो, अपने धर्ममें प्रेम रखता हो, भक्तिभावसे माता-पिताके हितमें सलग्न हो, कर्म, मन, वाणी, और धनसे गुरुसेवा करनेके लिये लालायित रहता हो, गुरुजनोंके सामने जाति, विद्या, धन आदिका अभिमान न रखता हो, गुरुकी आज्ञा पालनके लिये मृत्युतकके लिये तैयार रहता हो, अपने काम छोड़कर भी गुरुके काममें लगा रहनेवाला हो, जो गुरुके पास दासकी भाँति निवास करता हो, शिशुके समान आज्ञा पालन करता हो और दिनरात गुरुभक्तिमें डूबा रहता हो, जो मन, वाणी, शरीर और कर्मसे गुरुकी आज्ञाका पालन करता हो वही शिष्यके रूपमें स्वीकार करने योग्य है, दूसरा नहीं। जो मन्त्र और पूजाके रहस्योंको गुप्त रखता है, त्रिकाल नमस्कार करता है और शास्त्रीय आचारके तत्त्वोंको जानता है वही शिष्यरूपसे स्वीकार करने योग्य है, दूसरा नहीं, क्योंकि जो सब गुणोंसे युक्त होता है, वही शिष्य होता है।

इन लक्षणोंके स्वाध्यायसे मालूम होता है कि शिष्यका अधिकार कितना ऊँचा होता है। गुरुके सामने किस प्रकार रहना चाहिये इसके लिये शास्त्रमें कहा है—

प्रणम्योपविशेत्पार्श्वे तथा गच्छेदनुज्ञया।
मुखावलोकी सेवेत कुर्यादादिष्टमादरात्॥
असत्यं न वदेदग्रे न बहु प्रलपेदपि।
कामं क्रोधं तथा लोभं मानं प्रहसनं स्तुतिम्॥
चापल्यानि न जिह्मानि कार्याणि परिदेवनम्।
ऋणदानं तथादानं वस्तूनां क्रयविक्रयम्॥
न कुर्याद्गुरुणा सार्द्धं शिष्यो भूष्णु कदाचन।

प्रणाम करके पास बैठे, आज्ञा लेकर वहाँसे जाय, उनकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करता हुआ ही सेवा करे, आदरभावसे उनकी आज्ञाका पालन करे, झूठ न बोले, उनके सामने बहुत न बोले और काम, क्रोध, लोभ, मान हँसी, स्तुति, चपलता, कुटिलता न करे और न रोये-चिल्लाये। कल्याणकामी शिष्यको गुरुसे ऋण लेना तथा देना और वस्तुओंका क्रय-विक्रय भी नहीं करना चाहिये।'

गुरुके प्रति शिष्यके हृदयमें जितनी श्रद्धा, प्रेम और उनके महत्त्वका ज्ञान रहता है, उन्हींके अनुसार उनसे शिष्यका व्यवहार होता है। शास्त्रोंमें गुरु-महिमा और शिष्य-लक्षणका इतना विस्तार है और उनका इतना अवान्तर भेद है कि यदि संक्षेपसे भी उनका उद्धरण दिया जाय तो एक बहुत बड़ा ग्रन्थ तैयार हो सकता है। संक्षेपमें इतना समझ लेना चाहिये कि गुरुके बिना उपासना मार्गके रहस्य नहीं मालूम होते और न उसकी अड़चनें दूर होती हैं। जो उपासना करना चाहता है, वह गुरुके बिना एक पग भी नहीं बढ़ सकता। गुरुके संतोषमें ही शिष्यकी पूर्णता है। जिह्वापर 'गुरु' शब्दके आते ही वह गद्गद हो जाता है। गुरुको स्मरण करने वाली वस्तुको देखकर वह लोट पोट होने लगता है, गुरुके स्मरणमें ही समस्त देवताओंका स्मरण अन्तर्भूत है। गुरु सबसे श्रेष्ठ हैं। गुरु साक्षात् भगवान् हैं। गुरुपूजा ही भगवत्पूजा है। गुरु, मन्त्र और इष्ट देवता—ये तीन नहीं, एक हैं। गुरुके बिना शेष दोकी प्राप्ति असम्भव है। शिष्य अधिकारहीन होनेपर भी यदि सद्गुरुकी शरणमें पहुँच जाय तो वे उसे अधिकारी बना लेते हैं। पारसका स्वभाव ही लोहेको सोना बनाना है। इसलिये जिनके हृदयमें भगवत्प्राप्तिकी इच्छा है, जो वास्तवमें साधना करना चाहते हैं, उनके लिये श्रीगुरुदेवकी शरणमें जाना सर्वप्रथम कर्तव्य है।

दीक्षा और अनुशासन

'आचार्याद्धैव विदिता विद्या साधिष्ठं प्रापत् ।'

श्रीगुरुदेवकी कृपा और शिष्यकी श्रद्धा, इन दो पवित्र धाराओंका सङ्गम ही दीक्षा है । गुरुका आत्मदान और शिष्यका आत्मसमर्पण, एककी कृपा और दूसरेकी श्रद्धाके अतिरेकसे ही सफल होता है । दान और क्षय—यही दीक्षाका अर्थ है । ज्ञान, शक्ति और सिद्धिका दान एवं अज्ञान, पाप और दारिद्र्यका क्षय—इसीका नाम दीक्षा है । सभी साधनोंके लिये यह दीक्षा अनिवार्य है । चाहे इसमें देर लगे, परन्तु जबतक ऐसी दीक्षा नहीं होगी, तबतक सिद्धिका मार्ग रुका ही रहेगा । यदि समस्त साधकोंका अधिकार होता, यदि साधनाएँ बहुत नहीं होतीं और सिद्धियोंके बहुत-से स्तर न होते तो यह सम्भव था कि बिना दीक्षाके ही परमार्थकी प्राप्ति हो जाती, परन्तु ऐसा नहीं है । इस मनुष्य शरीरमें कोई पशु-योनिसे आया है और कोई देवयोनिसे, कोई पूर्व जन्ममें साधनासम्पन्न होकर आया है और कोई सीधे नरककुण्डसे, किसीका मन सुप्त है और किसीका जाग्रत ऐसी स्थितिमें सबके लिये एक मन्त्र, एक देवता और एक ध्यान हो ही नहीं सकता । यह सत्य है कि सिद्ध साधक, मन्त्र और देवता आदि रूपमें एक ही भगवान् प्रकट हैं फिर भी किस हृदयमें, किस देवता और मन्त्रके रूपमें उनकी स्फूर्ति सहज है—यह जानकर उसी रूपमें उनको स्फुरित करना, यह दीक्षाकी विधि है ।

दीक्षा एक दृष्टिसे गुरुकी ओरसे आत्मदान, ज्ञानसञ्चार अथवा शक्तिपात है तो दूसरी दृष्टिसे शिष्यमें सुप्त ज्ञान और शक्तियोंका उद्‌बोधन है। दीक्षासे ही शरीरकी समस्त अशुद्धियाँ मिट जाती हैं और देहशुद्धि होनेसे देवपूजाका अधिकार मिल जाता है। 'सद्‌गुरु और शिष्य-'शीर्षक निबन्धमें यह बात कही गयी है कि वास्तवमें गुरु एक हैं और उन्हींसे चारों ओर शक्तिका विस्तार हो रहा है। यदि परम्पराकी दृष्टिसे देखें तो मूल पुरुष परमात्मासे ही ब्रह्मा, रुद्र आदिके क्रमसे ज्ञानकी परम्परा चली आयी है और एक शिष्यसे दूसरे शिष्यमें सङ्क्रान्त होकर वही वर्तमान गुरुमें भी है। इसीका नाम सम्प्रदाय है और गुरुके द्वारा इसी अविच्छिन्न साम्प्रदायिक ज्ञानकी प्राप्ति होती है। क्योंकि मूलशक्ति ही क्रमशः प्रकाशित होती आयी है। उससे हृदयस्थ सुप्त शक्तिके जागरणमें बड़ी सहायता मिलती है और यही कारण है कि कभी-कभी तो जिनके चित्तमें बड़ी भक्ति है, वे भी भगवत्कृपाका उतना अनुभव नहीं कर पाते जितना कि शिष्यको दीक्षामें होता है।

दीक्षा बहुत बार नहीं होती; क्योंकि एक बार रास्ता पकड़ लेनेपर आगेके स्थान स्वयं ही आते रहते हैं। पहली भूमिका स्वयं ही दूसरी भूमिकाके रूपमें पर्यवसित होती है। साधनाका अनुष्ठान क्रमशः हृदयको शुद्ध करता जाता है और उसीके अनुसार सिद्धियोंका उदय एवं ज्ञानका सान्निध्य भी प्राप्त होता जाता है। ज्ञानकी पूर्णता ही साधनकी पूर्णता है। शिष्यके अधिकार-भेदसे ही मन्त्र और देवताका भेद होता है। जैसे सद्वैद्य रोगका निर्णय होनेके पश्चात् ही औषधका प्रयोग करते हैं, रोगनिर्णयके बिना औषधका प्रयोग निरर्थक है, वैसे ही साधकके लिये मन्त्र और देवताके निर्णयमें भी होता है। यदि रोगका निर्णय ठीक हो, औषध और उसका व्यवहार नियमितरूपसे हो, रोगी कुपथ्य न करे तो औषध-

फल प्रत्यक्ष देखा जाता है । इसी प्रकार साधकके लिये उसके पूर्वजन्मकी साधनाएँ, उसके संस्कार, उसकी वर्तमान वासनाएँ जानकर उसके अनुकूल मन्त्र और देवताका निर्णय किया जाय और साधक उन नियमोंका पालन करे तो वह बहुत थोड़े परिश्रमसे और बहुत शीघ्र ही सिद्धि-लाभ कर सकता है ।

जिस प्रकार ज्योतिष शास्त्रमें वर-वधूके सम्बन्धका निर्णय करनेके लिये नाड़ी, मैत्री भकूट आदिका विचार करना पड़ता है, वैसे ही मन्त्र और देवताके सम्बन्धमें भी विचार किया जाता है । ऋणी-धनी नक्षत्र राशि, कुलाकुल, सिद्धारि चक्रोंका विचार दूसरे लेखका विषय है । यहाँ संक्षेपसे दीक्षाके भेद-प्रभेदपर लिखा जाता है ।

सामान्यतः दीक्षाके तीन भेद माने जाते हैं—शाक्ती, शाम्भवी, और मान्त्री । मान्त्रीदीक्षा ही रुद्रयामल आदि ग्रन्थोंमें आणवीके नामसे प्रसिद्ध है । शाक्तीदीक्षाका विवरण करते हुए कहा गया है कि परम चेतनरूपा कुण्डलिनी ही शक्ति है । उसको जागरित करके ब्रह्मनाड़ीमेंसे होकर परम शिवमें मिला देना ही शाक्तीदीक्षा है । इस दीक्षामें श्रीगुरुदेव शिष्यके अन्तर्देहमें प्रवेश करके कुण्डलिनी शक्तिको जागरित करते हैं और अपनी शक्तिसे ही उसको मिला देते हैं । इसमें शिष्यको अपनी ओरसे कोई भी क्रिया नहीं करनी पड़ती ।

शाम्भवी दीक्षाका विवरण वायवीय संहितामें इस प्रकार मिलता है—'श्रीगुरुदेव अपनी प्रसन्नतासे दृष्टि अथवा स्पर्शके द्वारा एक क्षणमें ही स्वरूप स्थित कर देते हैं ।' रुद्रयामलमें कहा गया है कि भगवान् शम्भुके चरण द्वय से सम्भूत दीक्षा ही शाम्भवी दीक्षा है । चरण द्वयका अर्थ है—शिव और शक्ति दोनोंके चरण, सहस्रदल कमलकी कर्णिकापर चन्द्रमण्डलकी सुधाधारासे आप्लावित

उन चारों चरणोंका चिंतन करना चाहिये। तीन गुणोंके द्यातक हैं एवं चौथा निर्वाण तथा परमानन्दस्वरूप है। उनके वर्ण शुक्ल, रक्त मिश्र एवं वर्णातीत हैं। गुरुकी दृष्टिमात्रसे शिष्यका सहस्रार प्रफुल्लित हो जाता है और वह समाधिस्थ होकर कृतकृत्य हो जाता है।

मान्त्रीदीक्षा अथवा आणवीदीक्षा मन्त्र, पूजा आसन, न्यास, ध्यान आदिसे सम्पन्न होती है। इसमें गुरुदेव शिष्यको मन्त्रोपदेश करते हैं। उपयुक्त दोनों दीक्षाओंसे तत्काल सिद्धि प्राप्त हो जाती है परन्तु मान्त्रीदीक्षासे उसका अनुष्ठान करनेपर क्रमशः सिद्धि लाभ होता है। फल सबका एक ही है। सभी साधक शक्तिपातके पात्र नहीं हो सकते। मान्त्रीदीक्षासे शक्तिपातकी पात्रता प्राप्त होती है और मन्त्रदेवतात्मक शक्तिसे सिद्धि भी प्राप्त होती है।

कहीं-कहीं आणवीदीक्षाके दस भेद मिलते हैं यथा—स्मार्ती मानसी, यौगी चाक्षुषी स्पार्शिकी, वाचिकी मान्त्रिकी हौत्री, शास्त्री और अभिषेचिका।

स्मार्तीदीक्षा तब गुरु और शिष्य दोनों भिन्न भिन्न देशमें स्थित हों तब होती है। गुरु शिष्यका स्मरण करता है और उसके त्रिविध पापोंका विश्लेषण करके उन्हें भस्म कर देता है और उन्हें पुनः दिव्य पुरुषकी सृष्टि करके भूतशुद्धिमें वर्णित लययोगके क्रमसे उसे परम शिवमें स्थित कर देता है। **मानसी**दीक्षाका प्रकार भी स्मार्तीदीक्षाके समान ही है। अन्तर केवल इतना है कि स्मार्तीदीक्षामें शिष्य और गुरु पास-पास नहीं रहते और मानसीदीक्षामें दोनोंकी उपस्थिति रहती है। **यौगी**दीक्षा उसे कहते हैं, जिसमें योगी गुरु योगोक्त पद्धतिसे शिष्यके शरीरमें प्रवेश करके उसकी आत्माको अपने शरीरमें लाकर एक कर देता

है। **चाक्षुषी**दीक्षामें श्रीगुरुदेव 'मैं स्वयं परम शिव हूँ' ऐसा निश्चय करके करुणार्द्र दृष्टिसे शिष्यकी ओर देखते हैं। इतनेसे ही शिष्यके सारे दोष नष्ट हो जाते हैं और वह दिव्यत्वको प्राप्त हो जाता है। **स्पार्शिकी**दीक्षाका विधान यह है कि गुरु पहले अपने दाहिने हाथ पर सुगन्धद्रव्यद्वारा मण्डलका निर्माण करे, तत्पश्चात् वह उसपर विधिपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करे। इस प्रकार वह 'शिवहस्त' हो जाता है। 'मैं स्वयं परम शिव हूँ' यह निश्चय करके श्रीगुरुदेव असन्दिग्ध चित्तसे शिष्यके सिरका स्पर्श करते हैं। उस 'शिवहस्त'के स्पर्शमात्रसे शिष्यका शिवत्व अभिव्यक्त हो जाता है। **वाचिकी**दीक्षामें गुरुदेव पहले अपने गुरुका चिन्तन करते हैं। अपने मुखको उनका मुख समझकर शिष्यके शरीरमें न्यासादि करके विधि विधानके साथ मन्त्रदान करते हैं। **मान्त्रिकी**दीक्षामें गुरुदेव स्वयं अन्तर्न्यास, बहिर्न्यास आदि करके मन्त्र-शरीर हो जाते हैं और अपने शरीरमेंसे शिष्यके शरीरमें मन्त्रका संक्रमण चिंतन करते हैं। **हौत्री**दीक्षामें पहले कुण्डमें या वेदीपर अग्निस्थापन होता है। वहाँ षडध्वाका संशोधन करके होमसे ही दीक्षा सम्पन्न होती है। षडध्वाका संशोधन दूसरे लेखका विषय है। **शास्त्री**दीक्षा सामग्रीसे सम्पन्न नहीं होती। भगवत्पूजाके प्रेमी, भक्त, सेवापरायण शिष्यको उसकी योग्यताके अनुसार शास्त्रीय पद्धतिके द्वारा दीक्षा दी जाती है। **अभिषेचिका**दीक्षाका प्रकार यह है कि पहले गुरुदेव एक घटमें शिव और शक्तिकी पूजा करते हैं, फिर उसके जलसे शिष्यका अभिषेक करते हैं। यही अभिषेचिकादीक्षा है। ये सब शक्तिपातके प्रकारभेद हैं।

शारदातिलकमें दीक्षाके चार भेदोंका विस्तारसे वर्णन है। वे चार भेद हैं—क्रियावती, वर्णमयी, कलावती और वेधमयी। **क्रियावती**दीक्षामें कर्मकाण्डका पूरा उपयोग होता है। स्नान,

सन्ध्या, प्राणायाम, भूतशुद्धि, न्यास, ध्यान, पूजा, शङ्खस्थापन आदिसे लेकर शास्त्रोक्त पद्धतिसे हवनपर्यन्त कर्म किये जाते हैं। षडध्वाके शोधनक्रमसे पृथक्-पृथक् आहुति देकर शिवमें विलीन करके पुन सृष्टिक्रमसे शिष्यका चैतन्ययोग सम्पादित होता है। गुरु शिष्यसे अपनी एकताका अनुभव करता हुआ। आत्मविद्याका दान करता है। गुरु मन्त्र प्राप्त करके शिष्य धन्य धन्य हो जाता है।

वर्णमयीदीक्षा न्यासरूपा है। अकारादि वर्ण प्रकृति-पुरुषात्मक हैं। शरार मी प्रकृति-पुरुषात्मक होनेके कारण वर्णात्मक ही है। इसलिये पहले समस्त शरीरमें वर्णोंका सविधि न्यास किया जाता है। श्रीगुरुदेव अपनी आज्ञा और इच्छा-शक्तिसे उन वर्णोंको प्रतिलोमविधिसे अर्थात् सहार-क्रमसे विलीन कर देते हैं। यह क्रिया सम्पन्न होते ही शिष्यका शरार दिव्य हो जाता है और गुरुके द्वारा वह परमात्मामें मिला दिया जाता है। ऐसी स्थिति होनेके पश्चात् श्रीगुरुदेव पुन शिष्यको पृथक् करके दिव्य शरीरकी सृष्टिक्रमसे रचना करते हैं। शिष्यमें परमानन्दस्वरुप दिव्य भावका विकास होता है और वह कृतकृत्य हो जाता है।

कलावतीदीक्षाकी विधि निम्नलिखित है। मनुष्यके शरीरमें पाँच प्रकारकी शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। पैरके तलवेसे जानुपर्यन्त निवृत्ति शक्ति है, जानुसे नाभिपर्यन्त प्रतिष्ठा-शक्ति है, नाभिसे कण्ठपर्यन्त विद्या शक्ति है, कण्ठसे ललाटपर्यन्त शान्ति-शक्ति है, ललाटसे शिरापर्यन्त शान्त्यतीत कला-शक्ति है। सहार क्रमसे पहलीका दूसरीमें, दूसरीका तीसरीमें और अन्तत. कलाको शिवसे सयुक्त करके शिष्य शिवरूप कर दिया जाता है। पुन. सृष्टि-क्रममें इसका विस्तार किया जाता है और शिष्य दिव्य भावको प्राप्त होता है।

वेधमयीदीक्षा षट्चक्रवेधन ही है। जब गुरु कृपा करके अपनी शक्तिसे शिष्यका षटचक्रभेद कर देते हैं, तब इसीको वेधमयी दीक्षा कहते हैं। गुरु पहले शिष्यके छ चक्रोंका चिन्तन करते हैं और उन्हें क्रमशः कुण्डलिनी शक्तिमें विलीन करते हैं। छ चक्रोंका विलयन बिन्दुमें करके तथा बिन्दुको कलामें, कलाको नादमें, नादको नादान्तमें, नादान्तको उन्मनीम, उन्मनीको विष्णुमुखमें और तत्पश्चात् गुरुमुखम मिला देते हैं। गुरुकी इस कृपासे शिष्यका पाश छिन्नभिन्न हो जाता है। उसे दिव्य बोधकी प्राप्ति होती है और वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार यह वेधमयी दीक्षा सम्पन्न होती है।

इसके अतिरिक्त एक पञ्चायतनी दीक्षा भी होती है। इसमें शक्ति, विष्णु, शिव, सूर्य और गणेश इन पाँचोंकी पूजा होती है। पाचोंके पृथक्-पृथक् यन्त्र बनते हैं। जिसकी प्रधानता रखनी होती है, उसका मध्यमें स्थापित करते हैं, शेष देवताओंको चार कोनोंपर। जैसे शक्तिको बीचम स्थापित करें तो ईशानमें विष्णु, अग्निमें शिव, नैऋत्यमें गणेश और वायु कोणमें सूर्यकी पूजा की जाती है। यदि मध्यमें शंकर हों तो ईशानमें विष्णु, अग्निमें सूर्य, नैऋत्यमें गणेश और वायुकोणमें शक्तिकी पूजा की जाती है। यदि मध्यमें सूर्य हो तो ईशानम शिव, अग्निम गणेश नैऋत्यमें विष्णु और वायुकोणमें शक्तिकी पूजा की जाती है। यदि मध्यमें गणेश हो तो ईशानमें विष्णु, अग्निमें शिव, नैऋत्यमें सूर्य और वायुकोणमें शक्तिकी पूजा की जाती है। गणेश-विमर्शिनीमें कहा गया है कि क्रम भग करनेपर सिद्धि नहीं मिलती। गौतमीय तन्त्र और रामार्चन चन्द्रिकाके अनुसार इनमें उलट-फेर भी किया जा सकता है। सविधि पूजा करके पुष्पाञ्जलि दी जाती है। इस पञ्चायतन-पूजाकी

विधि और मन्त्र गुरुसे प्राप्त होते हैं। तारा, छिन्नमस्ता आदि कुछ देवताओंकी पञ्चायतनी दीक्षा नहीं होती।

शास्त्रोंमें, विशेष करके तन्त्रग्रन्थोंमें क्रम-दीक्षाका भी वर्णन आया है। इसकी बड़ी महिमा है। इसमें शुद्धि तथा सिद्धादि चिन्तन आदिकी कोई आवश्यकता नहीं होती, यह केवल गुरुकृपा साध्य है। दिन, महीना अथवा वर्षके क्रमसे दीक्षा और अभिषेक होते हैं। क्रमशः साधकका अधिकार बढ़ता जाता है और वह एक दीक्षा से दूसरी दीक्षाके स्तर में पहुँचता जाता है। इस दीक्षाकी पद्धति साधारण लोगोंके लिए उपयोगी नहीं है। इसलिये गुरु और शास्त्रके द्वारा ही इसका अधिगम प्राप्त करना चाहिये। इसी प्रकार आम्नाय-भेदसे भी दीक्षाका भेद होता है। वैदिकदीक्षा तान्त्रिकदीक्षा मिश्रदीक्षा भावदीक्षा, स्वप्नदीक्षा, महादीक्षा आदि अनेकों प्रकारकी दीक्षाएँ हैं, जो भगवत्कृपासे फलस्वरूप अधिकारी साधकोंको प्राप्त होती है। बिना दीक्षा लिये कोई दीक्षाका महत्त्व जान नहीं सकता।

यह सत्य है कि वर्तमान समयमें दीक्षा एक प्रथामात्र रह गई है। न शिष्यमें साधनाकी ओर प्रवृत्ति है और न गुरुमें साधनाकी शक्ति। फिर साधारण दीक्षाका उज्ज्वल रहस्य लोगोंकी विषयोन्मुख बुद्धिमें किस प्रकार आ सकता है। परन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि अब कोई योग्य सद्‌गुरु हैं ही नहीं। जो अधिकारी पुरुष उनकी खोज करता है, उसे वे मिलते हैं और वैसी ही दीक्षा सम्पन्न होती है जैसी कि प्राचीन समयमें होती थी। हाँ, जो लोग इतना परिश्रम नहीं करना चाहते उनके लिये साधनाकी अपेक्षा भजनकी प्रणाली अधिक सुगम है। वे आर्त्त भावसे भगवान्‌की प्रार्थना करते रहें, श्रद्धा और प्रेमसे उनका नाम लेते रहें। जिस सन्तके प्रति उनका विश्वास हो उसका सङ्ग और आज्ञापालन करते रहें। एक-न-एक दिन उनका

मार्ग भी ते हो ही जायगा। यदि आवश्यकता होगी उनका अधिकार होगा तो एक न एक दिन उन्हें सद्गुरु और दीक्षाकी प्राप्ति होगी।

दीक्षाके पश्चात् गुरु शिष्यके प्रति मर्यादाओंका उपदेश करते हैं। शास्त्रोंमें उसे 'समय' कहा गया है। श्री हरिभक्तिविलास' नामक ग्रन्थमें *विष्णुयामलके चार सौ नियमोंका उल्लेख है जिनके पालनसे* ही दीक्षाका पूर्ण फल मिलता है, उन सबका उल्लेख यहाँ सम्भव नहीं है। यहाँ श्री नारद पाञ्चरात्रके कुछ श्लोक उद्धृत किये जाते हैं—

> स्वमन्त्रो नोपदेष्टव्यो वक्तव्यश्च न संसदि ।
> गोपनीयं तथा शास्त्रं रक्षणीयं शरीरवत् ॥
> वैष्णवानां परा भक्तिराचार्याणां विशेषतः ।
> पूजनं च यथाशक्ति तानापन्नांश्च रक्षयेत् ॥
> प्राप्तमायतनाद्विष्णोः शिरसा प्रणतो वहेत् ।
> निक्षिपेदम्भसि ततो न पतेद्भुवनौ यथा ॥
> सोमसूर्यान्तरस्थं च गवाश्वत्थाग्निमध्यगम् ।
> भावयेद्देवतं विष्णुं गुरुविप्रशरीरगम् ॥
> प्रदक्षिणे प्रयाणे च प्रदाने च विशेषतः ।
> प्रभाते च प्रवासे च स्वमन्त्रं बहुशः स्मरेत् ॥
> स्वप्ने चाक्षिसमक्षं वा आश्चर्यमतिहर्षदम् ।
> अकस्माद् यदि जायेत न ख्यातव्यं गुरोर्विना ॥

अपने मन्त्रका किसीको उपदेश नहीं करना, सभामें नहीं कहना, पूजाविधिको गुप्त रखना और इस विषयके शास्त्रकी शरीरकी भाँति रक्षा करना, वैष्णवों और आचार्योंसे विशुद्ध प्रेम रखना और उनकी पूजा करना, भगवान्के मन्दिरसे पुष्पमाल्यादि प्राप्त हों तो उसे सिरपर धारण करना और जमीनपर न गिराकर पानी में डाल देना, सूर्य, चन्द्रमा, गौ, पीपल, अग्नि ब्राह्मण और गुरुजनोंमें अपने इष्टदेव

भगवान्‌का दर्शन करना प्रदक्षिणा, यात्रा एवं विदेशमें, प्रातःकाल और दानके समय विशेष रूपसे बार-बार भगवान्‌का स्मरण करना, स्वप्नमें अथवा आँखोंके सामने यदि कोई आश्चर्यजनक और आनन्ददायक दृश्य आ जाय तो गुरुके अतिरिक्त और किसीसे नहीं कहना।

इस प्रकार साधक जीवनके लिये उपयोगी बहुत सी बातें गुरु बताते हैं। शिष्य उन्हें धारण करता है और वैसे ही अपना जीवन बनाता है। उपासनाकाण्ड साधनसापेक्ष है। इसमें इष्टदेवके स्वरूप और साधन-पद्धतिके ज्ञानमात्रसे ही कल्याण नहीं होता। उनका ज्ञान प्राप्त करके अनुष्ठान करना पड़ता है। जो शिष्य सद्गुरुसे सम्प्रदायानुगत दीक्षा प्राप्त करके उसका अनुष्ठान करता है उसको अवश्य ही सिद्धि लाभ होता है। उसकी परम्परामें कभी कोई अज्ञानी नहीं होता।

'नास्याब्रह्मवित् कुले भवति।'

साधकोंके कुछ दैनिक कृत्य

मनुष्य विचारप्रधान प्राणी है। यह पशुत्वसे ऊपर उठकर दिव्यत्वकी ओर जा रहा है। पशुकी अपेक्षा मनुष्यकी यही विशेषता है कि पशु तो अपनी आँखोंके सामने कोई मोहक रूप देखकर उसे पानेके लिये दौड़ पड़ता है और उसके प्रलोभनमें फँसकर पीछे होनेवाली ताड़नापर दृष्टि नहीं रखता, उसे तो केवल वर्तमान सुख चाहिये। परन्तु मनुष्य किसी आकर्षक वस्तुको देखकर उसे जानता है, यह विचार करता है और फिर यदि वह वस्तु अपने जीवनकी प्रगतिमें सहायक हुई तो उसे जहाँतक वह अपनी उन्नतिमें बाधक न हो, स्वीकार करता है और उसका उपयोग करता है। मनुष्यकी दृष्टि क्षणिक उपभोग-सुखपर, जो कि अत्यन्त तुच्छ और क्षुद्र है, कभी मुग्ध नहीं होती। यदि मुग्ध होती है तो अभी उसका पशुत्व निवृत्त नहीं हुआ है, जो कि अबसे बहुत पहले हो जाना चाहिये था। परन्तु पूर्व संस्कारों और वर्तमान जन्मके अभ्यास और सङ्गसे जब मनुष्यकी दृष्टि तमसाच्छन्न रहती है तब उसका पशुत्व अपना काम करता रहता है और वह बुद्धिका प्रयोग न करके केवल मनको प्रिय लगनेवाले विषयोंके पीछे ही भटकता रहता है। यह पशुत्व है, जिसको नष्ट करके मनुष्यत्वको जागरित करना पड़ेगा। यह मनुष्यत्वका जागरण सहसा भी सम्पन्न हो सकता है और क्रमविकाससे भी सम्भव है। जिनका मनुष्यत्व जागरित है, उनके मनुष्यत्वकी रक्षा और दिव्यत्वकी जागृतिके लिये तथा जिनका सुषुप्त है, उनके पशुत्वकी निवृत्ति और मनुष्यत्वके जागरणके लिये एक ऐसे निर्दिष्ट पथकी आवश्यकता है जो केवल मनको प्रिय लगनेवाले विषयोंकी परिधिमें ही सीमित न हो प्रत्युत ज्ञानके विश्वव्यापी

आलोकसे देदीप्यमान हो और जिसमें पद पदपर दिव्यभावकी झाँकी एवं उसकी ओर अग्रसर होनेके प्रत्यक्ष निदर्शन प्राप्त होते हों। यही पथ सदाचारका पथ है, जो पाशविक प्रवृत्तियों और उच्छृङ्खल वृत्तियोंको चूर-चूर करके एक ऐसी मर्यादामें स्थापित कर देता है, जो शान्ति और आनन्दका उदय है तथा जिसके मूलमें दिव्यताकी पूर्ण प्रतिष्ठा है। सदाचारका राजपथ इतना सुस्पष्ट और प्रशस्त है कि उसका विज्ञान अथवा रहस्य समझानेकी आवश्यकता नहीं होती। उसकी रूप रेखापर एकबार दृष्टि डालते ही उसकी उत्तमता अवगत हो जाती है और जो अपने जीवनको एक निर्दिष्ट लक्ष्यपर ले जाना चाहते हैं, वे तो अवश्य ही उसका आश्रय कर लेते हैं।

हिन्दूजातिकी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता इस बातकी साक्षी है कि उसकी निगमनिष्ठाने उच्च से उच्च आध्यात्मिक तत्त्वोंके आविष्कार, उनकी उपपत्ति और उसके सम्बन्धकी धारणाओंको क्रियात्मक रूप देनेमें सफलता प्राप्त की है और वह न केवल आध्यात्मिक योग्यतामें ही प्रत्युत शारीरिक और जागतिक प्रवृत्तियोंमें भी उन जातियोंसे बहुत ही आगे रही है, जो आजकल उन्नतिके शिखरपर प्रतिष्ठित मानी जाती हैं। आजकी परिस्थिति ऐसी है कि अधिकांश लोग यह भी नहीं जानते कि उस आचार व्यवहारका क्या स्वरूप था, जिसके द्वारा प्राचीन कालमें समुद्र-गम्भीर बुद्धि और हिमाचलके समान अविचल एकाग्रतासे सम्पन्न होकर लोग असम्भवको भी सम्भव करनेमें समर्थ हो सके थे। वास्तवमें उन आचरणोंमें ऐसी ही क्षमता है। उनको कोई अपने जीवनमें लाकर देखे तो सही, सारी समस्याएँ स्वयं हल हो जायँगी। वे आचरण कृत्रिम नहीं, सहज हैं। उनके पालनमें कष्ट नहीं, सुख है। वे किसीकी स्थितिके विरोधी नहीं, उन्नायक हैं। संक्षेपतः उन्हींका दिग्दर्शन करानेकी चेष्टा की जाती है।

निद्रा-त्याग

रात्रिका चौथा भाग बड़ा ही पवित्र है। उस समय प्रकृति शीतल रहती है एवं चारों ओर शान्तिका साम्राज्य रहता है। बाहरी विक्षेप कम एवं आन्तरिक अनुकूलता अधिक होनेके कारण मन सहज ही अन्तर्देशमें प्रवेश करता है। किसी भी विषयपर गम्भीरतासे विचार करनेका यह सर्वोत्तम समय है। मनुष्य-जीवनका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है, इसलिये शास्त्रकारोंने आदेश किया है कि मनुष्यको इस शान्त समयसे लाभ उठाना चाहिये। धर्मार्थचिन्तन और स्वास्थ्यलाभकी दृष्टिसे भी उस समय जागरण ही श्रेयस्कर है। बहुत ही प्राचीन कालसे यह समय ब्राह्ममुहूर्तके नामसे प्रसिद्ध है। इस समयमें जगकर दिनभरके लिये उपयुक्त शक्ति और शान्तिका सग्रह कर लेना चाहिये। जो इस पवित्र समयको निद्रा, प्रमाद अथवा आलस्यवश यों ही गँवा देता है, वह अपने लाभकी एक उत्तम सामग्री खो बैठता है। साधकोंके लिये यह बतलाया गया है कि वे रात्रिका चौथा भाग प्रारम्भ होते ही उठ बैठें और हाथ पैर धोकर शयनका वस्त्र परित्याग कर दें एवं आचमन करके अपने आसनपर बैठकर श्रीगुरुदेवका ध्यान करें। गुरुदेव स्वयं शिवस्वरूप हैं और अपनी शक्तिके साथ मस्तकस्थित सहस्रदल कमलमें विराजमान हैं। उनके नेत्रोंसे अनुग्रहकी वर्षा हो रही है, एवं उनके चरणकमलोंकी नखच्छटासे एक ऐसी अमृतमयी ज्योति निकल रही है, जो मेरे सम्पूर्ण अन्तःकरण, प्राण और शरीरमें एक महान् शक्तिका सञ्चार कर रही है। इस प्रकार श्रीगुरुदेवका चिन्तन करके इष्टदेवका ध्यान करनेके लिये उनसे अनुमति ले और अपनी साधनाके अनुसार कुण्डलिनी शक्ति अथवा इष्ट मूर्तिका ध्यान करे। ब्रह्ममुहूर्तके ध्यानमें निद्रा और आलस्यके लिये अवसर नहीं होता। मन शीघ्र ही अन्तर्मुख हो जाता है,

अवश्य ही थोड़ी सी लगन और प्रेमकी आवश्यकता है। ध्यान करते समय समस्त शारीरिक और व्यावहारिक चिन्ताओंसे मुक्त हो जाना चाहिये। भीतर ही भीतर मनको अपने हाथमें उठा लेना चाहिये और जबतक वह स्थिरभाव न ग्रहण करे तबतक बार बार ले जाकर उस इष्टदेवके चरणोंमें चढ़ाते रहना चाहिये। इस क्रियामें आनन्दका इतना अधिक अनुभव करना चाहिये कि मन स्वयं उसमें रस लेने लगे और इस स्थितिसे नीचे न उतरना चाहे।

सूर्योदय होनेमें कुछ विलम्ब हो तभी यह निश्चय करके उठना चाहिये कि 'आज मेरे जीवनकी सम्पूर्ण क्रिया, यहाँतक कि छोटे मोटे व्यवहार भी भगवान्का स्मरण करते हुए भगवान्के लिये होंगे। मेरी किसी भी क्रियासे किसी भी प्राणीको कष्ट नहीं पहुँचेगा और किसी भी परिस्थितिमें मेरे चित्तमें उद्वेग, अशान्ति, क्रोध, हिंसा, द्वेष विषाद चिन्ता और दुःखका प्रवेश नहीं होगा। पिछले दिनोंकी अपेक्षा आज मैं अधिक शान्त सर्वथा पवित्र रहूँगा और अत्यन्त तीव्र गतिसे अपने लक्ष्यकी ओर बढ़ूँगा। आजका दिन मेरे लिये बड़ा ही मङ्गलमय है।' इस सत्सङ्कल्पके साथ ही शौच, स्नानादि आवश्यक कृत्योंके लिये यात्रा करनी चाहिये।

प्रातःकाल भगवान्के स्तोत्र उनके जागरणके मङ्गलगीत, उनके पावन नामोंका मधुर कीर्तन, हृदयस्पर्शी प्रार्थना और युधिष्ठिर, जनक नल आदि महापुरुषोंका स्मरण, उनके नामोंका उच्चारण आदि—जैसा कि प्राचीन परिपाटीका पालन करनेवाले हिन्दू घरानोंमें आजकल भी देखा जाता है—करना चाहिये। जिसका प्रभात मङ्गलमय है, उसका सारा दिन मङ्गलमय है।

स्नानविधि

मनुष्य-जीवनमें भोजनसे भी ऊँचा स्थान है स्नानका। यों तो भोजन भी साधनाका एक अङ्ग ही है—यदि साधनके रूपमें उसका अनुष्ठान हो; परन्तु भोजनमें तो कभी-कभी व्यवधान भी डालना पड़ता है, लेकिन स्वस्थ पुरुषके लिये ऐसा एक दिन भी नहीं है जिसमें स्नान करनेका निषेध हो। स्नानके लिये सर्वोत्तम *स्थान समुद्र और गङ्गा, नर्मदा, गोदावरी आदि महानदियाँ हैं।* उनके अभावमें छोटी छोटी नदियाँ, प्राकृतिक सोते, स्वच्छ जलके ताल, सरोवर, बावली और कुएँ हैं। जिस जलकी पवित्रता सन्दिग्ध हो, जो स्वास्थ्यके लिये हानिकर, चित्तके लिये ग्लानिकर एवं अस्वच्छ हो उसमें स्नान नहीं करना चाहिये। जलके समीप शुद्ध भूमिपर अपने वस्त्र आदि स्थापित करके जलाधिष्ठात्री देवताको नमस्कार करके स्नानकी अनुमति माँगे और फिर अपने ऊपर जल छिड़ककर सङ्कल्प करे—'ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्र. अमुकनामाहं भगवत्प्रीतये अमुकर्नार्थे स्नान करिष्ये।' इसके पश्चात् अपनी शाखोक्त पद्धतिसे वैदिक स्नान करके फिर इष्ट-मन्त्रसे अङ्गन्यास और प्राणायाम करे।

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

इस मन्त्रसे अङ्कुश-मुद्रा करते हुए ऐसी भावना करे कि सूर्यमण्डलसे साक्षात् इस तीर्थकी अधिष्ठात्री देवता उतर रही है। 'व' इस अमृत बीजका उच्चारण करके धेनुमुद्रा करते हुए ऐसी भावना की जाय कि यह जल अमृतस्वरूप हो गया है। 'हु' इस मन्त्रसे कवच-मुद्राके द्वारा अवगुण्ठन करके, 'फट्' इस मन्त्रसे *संरक्षण करके और ग्यारह बार इष्ट-मन्त्रका जप करके अभिमन्त्रित*

करे। सूर्यको बारह अञ्जलि जल देकर यह भावना करे कि मेरे इष्टदेवके चरणकमलोंसे ही यह जल निकला हुआ है, इसलिये परम पावन है। तत्पश्चात् उसमें तीन डुबकी लगावे और अपने इष्ट-देवका स्मरण करता हुआ मन्त्रका जप करे। कलश-मुद्रासे अपने सिरपर तीन बार अभिषेक करे और तत्पश्चात् वैदिक सन्ध्या और तर्पण आदि करे। सूर्यार्घ्य, अघमर्षण और तर्पण आदि क्रियाएँ तान्त्रिक विधिसे भी की जा सकती हैं। देवतर्पण, ऋषितर्पण एवं पितृतर्पण करके गुरु, परमगुरु, परात्पर गुरु और परमेष्ठिगुरुका भी तर्पण करना चाहिये।

इसके अतिरिक्त चाहे गङ्गामें स्नान करते हों या अन्यत्र, श्रीगङ्गाजीका ध्यान और मन्त्र-जप कर लेना चाहिये। साधारणतः एक तीर्थमें दूसरे तीर्थका ध्यान करना तीर्थापराध है, परन्तु गङ्गाका स्मरण अपवादस्वरूप है। गङ्गाका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—'वे शुद्ध स्फटिकके समान श्वेतवर्ण हैं। श्वेत वस्त्र, श्वेत आभूषण, श्वेत पुष्पमाला और श्वेत ही मुक्तामाला धारण किये हुए हैं। उनकी अवस्था सर्वदा सोलह वर्षकी रहती है और ब्रह्मादि देवता, बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि उनकी सेवामें संलग्न रहते हैं।' इस प्रकारका ध्यान करके उनके मन्त्रका जप करना चाहिये। उनका मन्त्र है—'ॐ ह्रीं गङ्गायै ॐ ह्रीं स्वाहा' उपर्युक्त ध्यान करके इस मन्त्रका जप करते हुए चाहे जहाँ भी स्नान किया जाय, गङ्गास्नानका फल प्राप्त होता है।

स्नान सात प्रकारके होते हैं। उनके नाम ये हैं—मान्त्र, भौम, आग्नेय, वायव्य, दिव्य, वारुण और मानस। 'आपोहि ष्ठा०' इत्यादि मन्त्रोंसे जो मार्जन होता है, उसको मान्त्र स्नान कहते हैं। शरीरमें मिट्टी लगाकर उसके प्रक्षालनको भौम स्नान कहते हैं।

भस्म-स्नानको आग्नेय स्नान कहते हैं । गौओंके चरणोंकी धूलि वायुके द्वारा उड़कर आती है और सारे पापोंको धोकर शरीरको पवित्र कर देती है । यह गोरज स्नान जब इच्छापूर्वक किया जाता है, तब इसके निमित्त-कारण वायुके नामसे इसको वायव्य स्नान कहते हैं । धूपमें होती हुई वर्षामें जो स्नान होता है, वह दिव्य स्नान है । जलमें डुबकी लगाना वारुण स्नान है और भगवान्का चिन्तन मानस स्नान है । मानस स्नान अपने इष्टदेवके अनुसार होता है । यहाँ उसके कुछ प्रकारविशेष लिखे जाते हैं ।

वैष्णवका आभ्यन्तर स्नान इस प्रकार होता है—' साधकको ऐसा चिन्तन करना चाहिये कि ऊपर मेरे सामने आकाशमें द्वादशदल कमलपर, जिसके प्रत्येक दलपर द्वादशाक्षर मन्त्रका एक एक अक्षर अङ्कित है, शङ्ख-चक्र-गदाधारी चतुर्भुज भगवान् विष्णु विराजमान हैं । वे वनमाला पहने हुए हैं । उनके नेत्र-कमलोंसे आशीर्वाद और प्रेमकी वर्षा हो रही है । उनके मुख कमलसे कोटि कोटि सूर्योंके समान प्रकाशकी किरण चारों ओर फैल रही हैं । उनके चरणकमलोंसे अमृतकी एक धारा निकलकर मेरे सिरपर गिर रही है और मेरे ब्रह्मरन्ध्रके द्वारा शरीरमें प्रवेश करके समस्त वासनाओं, संस्कारोंको धो रही है । मेरा शरीर, अन्तःकरण और स्वयं मैं स्फटिक मणिके समान स्वच्छ एवं निर्मल हो रहा हूँ ।' ऐसी भावनासे जो आभ्यन्तर स्नान किया जाता है—शास्त्रोंमें कहा है कि वह मान्त्र स्नानसे भी हजार गुना उत्तम है ।

शाक्तोंके आभ्यन्तर स्नानमें ऐसा चिन्तन होता है कि ज्ञानानन्दस्वरूपिणी महामाया अपने बीजाक्षर 'ह्रीं' के रूपमें प्रकट हो रही है । तीन 'ह्रीं' मेंसे सत्, चित् और आनन्दकी तीन धाराएँ प्रवाहित होकर मुझे सम्पूर्ण रूपसे आप्लावित कर रही हैं । ये धाराएँ अविच्छिन्न आनन्द, अनन्त ज्ञान और अखण्ड स्वातन्त्र्यकी

वितरण करती हैं। इनका अनुभव केवल भावुक साधक ही कर सकता है। जो इस प्रकार आभ्यन्तर स्नान करता है, वह कृतकृत्य हो जाता है।

शैवोंका आभ्यन्तर स्नान इस प्रणालीसे होता है—'अपने इष्ट मन्त्रसे प्राणायाम करके मूलाधारसे लेकर आज्ञाचक्र पर्यन्त शक्तिका उत्थान और गमन सम्पन्न करके सहस्रारस्थित परमशिवके साथ उसका सङ्गम करावे। उन दोनोंके सम्मिलनसे प्रकट अमृतकी धारामें मैं स्नान कर रहा हूँ ऐसी भावना करे।' यह शैवाभ्यन्तर स्नान सद्योमुक्तिस्वरूप है। इसी प्रकार अन्य देवताओंका भी आभ्यन्तर स्नान होता है।

जैसे पृथिवीतलम और स्थूल ब्रह्माण्डमें गङ्गा, मन्दाकिनी, भोगवती आदि अनेकों नदियाँ और मानस सरोवर आदि अनेकों तीर्थ स्नानके लिये विशेष महत्त्वके माने गये हैं वैसे ही पिण्ड ब्रह्माण्डके अत्यन्त सूक्ष्म भावराज्य अथवा मनोमय जगत्में भी स्नानके अनेकों तीर्थ माने गये हैं। यह भी कहा गया है कि जो अन्तर्जगत्मे तीर्थोंमें स्नान करते हैं, उन्हें बाह्य तीर्थोंके स्नानकी विशेष अपेक्षा नहीं रहती। जगत्के सुख दुःख और बन्ध-मुक्तिका कारण मन ही है। जिसका मन तीर्थसेवी हो गया, वह समस्त गोरखधन्धोंसे छुटकारा पा गया। उदाहरणके लिये मनुष्यके हृदयमें पुष्कर तीर्थ है, शिरोभागमें बिन्दु तीर्थ है, सुषुम्णामें शिव तीर्थ है, इडा, पिङ्गला और सुषुम्णाका जहाँ समागम होता है वहाँ त्रिवेणी तीर्थराज है, भौंहोंके बीचमें वाराणसी है। इसी प्रकार छहों चक्रोंमें विशेष विशेष तीर्थ हैं। उनमें जो स्नान करता है, वह स्नानमात्रसे ही समस्त पापोंसे मुक्त एवं भगवत्प्राप्तिका अधिकारी हो जाता है। स्नानकी उपर्युक्त विधि शरीर, प्राण, मन, सभीकी दृष्टिसे कितनी लाभप्रद है—यह कहनेकी आवश्यकता नहीं।

वस्त्रधारण

वस्त्रधारणके सम्बन्धमें यह नियम है कि यदि जलके अन्दर ही नित्यकर्म करना हो तब तो गीले वस्त्रसे ही कर लेना चाहिये परन्तु यदि स्थलपर करना हो तो अवश्य ही सूखा वस्त्र पहन लेना चाहिये। वस्त्र शुद्ध होना चाहिये और सादा भी। नीला वस्त्र कभी नहीं पहनना चाहिये। सिले हुए, जले हुए, फटे हुए और दूसरेका (पारक्य) वस्त्र पहनकर नित्यकर्म करनेका निषेध है।

न कुर्यात् सन्धितं वस्त्रं देवकर्मणि भूमिप।
न दग्धं न च वै छिन्नं पारक्यं न तु धारयेत्॥

यहाँ 'पारक्य'का अर्थ दूसरेका किया गया है। एक बार पण्डित श्रीपद्मनाभजी तर्कनन्दन इस शब्दका अर्थ 'विदेशी' किया था। अर्थात् विदेशी वस्त्र पहनकर नित्यकर्म नहीं करना चाहिये। अतः वणका रेशमी वस्त्र नित्यकर्ममें तो प्रशस्त है पर उसे पहनकर स्नान नहीं करना चाहिये। ऊनी वस्त्र मलमूत्रके त्यागके समय नहीं पहनना चाहिये। बाकी सब समय पहना जा सकता है। ऊनी कपड़ेकी अशुद्धि अग्नि ताप, वायु और सूर्यकी किरणोंसे ही नष्ट हो जाती है। दृष्ट और कर्मोंके भेदसे भी वस्त्र भेद होता है। इन सब बातोंका विचार करके ही वस्त्र धारण करने चाहिये। वस्त्रोंमें मल रहनेसे शरीर और चित्तपर उनका बुरा प्रभाव पड़ता है। इसलिये वस्त्रोंको सदा धोकर साफ रखना चाहिये। बिना धोये अथवा धोबीके यहाँ धोये हुए वस्त्र भी अपवित्र माने गये हैं। धोबीके घर धुले वस्त्रोंको फिरसे धोकर पहनना चाहिये। मैले गंदे और दूषित वस्त्र अस्वास्थ्य ग्लानि आदिके कारण होनेसे भावोत्पत्तिमें प्रतिबन्धक होते हैं। *भगवदीय अथवा आध्यात्मिक रसकी अनुभूतिके*

लिये जितने भी उद्दीपन आवश्यक हैं, उनमें वस्त्र भी हैं। इसलिये इसका विचार कर लेना चाहिये।

तिलक अथवा भस्म

वस्त्रधारणके पश्चात् पूर्वमुख अथवा उत्तरमुखसे बैठकर तिलक धारण करना चाहिये। श्वेत या रक्त चन्दन, गोपी-चन्दन, कुंकुम, मृत्तिका, मलयज, विल्वपत्र भस्म आदिसे अपने-अपने सम्प्रदायके अनुसार तिलक करना चाहिये। और कुछ न हो तो जलसे ही तिलक कर लेना चाहिये। शास्त्रोंमें इसकी बड़ी महिमा है। इसके द्वारा भगवान्की स्मृतिमें सहायता मिलती है। वैष्णवोचित तिलक देखते ही बहुतसे लोग 'जय सियाराम' 'जय श्रीकृष्ण' और भस्मके त्रिपुण्ड्र देखकर 'जय शङ्कर' आदि कहकर भगवान्का स्मरण करते हैं। उससे अपने हृदयमें भी बड़ी पवित्रता और आनन्दका अनुभव होता है। तिलकके रूपमें अपने इष्टदेव ही तो शरीरपर निवास करते हैं—जिसके हृदयमें इस सुन्दर भावका उदय होता है, उसकी शान्तिमें सन्देह ही क्या है! सिर, ललाट, कण्ठ, दोनों बाहुमूल, नाभि, पीठ और दोनों बगलमें-बारह अङ्गोंमें तिलक करनेका विधान है। इनकी आकृति साम्प्रदायिक परम्परासे जाननी चाहिये। तिलक करनेका सामान्य मन्त्र है—

> केशवानन्त गोविन्द वराह पुरुषोत्तम।
> पुण्यं यशस्यमायुष्यं तिलकं मे प्रसीदतु॥

चन्दन-धारणका मन्त्र है—

> कान्ति लक्ष्मीं धृतिं सौख्यं सौभाग्यमतुलं मम।
> ददातु चन्दनं नित्यं सततं धारयाम्यहम्॥

इतना विशेष समझ लेना चाहिये कि त्रिपुण्ड्र और ऊर्ध्वपुण्ड्र दोनों एक व्यक्तिके लिये एक साथ निषिद्ध हैं। इसलिये दोनोंमेंसे कोई एक ही करना चाहिये। इनसे शरीर और मनमें पवित्रताका विशेष सञ्चार होता है।

सन्ध्या

सन्ध्याकी विधि बहुत ही प्रसिद्ध है। यह इतनी पवित्र विधि है कि व्यावहारिक जीवनको पूर्ण बनाने, परमार्थकी ओर अग्रसर होने, पाप एवं पापजन्य ग्लानिको नष्ट करनेमें इसके समान और कोई भी कर्म नहीं है। इससे चित्तकी एकाग्रता एवं अन्तर्मुखता इस प्रकार बढ़ती है कि यदि विधिपूर्वक और भावसे कुछ दिनोंतक लगातार सन्ध्या की जाय तो बहुत ही शीघ्र परमात्मामें स्थिति हो सकती है। हमलोगोंपर बहुत ही अनुग्रह करके शास्त्रकारोंने हमारे जीवनके साथ इसको जोड़ दिया है। यह विधि इतनी प्रचलित है कि इसका उल्लेख करना पिष्टपेषणमात्र है। इसके एक एक अङ्गका व्यष्टि और समष्टिके साथ क्या सम्बन्ध है, इसके अनुष्ठानसे उनपर क्या प्रभाव पड़ता है और यह किस प्रकार साधकको स्थूलराज्यसे भावराज्यमें और भावराज्यसे आत्मराज्यमें पहुँचाती है—इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिये कोई नवीन विचार नहीं करना पड़ता, युक्तियोंकी आवश्यकता नहीं होती, स्वयं अनुभूति ही सब शङ्काओंका समाधान कर देती है। सन्ध्यामें मुख्यतः दस क्रियाएँ हैं—आसनशुद्धि, मार्जन, आचमन, प्राणायाम, अघमर्षण, अर्घ्यदान, सूर्योपस्थान, न्यास, ध्यान और जप। यहाँ इनका बहुत ही संक्षेपमें वर्णन किया जाता है।

आसनशुद्धि—इस क्रियामें तीन बातोंका ध्यान रखना पड़ता है। एक तो वह स्थान स्वभावतः पवित्र होना चाहिये—नदीतट

हो जंगल हो, मन्दिर हो अथवा पूजा करनेका स्थान हो। दूसरे, जिस आसनपर बैठा जाय वह कुश, कम्बल अथवा अन्य किसी पवित्र वस्तुका बना हो। तीसरे बैठनेका ढंग शास्त्रीय हो अर्थात् सिद्धासन आदि आसनोंमें किसी आसनसे बैठा जाय। इन तीनों बातोंके विचारसे पवित्रता और एकाग्रताकी अभिवृद्धि होती है। उस समय जो मन्त्र पढ़ा जाता है, उसका अर्थ है कि 'हे माँ पृथिवी तुम्हें विष्णुने धारण कर रक्खा है और तुमने लोगोंको। माँ, तुम मुझे भी धारण करो और यह आसन पवित्र कर दो।' इस मन्त्रकी शक्ति और भावनासे साधकको बहुत ही बल मिलता है और वह अपने साध्यकी ओर अग्रसर होता है।

सन्ध्याकी क्रियामें कई बार मार्जन करना पड़ता है। इससे शरीरमें शीतलता आती है, जलकी अधिष्ठात्री देवता आलस्य आदि वृत्तियोंको नष्ट करके शुद्ध, शान्त, सात्त्विक भावोंकी धारा प्रवाहित करती हैं। मार्जनके बहुत से मन्त्र हैं, जिनमें कुछका अर्थ इस इस प्रकार है—'हे जलके अधिष्ठात्री देवताओ, तुम सम्पूर्ण जगत्के लिये सुखकर हो। मेरे हृदयमें परम सुखरूप परमात्माको प्रकट करो। ऐसी शक्ति दो कि मैं निरन्तर परमात्मामें ही स्थित रहूँ। तुम अपने माताके समान रसदानसे मुझे तृप्त और कृतकृत्य करो। मुझे परम रसके आस्वादनका अधिकारी बनाओ।' जलाधिष्ठात्री देवताके अनुग्रहसे शरीर, प्राण, इन्द्रिय और मन शान्त हो जाते हैं और साधक स्थिरभावसे भगवान्के निकट [illegible] होता है।

आचमनके मन्त्रोंमें ऐसी भावना है कि यह परमात्मासे उत्पन्न हुई है और इस सृष्टिमें ऐसी नहीं है, जो परमात्मासे शून्य हो। इसके साथ

गया है कि सूर्य, अग्नि आदि देवता पापासे मुझे बचावें और अबतक किये हुए पाप उनके अमृत-स्वरूपमें मैं हवन करता हूँ। इस प्रकारके आचमनसे कितनी शक्ति मिलती है साधनामें—यह कहनेकी बात नहीं, अनुभव करके देखने योग्य है।

प्राणायामकी महिमा सभी जानते हैं। शारीरिक स्वास्थ्यकी वृद्धि, पाप-वासनाओंकी निवृत्ति और चञ्चलताको दूर करनेके लिये वह अद्भुत उपाय है। जिसका प्राण वशमें है, उसका मन और वीर्य भी वशमें है। जिसका प्राणायाम समन्त्रक होनेके कारण और भी लाभप्रद है और इसमें जो ध्यान हैं, वे तो मानो सोनेमें सुगन्ध हैं।

अघमर्षण और भूतशुद्धि एक ही वस्तु हैं। सन्ध्यामें अघमर्षणकी क्रिया बहुत ही संक्षिप्त है, फिर भी वह लाभकी दृष्टिसे अत्यन्त उपयोगी है। उसका भाव समझ लेनेपर जान पड़ता है कि उसमें कितना महत्त्व है।

अर्घ्यदान और सूर्योपस्थान दोनों ही भगवान् सूर्यकी उपासना हैं। न्यासका एक स्वतन्त्र लेखमें अलग विचार किया गया है। संक्षिप्तरूपसे इतना समझ लेना चाहिये कि शरीरके प्रत्येक अङ्गमें जब मन्त्र और देवताओंका स्थापन हो जाता है तब सम्पूर्ण शरीर मन्त्रमय, देवमय हो जाता है। 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' के अनुसार वास्तवमें तभी देवपूजाका अधिकार प्राप्त होता है। ध्यान, मानस पूजा और जपके सम्बन्धमें आगे निवेदन करना है। सन्ध्याकी तैयारी है। ध्यानके पश्चात् केवल जप करना ही अवशिष्ट रह जाता है। जपकी महिमा अवर्णनीय है। जपोंमें भी गायत्री जपके विषयमें तो कहना ही क्या है।

यह तो वैदिक सन्ध्या हुई, एक तान्त्रिक सन्ध्या भी होती है। यह विधि कुछ अप्रसिद्ध होनेसे लिखी जाती है। शाक्त सन्ध्यामें आचमनके निम्न मन्त्र हैं—

'ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा।' 'ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा।' 'ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा।'

शैव आदिकोंकी सन्ध्यामें केवल आचमन ही होता है। इसके पश्चात् 'गङ्गे च यमुने' इत्यादि स्नानविधिमें लिखे हुए मन्त्रके द्वारा तीर्थोंका आवाहन करके अपने इष्ट-मन्त्रके कुशके द्वारा तीन बार पृथिवीपर जल छिड़के और सात बार अपने सिरपर। इष्ट-मन्त्रसे प्राणायाम और षडङ्गन्यास करके बायें हाथमें जल लेकर दाहिने हाथसे ढककर 'हं यं वं लं र' इनसे तीन बार अभिमन्त्रित करके इष्ट-मन्त्रका उच्चारण करते हुए गिरते हुए जलबिन्दुओंसे तत्त्वमुद्राके द्वारा सात बार अभ्युक्षण करके शेष जल दाहिने हाथमें ले ले। उसको तेजोरूप चिन्तन करके इडा नाडीसे खींचकर, देहके भीतर रहनेवाले पापको धोकर, उस जलको काले रंगका एवं पापरूप देखते हुए पिंगलासे बाहर निकालकर सामने कल्पित वज्रशिलाके ऊपर 'फट्' इस मन्त्रका उच्चारण करके पटक दे। इसके पश्चात् हाथ धोकर आचमन करके 'ह्रीं हं सः ॐ घृणिः सूर्य आदित्यः' इस मन्त्रसे सूर्यको अर्घ्य दे और 'ॐ सूर्यमण्डलस्थायै नित्यचैतन्योदितायै अमुकदेवतायै नमः' इस मन्त्रमें अमुकके स्थानपर अपने इष्टदेवताका नाम जोड़कर तीन बार जलाञ्जलि देनी चाहिये। यह क्रिया इष्टदेवताकी गायत्रीसे भी सम्पन्न होती है। इसके पश्चात् समयोचित ध्यान करना चाहिये। प्रातःकाल ब्राह्मीका, मध्याह्नमें वैष्णवीका और सायाह्नमें शाम्भवीका [illegible] तान्त्रिक सन्ध्यामें इष्टदेवकी गायत्रीका ही ज [illegible] पृथक्-पृथक् हैं। यहाँ कुछका उल्ले[illegible]

विष्णु-गायत्री

त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे कामदेवाय धीमहि तन्नो विष्णु. प्रचोदयात् ।

नारायण

नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णु प्रचोदयात् ।

नृसिंह

वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि तन्नो नरसिंह प्रचोदयात् ।

राम

दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो राम प्रचोदयात् ।

शिव

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्र॰ प्रचोदयात् ।

गणेश

तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ।

शक्ति

सर्वसम्मोहिन्यै विद्महे विश्वजनन्यै धीमहि तन्न शक्ति प्रचोदयात् ।

लक्ष्मी

महालक्ष्म्यै विद्महे महाश्रियै धीमहि तन्न श्री प्रचोदयात् ।

सरस्वती

वाग्देव्यै विद्महे कामराजाय धीमहि तन्न देवी प्रचोदयात् ।

गोपाल

कृष्णाय विद्महे दामोदराय धीमहि तन्नो विष्णु प्रचोदयात् ।

सूर्य

आदित्याय विद्महे मार्त्तण्डाय धीमहि तन्नो सूर्य प्रचोदयात् ।

—इत्यादि इष्टदेवताके अनुसार भिन्न-भिन्न गायत्री हैं। उनका १०८ अथवा कम-से-कम १० बार जप करना चाहिये। जपके समय सूर्यमण्डलमें अपने देवताका चिन्तन करना चाहिये। तदनन्तर संहारमुद्रासे देवताको अपने हृदयमें लाकर स्थापित करना चाहिये। स्नानविधिमें कहे हुए ढंगसे तर्पण भी कर देना चाहिये।

सन्ध्या और तर्पण आभ्यन्तर भी होते हैं। उनका भी यहीं उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। कुण्डलिनी शक्तिको जागरित करके उसे मूलाधारादि क्रमसे सहस्रारमें ले जाकर परम शिवके साथ एक कर देना ही सन्ध्या है। आभ्यन्तर तर्पण भी इसी प्रकारका होता है। मूलाधारसे उत्थित चन्द्र सूर्य अग्निस्वरूपिणी कुण्डलिनीको परमबिन्दुमें संलग्न करके उससे निकलते हुए अमृतके द्वारा ही देवताओंका तर्पण करना चाहिये। ऐसा भी कहा गया है कि ब्रह्मरन्ध्रके नीचे आज्ञाचक्रमें चन्द्रमण्डलमय पात्र है। उसको अमृतधारासे परिपूर्ण करके उसीके द्वारा इष्टदेवताका तर्पण करना चाहिये। तर्पणके अनुरूप ही ध्यानकी भी व्यवस्था है। कहा गया है कि किरणोंमें, चन्द्रमामें, सूर्यमें और अग्निमें जो ज्योति है उसको एकत्र करके केन्द्रित कर दे और फिर सबको महाशून्यमें विलीन करके पूर्णरूपसे स्थित हो जाय। यह निरालम्ब स्थिति ही योगियोंका ध्यान है। इसके पश्चात् पूजामण्डपमें प्रवेश करना चाहिये। पूजाकी सामग्री पूजाकी विधि आगेपर क्रमशः विचार किया जायगा। हिन्दू साधनाकी एक-एक क्रिया साक्षात् परमात्मासे ही सम्बन्ध रखती है और साधकको सर्वविध उन्नतिशील करनेमें समर्थ है। विचारशील पुरुषोंको चाहिये कि वे उनपर विचार करें और उनका अनुष्ठान करें। इस प्रकार अपनी प्राचीन शक्ति और शान्तिका संग्रह करके अभ्युदय और निःश्रेयसका लाभ करें।

मानसी सेवा

जीवका सुखसे सहज प्रेम होता है। सभी सुख चाहते हैं। परन्तु सुखका निवास या सुखका मूर्तिमान स्वरूप क्या है इस सम्बन्धमें लोगोंकी जानकारी उलटी है। ऐसी वस्तुओं या व्यक्तियोंमें लोग सुख मान बैठते हैं जिनमें सुख रूप होनेकी सम्भावना तो दूर, सुखकी छाया भी नहीं है। ऐसे पदार्थोंसे देर-सबेर दुःख ही मिलता है। किसी भी नाशवान् वस्तुमें नित्य सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इससे यह सिद्ध है कि हमारा इष्ट संसारकी कोई वस्तु नहीं है। हमारा इष्ट अविनाशी सुख है—ऐसा केवल ईश्वर है। वह कृष्णके रूपमें प्रकट है। हमारे जीवनका सर्वसुख, समाधि, ब्रह्म, प्यारा एकमात्र कृष्ण है। यह साँवरा सलोना मोर मुकुटवारा, पीताम्बरधारी, नन्दकिशोर ही हमारे प्राणोंका स्वामी हृदयेश्वर है—यह निश्चय हो जाने पर ही मानसी सेवा प्रारम्भ होती है।

१—शरीर, मन, स्थान और आसन पवित्र हो।

२—प्रतिदिन एक ही समय और आसन हो तो मन अच्छा लगता है।

३—संसारकी ओरसे निश्चिन्त होकर सर्वस्वके लिये भगवान्की सेवाका सङ्कल्प करना चाहिये।

४—आसन पर बैठ कर 'ॐ र' इस मन्त्रका जप करके चारों ओर जल छिड़कना और यह भाव करना कि मेरे चारों ओर

अग्निकी एक दीवार है और जब तक मैं इसके भीतर बैठकर भजन करता हूँ, कोई विघ्न नहीं आवेगा।

५—पहले यह भाव करना चाहिये कि मेरे सिरके सामने एक कमलपर मेरे इष्टदेव प्रकट हुए हैं और उनके चरणसे अमृतकी धारा बह-बहकर मेरे सिरपर गिरती है। उससे बाहर-भीतर सब शुद्ध हो रहा है। मेरा शरीर दिव्य होकर भगवान्‌की सेवाके योग्य हो रहा है।

६—शेषनागके सिर पर धरती है, गोदमें विष्णुभगवान् लेटे हैं, यदि शेषनाग हिलें तो धरती हिल जाय। इसीसे वे अचल, स्थिर रहते हैं। उनकी स्थिरताका ध्यान करनेसे अपना शरीर भी स्थिर हो जाता है।

७—भगवान्से प्रार्थना करना चाहिये—'हे प्रभो! सब वेद शास्त्र, पुराण, सन्त, सद्गुरु एव आप भी कहते हैं कि 'ईश्वर सबके हृदयमें रहता है।' तब आप मेरे हृदयमें भी अवश्य ही हैं। तब फिर आप दिखाई क्यों नहीं पड़ते? माना कि मेरा मन आपसे विमुख रहा है और संसारकी ओर भागता-दौड़ता रहा है। तथापि अब आपकी तथा सन्त-महात्माओंकी कृपासे यह समझ गया है कि संसारमें सुख नहीं है। शान्ति नहीं है। इसीसे सब ओरसे उदास तथा निराश होकर आपके चरणोंकी शरणमें आया है। आप इसे अपनाइये पाहिमाम्! पाहिमाम्!

८—आपके दर्शनके लिये मेरा मन मचल रहा है। आँखें तरस रही हैं। प्राण व्याकुल हो रहे हैं। ये कान आपकी मीठी-मीठी बातें सुनना चाहते हैं। ये मेरे दोनों हाथ आपके चरण युगल पकड़कर हृदयमें लगानेके लिये उतावले हो रहे हैं। हे नाथ!

हे स्वामी! प्राणेश्वर! अब अधिक न तरसाइये! कृपा कीजिये! कृपा कीजिये!! शीघ्र ही प्रकट होकर दर्शन दीजिये।

६—हे हृदयेश्वर! हे जीवन-सर्वस्व! मैं सब प्रकारसे अयोग्य हूँ, तथापि आप तो परम दयालु हैं। आपसे मुझ पर दया किये बिना रहा ही नहीं जायगा। आप मेरे हृदयकी एक-एक बात—मेरी नस-नस जानते हैं। मेरा मन आपके दर्शनका प्यासा है-आपके लिये तड़फड़ा रहा है। आप कहाँ छिपे हैं? आप क्या मुझे अपराधी जानकर रूठ गये हैं? प्रभु, प्रभु! यदि आप मेरे अपराधोंकी ओर देखेंगे तो कोटि कल्पमें भी मेरा निस्तार नहीं होगा। इसलिये हे करुणाके सागर, अपनी अकारण करुणाका एक कण—केवल एक फुहिया मेरे ऊपर डाल दीजिये। मैं आपके चरणकमलोंपर अपना सिर रख दूँ और आप मेरे सिरपर अपने कोमल करकमल रख दीजिये। जब मैं भरे हृदय और गीली आँखोंसे आपकी ओर देखूँ, तब आप मन्द-मन्द मुसकादें, और मधुर-मधुर स्वरसे अमृत बरसाते हुए कह दें कि 'तुम मेरे हो-हमारा तुम्हारा सम्बन्ध अखण्ड है-अटूट है।' बस, मुझे और कुछ नहीं चाहिये।

१०—अहो! यह वृन्दावन है, कालिन्दीका कूल है, हरी वृक्षावली है, खिली लताएँ हैं। ललित लता निकुञ्ज है। परन्तु प्राणप्यारे, आपके बिना यह सूना-सूना लगता है। क्षण-क्षण युगके समान बीत रहे हैं। हृदय व्याकुल हो रहा है। आँसू रुकते नहीं हैं। यह फूलोंकी सेज आपके लिये बिछायी है। सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंकी माला आपके लिये गूँथी है। मेरे हृदयकी झारी भावके जलसे भरी आपके पाँव पखारनेके लिये है। कितने उत्साह, कितने उल्लाससे भरकर रखी थी; परन्तु हाय, हाय! आप अबतक न आये! हृदय

फट रहा है, प्राण सूख रहे हैं। अब एक क्षण भी नहीं रहा जाता। मेरी चेतना नष्ट हो रही है, बेहोशी आ रही है। प्रभो आइये, आइये! मेरे पास आ जाइये! मेरे सामने प्रकट हो जाइये! मेरी ओर देखिये। मेरी सेवा स्वीकार कीजिये! मुझे अपना लीजिये, आप मेरे बन जाइये।

११ यह स्थान तो दिव्य गन्धसे भर रहा है। यह मधुर-मधुर स्वर-लहरी कहाँसे आ रही है, यह शीतल-शीतल दिव्य प्रकाश छा रहा है। यह नूपुरकी रुनझुन सुनाई पड़ रही है। तब क्या आगये? मेरी जन्म-जन्मकी प्यास बुझानेका अवसर आ गया! धन्य है, धन्य है, वही हैं। वही हैं वही। अहा! कैसी मस्तानी चालसे आ रहे हैं। बाँकी चितवनसे देख रहे हैं। मेरी ओर देख-देखकर मन्द-मन्द मुस्करा रहे हैं। आओ! प्रभो आओ! मेरी युग-युगकी साध पूरी करो।

१२—वैसे तो ईश्वर हृदयमें ही रहता है। कहीं जाता नहीं है। और कहीं से आता भी नहीं है। मन जब उसके सम्मुख होता है, तभी वह आ जाता है। और जब विमुख होता है तब चला जाता है इसलिये हर समय मन ईश्वरके सम्मुख रखना चाहिये। विशेष करके भगवान्के मुखकमलपर मुसकान और चितवनका ध्यान करना चाहिये। भगवान्के मनमें बहुत भारी खुशी है और वह मुखारविन्दपर साफ साफ झलक रही है। आँखसे आँख मिलती है और देखनेवाला भी खुशीसे भर जाता है। यह दोनों ओरसे आनन्दकी लहर उठना ही भगवान्का स्वागत है। जहाँ यह आनन्दका स्वागत होता है वहीं भगवान् आते हैं, और ठहरते हैं।

१३—मन ईश्वरके सम्मुख तो हो परन्तु टिके नहीं, तब, ईश्वर बैठे कहाँ? शीतल स्थानमें कोमल कमलपर स्थिरताका आसन देना चाहिये।

शीतलताका अर्थ है कि मनमें जलन न हो किसी प्रकारकी।

कोमलताका अर्थ है, स्नेहसे तर नरम होना। स्थिरता माने मनका चञ्चल न होना। आसनका हिलना अच्छा नहीं है।

१४—स्नेहका जल, श्रद्धाके फूल, भावके अक्षत सद्गुणोंकी सुगन्ध, सम्बन्धकी मधु लेकर पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क आदि क्रिया करनी चाहिये।

पाद्य—भगवान्के पॉव प्रेमसे पखारना।

अर्घ्य—भगवान्के करकमलोंपर जल, फूल, दूर्वा, आदिका अर्पण, हाथ धुलाना।

आचमनीय—मुँह धुलाना।

मधुपर्क—सत्कारकी एक रीति। यह आदरणीय पुरुषोंको मधु चखाकर की जाती है। भगवान्की पूजामें उनके साथ जो अपना सम्बन्ध है—माँ, बाप, स्वामी, पति, पुत्र, गुरु आदि यही मधुके समान मीठा है।

१५—भगवान् नित्य शुद्ध हैं। उन्हें स्नानकी आवश्यकता नहीं है। मायाकी मैल उनका स्पर्श नहीं कर सकती फिर भी भक्तोंकी सेवा स्वीकार करके उन्हें सुखी करनेके लिये, उनके हाथसे स्नान भी करते हैं। दूध, दही, घी, मधु और शुद्ध जलसे स्नानमण्डपमें रत्न सिंहासनपर बैठकर स्नान करना चाहिये। भगवान्के लिये नये-नये स्नानमण्डप शृङ्गारमण्डप, भोजनमण्डप, शयनमण्डप, विहारमण्डप, सभामण्डप आदि, जहाँ भगवान् रहते हैं वहीं अपने आप चिन्मय होनेके कारण समय समयपर स्वयं प्रकट होते रहते हैं। भगवान्को कभी कभी ठंड और गरमी भी मालूम

लगती है। भगवान्‌का भाव उनकी आँख और चेष्टासे जानकर अथवा उनकी आज्ञाके अनुसार ठण्डे और गरम जलसे स्नान कराना चाहिये। मानस पूजामें स्नान न करावें तब भी कोई हानि नहीं है।

१६—भगवान्‌के वस्त्र भी पँचरंग होने चाहिये। पृथ्वीका पीला, जलका श्वेत, अग्निका लाल, वायुका बैंगनी और आकाशका नीला। सभी तत्त्वोंमें जो श्रेष्ठ और सार-सार अंश है, उन्हें निकालकर तब रंग बनता है, आत्मा (अहंकार) रुई, बुद्धिसूत, मनकी चिकनाई, पाँचों तत्त्वोंके रंग—इन्हींसे वस्त्र बनाकर भावसे धारण कराया जाता है। सम्बन्धका यज्ञोपवीत, अनुरागका अङ्गराग, शीतलताका चन्दन और चेतनताका आभूषण तथा भावके पँचरंग पुष्पोंकी माला पहनाकर भगवान्‌को अपने हृदयका दर्पण दिखाना चाहिये।

१७—तीनों गुणोंकी धूप जलाकर उसमें जो व्यापक ब्रह्मकी सत्ता है उसकी फैली हुई सुगन्धका अनुभव कराना चाहिये। और ज्ञानका दीप सँजोकर उसीके प्रकाशमें भगवान्‌के चम-चम चमकते आभूषण और छवि छलकते अङ्गकी झिलमिल जगमगाहटका दर्शन करके आनन्दित होना चाहिये।

१८—पृथ्वीकी सुगन्ध, जलकी मधुरता, अग्निकी सुन्दरता, वायुका कोमल स्पर्श—सब-का-सब समेटकर हृदयके आकाशमें—भावसे पके प्रेमका नैवेद्य भगवान्‌को लगाना चाहिये। भगवान् देखकर-आरोगकर प्रसन्न होते हैं। कोई-कोई पदार्थ पसन्द आता है तो और माँगते हैं। कभी आँख मिल जानेसे उनकी प्रसन्नता देखकर अपना हृदय आनन्दसे भर जाता है। उनके सुखमें ही अपना सुख है। मुखवास आदि भी अर्पण करना चाहिये।

१६—संसारकी सारी बाहरी सम्पत्ति, शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन, मनमें रहनेवाले संकल्प अहंकार, ममता, सम्बन्ध आदि सब कुछ, बुद्धि, उसमें रहनेवाले विचार, निश्चय आदि—जीव जैसा पहले था, अब है और आगे होगा—सब भगवान्का ही है। यह सत्य सिद्धान्त समझना मानना और याद रखना, बादमें कभी न भूलना—निरन्तर अनुभव होना, यही भगवान्को आत्मसमर्पण है।

२०—आरतीमें पाँच वस्तुएँ रहती हैं। पृथ्वीकी गन्ध, जलकी स्नेह धारा—घी, अग्निकी लौ, वायुका हिलना, आकाशकी ध्वनि। सम्पूर्ण संसारसे ही भगवानकी आरती होती है। वैसे अपने देहका दीपक, जीवनका घी, प्राणकी बाती और आत्माकी लौ सँजोकर भगवान्के इशारे पर नाचना— यही आरती है। इस सच्ची आरतीके करनेपर संसारका बन्धन छूट जाता है और जीवको भगवान्के दर्शन होने लगते हैं।

२१—ईश्वरके लिये हमारे मनमें जो उत्तम-उत्तम भाव उठने लगते हैं वही पुष्प हैं। कभी उनका अनुभव करके शान्त हो जाना, कभी उनकी सेवा करना, कभी उनसे हँसना खेलना, बात करना—मानों मित्र हों, कभी वात्सल्यसे खिलाना, पिलाना, दुलारना—मानो वे कोई अल्हड़ शिशु हों, कभी पत्नीके समान प्रेम करना—यही सब भाव हैं। इन्हीं सब भावोंको बारम्बार भगवान्के साथ जोड़ना इसीको पुष्पाञ्जलि कहते हैं। यही सब करते-करते भगवान्में समा जाना—मानो आनन्दके समुद्रमें डूब रहे हों। यही डूबना उतराना भगवान्की मानसी सेवा पूजा है।

राजा शङ्खकी साधना और भगवत्प्राप्ति

हैहय वशमें श्रुत नामके राजा बड़े ही धर्मात्मा हो गये हैं। उनके सम्बन्धमें यह प्रसिद्ध है कि वे अपनी प्रजाको पुत्रसे भी बढ़कर प्रिय मानते थे। उनकी न्यायप्रियता, धर्मपरायणता और दयाशीलताने समस्त प्रजाके हृदयमें घर कर लिया था। यही कारण है कि चिरकालतक वे निर्विघ्न राज्य करते रहे। विद्रोह अथवा विप्लव किसे कहते हैं, यह लोगोंको मालूम तक नहीं था। उनके एकमात्र पुत्र थे शङ्ख। पिताकी धार्मिकताकी छाप पुत्रपर बचपनमें ही पड़ गयी थी। वे संस्कारसम्पन्न होकर गुरुकुलमें गये, वहाँ गुरुजनोंकी सेवा करते हुए, सहपाठियोंसे प्रेमका बर्ताव करते हुए, वेद-वेदाङ्गोंका अध्ययन किया और अपनी विद्यासे गुरुदेवको सन्तुष्ट करके, उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा देकर अपने पिताके पास लौट आये। पिताने बड़े हर्षके साथ उनका अभिनन्दन किया और सब प्रकारसे योग्य देखकर राज्यका सम्पूर्ण भार उन्हें सौंप दिया। राज-काजकी चिन्तासे मुक्त होकर महाराज श्रुत भगवान्‌के चिन्तन-स्मरणमें अपना समय बिताने लगे। विद्वान्, सदाचारी एवं युवक शङ्खको स्वामीके रूपमें पाकर प्रजाको पुराने राजाके अलग होनेका कष्ट नहीं हुआ, बल्कि पुराने राजाको ही नये रूपमें पाकर उसके आनन्दमें और वृद्धि हुई।

शङ्खकी योग्यता असाधारण थी। उनमें इतना नीति नैपुण्य था कि कोई भी समस्या उलझनेके पहले ही वे सुलझा लेते थे। उनके हृदयकी आँखें खुली हुई थीं। कोई बात उनकी बुद्धिके बाहर नहीं थी। इसलिये उनका राज्य निष्कण्टक था। उनकी

सचाई, ईमानदारी और प्रेमपूर्ण बनाव देखकर लोग मुग्ध हो जाते। उनकी बुद्धि तीक्ष्ण थी और हृदय पवित्र। निष्काम भावसे शास्त्रोंका अध्ययन करनेके कारण भगवान्के दिव्य स्वरूप और महान् गुणोंको वे कुछ-कुछ समझ सके थे। यही कारण है कि भगवान्पर उनका पूर्ण विश्वास था। भगवान् ही एकमात्र जगत्के स्वामी हैं वे ही सबसे श्रेष्ठ, सबसे सुन्दर और सबसे मधुर हैं। उनके अतिरिक्त और किसी भी व्यक्ति अथवा वस्तुका विश्वास करना अपनेको धोखा देना है, यही उनका निश्चय था और वे वास्तवमें भगवान्पर निर्भर थे। वे जो कुछ भी काम करते, भगवान्का ध्यान करते हुए ही करते। उनके चित्तमें इस प्रकारके भाव उठा करते कि एकमात्र भगवान् ही समस्त देवताओं और दिव्यताओंके मूल हैं, उनका स्वरूप उनकी महिमा अनन्त है, वे जगत्के स्वामी हैं, जीवके स्वामी हैं, जो कुछ यह जगत् या जीव हैं, सब उनकी शक्तिके नन्हे-से चमत्कार हैं। इस प्रकार उनका चित्त निरन्तर भगवन्मय रहता, उनका अन्तःस्थल प्रभु-स्मरणके सौरभसे सतत सुवासित रहता। वे एकादशी पूर्णिमा आदि व्रत करते, प्रतिदिन ब्राह्मणों और दीन दुःखियोंको उत्तम-उत्तम वस्तुओंका दान करते और इसके फलस्वरूप त्रिलोकीकी कोई भी वस्तु न चाहकर केवल भगवान्की प्रसन्नता, उनकी प्रीतिकी ही अभिलाषा करते। बड़े-बड़े यज्ञ किये, बड़े-बड़े दान दिये, राज्यके समस्त ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे देकर सन्तुष्ट किया, राज्यभरमें बहुत से कुण्ड बनवाये, बावलियाँ खुदवाया, प्याऊ लगवायी, सब लोगोंके लिये बहुत से बाग-बगीचोंका निर्माण करवाया। बड़ी सावधानीके साथ निरन्तर भगवान्को याद रखते हुए, भगवान्के लिये, उनकी प्रसन्नताके लिये ही वे सम्पूर्ण कर्म करते थे। उन्होंने अपने हृदयको, जीवनको सर्वस्वको और अपने आपको भगवान्के चरणोंमें समर्पित कर दिया था, निछावर कर दिया था। वे निरन्तर

भगवान्का स्मरण करते, उनके नामोंकी माला फेरते, उनकी मूर्तिकी पूजा करते और सकोच छोड़कर प्रेम विह्वल होकर, भगवान्की लीला, गुण और नामोंका सङ्कीर्तन करते। पुराणोंके रहस्य जाननेवाले ब्राह्मण, उन्हें भगवान्की परम पावन कथाएँ सुनाते, जिनके श्रवणमात्रसे इस ससारसे प्राणियोंका निस्तार हो जाता है। इस प्रकार बड़ी सावधानीसे बिना थके जागरणसे लेकर शयनपर्यन्त वे भगवान्की प्रसन्नताके लिये प्रयत्न किया करते और अपनी ओरसे कोई त्रुटि नहीं होने देते थे।

यह सब होनेपर भी उनके हृदयमें एक ज्वाला निरन्तर जलती रहती थी। यह थी अपने प्रियतम प्रभुके दर्शनकी तीव्रतम अभिलाषाकी अन्तर्ज्वाला। भगवत्प्राप्तिके लिये जो कुछ वे कर्म उपासना, साधन भजन स्मरण चिन्तन करते थे, उसीका यह फल था कि शङ्खके चित्तमें भगवान्के दर्शनकी सच्ची अभिलाषा, उत्कट उत्कण्ठा जागरित हुई। यह लालसा प्रत्येक जीवके अन्तर्देशमें प्रसुप्त रहती है। इसका जागरण तब होता है जब सत्कर्म, सत्सङ्ग और सत्सङ्कल्पोंके अखण्ड प्रवाहसे हृदय धुल जाता है और भीतरकी यह अमोल्क निधि निरावरण होकर बाहर आ जाती है। शङ्खने देखा—अभीतक मेरे सामने ससार ही ससार है। मेरी दृष्टि बाहर जब जाती है-ससार ही दीखता है। यह दु खागार ससार कबतक मेरे सामने रहेगा? यह क्षणभगुर वस्तु मेरी आँखोंके सामनेसे सदाके लिये हट न जायगी? क्या मैं सम्पूर्ण सौंदर्य और माधुर्यके परम आश्रय, मुनियोंके मनको चुरानेवाले करुणावरुणालय भगवान्को अपनी इन्हीं आँखोंसे नहीं देख पाऊँगा? यही सोचते सोचते शङ्खका हृदय भर आया, वे शोकाकुल हो गये।

राजा शङ्खके पास सासारिक दृष्टिसे किसी वस्तुकी कमी नहीं थी। उन्हें विषयभोगकी सामग्री, सुविधा प्राप्त थी, परन्तु वे उसीम

भूल जानेवाले नहीं थे । वे तो उस शाश्वत सुखको प्राप्त करना चाहते थे जिससे बढ़कर और कुछ है ही नहीं । उस सुखके लिये, भगवान्के लिये, उनकी आतुरता इतनी बढ़ गयी कि एक क्षणका भी विलम्ब भी उनको असह्य हो गया । वे मन ही मन कहने लगे, इस संसारके चक्करमें मैं अनादि कालसे भटक रहा हूँ । न जाने किस-किस योनिमें जन्म लेना पड़ा । कभी स्वर्गमें गया तो कभी नरकमें । कभी मनुष्य हुआ तो कभी पशु-पक्षी । न जाने कितने प्रकारके सुख-दुख भोग, भोगने पड़े । परंतु अबतक भगवान्के, अपने प्रभुके दर्शन नहीं मिले । अवश्य ही मैं महान् पापी हूँ, मेरी आँखोंपर अभी इतना मोटा पर्दा है कि मैं भगवान्को देख नहीं सकता । मेरे इस दुर्भाग्यकी कोई अवधि भी है या नहीं, क्या पता ! अनेक जन्मोंतक घोर तपस्या की जाय और यदि उन सबका एक ही अखण्ड फल प्राप्त हो तब भी तपस्याओंके फलस्वरूप भगवान्के दर्शन हो सकेंगे इसमें सन्देह ही है । उनके दर्शन तो उनकी कृपासे ही हो सकते हैं । कब होगी उनकी कृपा, कब वे मेरी आँखोंके सामने अपनी रूप-माधुरीकी धारा प्रवाहित कर देंगे, कब मेरे हृदयकी प्यास बुझावेंगे ? मेरे कान कब उनके सुधा-वचनोंको सुनकर भाग्यवान् होंगे ? मैं तो अभागा हूँ, यदि मैं भगवान्के दर्शनका अधिकारी होता तो क्या अबतक उससे वञ्चित रहता ? मुझे धिक्कार है मेरा जीवन व्यर्थ है, मैं अपराधी हूँ । मेरे जीवनका जो एकमात्र उद्देश्य है, जिसके लिये मेरे जीवनकी समस्त चेष्टाएँ हैं, उसीसे शून्य रहकर भगवान्की कृपासे दूर रहकर, संसारकी उलझनोंमें पचते रहना भला यह भी कोई जीवन है ? ऐसे जीवनको रखकर क्या करना है ? यही सोचते-सोचते शङ्ख इतने आतुर हो गये कि उनका दम घुटने लगा ।

भगवान्‌की दृष्टि सब ओर रहती है, एक-एक अणुके अन्तरालमें कोटि कोटि ब्रह्माण्ड प्रतिक्षण बनते बिगड़ते रहते हैं; परंतु उनका एक भी अंश भगवान्‌की दृष्टिसे ओझल नहीं रहता। जो कुछ होता है, समयसे और ठीक उनके इङ्गितके अनुसार। विश्वके हास और रोदन उनकी रङ्गशालाके अद्भुत और करुण अभिनय मात्र हैं। नटवरकी लीला सूत्रधारकी इच्छा, कठपुतली कैसे समझे? एक बार नाम लेनेसे रीझ जानेवाले भगवान् राजा शङ्खके सम्मुख इतनी तपस्या, साधना और व्याकुलताके बाद भी प्रकट नहीं हुए। अवश्य ही इसमें कुछ-न-कुछ रहस्य होगा। यही मान लें कि अभी राजा शङ्खके प्रेमको, उनकी अनासक्ति और त्यागको और भी उत्कृष्ट रूपमें जगत्‌के सामने प्रकट करना था। लोग कहते हैं कि हम अपनी अमुक वस्तुको छोड़ क्यों? उनमें अनासक्त रहेंगे, बस। पर यह भ्रम है। 'छोड़ क्यों'—यही तो आसक्तिका स्वरूप है। इसलिये साधनामें साधकके जीवनमें त्यागकी भी आवश्यकता हुआ करती है। राजा शङ्खकी व्याकुलता पूर्ण थी, परंतु उनका वैराग्य अभी पूर्णतया व्यक्त नहीं हुआ था। उनकी व्याकुलताकी दृष्टिसे भगवान्‌को दर्शन देना चाहिये था और वैराग्यको पूर्ण करनेके लिये थोड़े विलम्बकी भी अपेक्षा थी। भगवान्‌ने मध्यम मार्गसे काम लिया, वे राजा शङ्खके सामने प्रकट नहीं हुए, अदृश्य रूपसे ही बोले—'राजन्, तुम मेरे प्रिय भक्त हो, तुम्हें इस प्रकार शोकाकुल न होना चाहिये। तुम मेरी शरणमें हो, मेरे प्रेमी हो, भला मैं तुम्हें कैसे त्याग सकता हूँ? मैं तुम्हारे हितकी बात कहता हूँ। घबराना नहीं, अभी तुम्हें दर्शन होनेमें थोड़ा विलम्ब है, परंतु दर्शन होंगे अवश्य, इसमें सन्देह नहीं है। महर्षि अगस्त्य भी तुम्हारी भाँति मेरे दर्शन होनेके लिये अत्यन्त लालायित हैं, तुम चलो वेङ्कटाचलपर, जब वे वहाँ आवेंगे, तब तुम दोनोंको एक साथ ही दर्शन होंगे। तबतक मेरा स्मरण-चिन्तन करते हुए अपना समय व्यतीत करो।'

शङ्खने अविलम्ब आज्ञाका पालन किया । जो भगवानके प्रेमी हैं, जिनका हृदय सचमुच भगवान्‌का रूप रस पान करनेके लिये उत्सुक है, उनके लिये तीनों लोककी सम्पत्तिका कोई मूल्य नहीं है । इन तुच्छ वस्तुओंके त्यागमें उन्हें किसी प्रकारका विचार नहीं करना पड़ता, यह तो प्रेमियोंकी मनचाही बात है । अवसर पाते ही वे भाग निकलते हैं । यदि भगवान्‌की प्रेरणा प्राप्त हो जाय तो कहना ही क्या है ? शङ्खने पुत्र वज्रको राजसिंहासनपर बैठाया और इस महान् कार्यके लिये वे भूतलके वैकुण्ठ वेङ्कटाचलपर पहुँच गये । वहाँ जाकर उन्होंने स्वामिपुष्करिणीमें स्नान और अमृतोपम दिव्य जलका पान किया । उस पवित्र भूमिमें शङ्खका मन रम गया, वहीं एक छोटी सी कुटियामें रहकर वे उस समयकी प्रतीक्षा करने लगे । अब कर्मोंका सम्पर्क बहुत कम हो गया था । इसलिये निरन्तर भगवन्नामका जप एवं उनकी लीला और स्वरूपका चिन्तन, यही उनका काम रहा । योग क्षेमका निर्वाह तो भगवान करते ही थे ।

उन्हीं दिनों महर्षि अगस्त्य वेङ्कटाचलकी परिक्रमा करते हुए, भगवान्‌के दर्शनकी अभिलाषासे अनेक स्थानोंमें विचरण कर रहे थे । ब्रह्माने उनसे कहा था, तुम्हें वहीं भगवान्‌के दर्शन होंगे । उनके हृदयकी भी वही दशा थी, जो राजाके हृदयकी । कुमारधारा आदि तीर्थोंमें स्नान करके वे भगवान्‌की पूजा करते, नाम जप करते और बड़ी उत्सुकताके साथ प्रतीक्षा करते कि अब भगवान् आते ही होंगे । बहुत दिन बीत गये, पर भगवान् नहीं आये । किसी पेड़का पत्ता खड़कता, तो वे ससम्भ्रम उठकर खड़े हो जाते, कहीं भगवान् न आ रहे हों । किसी पक्षीके उड़नेकी आहट मिलती तो आकाशकी ओर देखने लगते, शायद गरुड़पर चढ़कर भगवान् ही आ रहे हों । परन्तु उनकी यह आशा सौ-सौ बार निराशाके रूपमें

परिणत हो गयी । उनके हृदयमें ऐसी हूक उठती, इतनी व्यथा होती कि वे पागल से हो जाते । उनकी अन्तःपीड़ाको जानकर भगवान्ने ब्रह्माके हृदयमें प्रेरणा की । उन्होंने बृहस्पति, उपरिचर वसु आदिको सन्देश देकर अगस्त्यके पास भेजा । इन लोगोंने आकर अगस्त्य ऋषिसे कहा कि आपको राजा शङ्करके साथ ही भगवान्के दर्शन होंगे, इसलिये आप स्वामिपुष्करिणीके तटपर चलिये । हम लोग भी आपके साथ भगवान्के दर्शन करके कृतार्थ होंगे । भगवान्के दर्शन होंगे यह सुनते ही महर्षि अगस्त्यका चित्त अदम्य उत्साह स्फूर्ति और आनन्दसे भर गया । सम्पूर्ण निराशा और उद्वेग नष्ट हो गये । वे बिना एक क्षणका भी विलम्ब किये सब के-सब स्वामिपुष्करिणीके तटपर स्थित राजा शङ्करके पास जानेके लिये चल पड़े, रास्तेके वृक्ष-लताएँ, नदी नद, पशु पक्षी—सब के सब आज उन लोगोंको शान्ति, प्रेम और आनन्दका सन्देश दे रहे थे ।

शङ्करने बड़े प्रेमसे सबका स्वागत किया । जब सुस्थिर हुए, तब कीर्तन प्रारम्भ हुआ । एक उद्देश्य, एक अभिलाषा, एक साधनाके इतने मत्त इकट्ठे हो गये और प्रेममग्न होकर ऊँचे स्वरसे नारायण नामकी ध्वनि करने लगे । समस्त पर्वतमालाएँ सम्पूर्ण वनस्थली और अनन्ताकाश उस दिव्य ध्वनिसे मुखरित हो गया, दिशा विदिशाएँ गूँज उठीं । मानो आनन्दके अनन्त समुद्रमें बाढ़ आ गयी हो और सारा जगत् उसीमें डूब-उतरा रहा हो । सबका चित्त तल्लीन हो गया । एक दिन, दो दिन, तीन दिन बीत गये, रातके चौथे पहरमें सबको नींद आ गयी । नींद क्या थी, भगवान्की एक लीला थी । सबने एक साथ ही स्वप्न देखा—पुरुषोत्तम भगवान् सबके सामने प्रकट हुए, श्याम वर्ण, पीत वस्त्र, चार कर-कमलोंमें चार आयुध—शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म । प्रसन्नमुख, होठोंमें मन्द मन्द मुसकान, प्रेमभरी चितवन, भौंहोंसे

मानो अनुग्रहकी वर्षा हो रही है। बड़े प्रेमसे बोल रहे हैं—तुम्हें क्या चाहिये? मैं तुम्हारा भाव-भक्तिसे प्रसन्न हूँ, चाहे जो माँग लो, सब कुछ दे सकता हूँ।

नींद टूटी। सबको एक ही स्वप्न। बड़े आश्चर्यकी बात है। सबके हृदयसे आनन्दकी धारा छलक रही थी। आँखें प्रेमके आँसुओंसे भर रही थीं। महान् कृपा, महान् अनुग्रह। स्वप्नका ही स्मरण करते हुए लोगोंने स्वामिपुष्करिणीमें स्नान किया। आवश्यक कृत्य करके फिर सब के सब भगवान्की सेवा पूजामें लग गये। सबके चित्तमें उल्लास था, सबके एक-एक अङ्ग फड़क-फड़ककर कह रहे थे—भगवान् आनेवाले हैं। स्तुति प्रार्थनाके अनन्तर शङ्ख और अगस्त्य दोनों ही मन्त्र जप करने लगे। वे 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षरमन्त्रका जप करते थे। उसी समय उनके सामने एक अत्यन्त अद्भुत तेज प्रकट हुआ। वह तेज कोटि कोटि सूर्य, चन्द्रमा और अग्निका एक पुञ्ज था। उस ज्योतिसे सम्पूर्ण गगनमण्डल भर गया। उस दिव्य ज्योतिर्मय चैतन्यको देखकर सब के सब आश्चर्य चकित हो गये। वे सम्पूर्ण हृदयसे भगवान्का चिन्तन करने लगे। भगवान् उनके सामने प्रकट हुए बड़े भयङ्कर रूपमें, विराट्रूपमें—मन जिसका चिन्तन नहीं कर सकता, वाणी जिसका वर्णन नहीं कर सकती, ऐसे रूपमें, हजारों नेत्र, हजारों हाथ, हजारों पैर चमकते हुए सोनेकी तरह कान्ति, बड़े विकराल दाँत मुखसे आगकी बड़ी-बड़ी लपटें उगलते हुए। सारा संसार भयग्रस्त। अगस्त्य, शङ्ख, बृहस्पति आदि बार-बार वन्दना करने लगे।

भगवान्के जो आयुध संसारकी रक्षाके लिये सर्वत्र विचरण किया करते हैं, वे सब उनकी सेवाके लिये आ गये। चक्र, गदा, खड्ग, पुण्डरीक, पाञ्चजन्य सब के-सब मूर्तिमान् होकर सेवा करने लगे। पाञ्चजन्यकी ध्वनिसे जिसे सुनकर दैत्य भयभीत हो जाते हैं, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मण्डल परिपूर्ण हो गया और उसके द्वारा सूचना

पाकर ब्रह्मा आदि देवतागण अपने अपने वाहनोंपर सवार होकर वहाँ आ गये। सनकादि योगीश्वर, वसिष्ठ आदि मुनीश्वर भगवान् की स्तुति करते हुए वहाँ उपस्थित हुए। साररूप मुक्तिप्राप्त श्वेतद्वीपवासी जय विजय आदि पार्षद वहाँ आ गये। कल्पवृक्षसे सबके मानसको आमोदित करनेवाली पुष्पवर्षा होने लगी गन्धर्व गान करने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं। ब्रह्मा आदि देवताओंने एक स्वरसे स्तुति की-'प्रभो! तुम्हारी जय हो! कृपासिन्धो! तुम्हारी जय हो! श्यामसुन्दर! तुम्हारी जय हो? तुम्हीं संसारके जीवनदाता हो, तुम्हीं भक्तोंके भयभञ्जन हो। स्वामिन्! तुम्हारी जय हो, जय हो, जय हो! तुम अनन्त हो, शान्त हो, वाणी और मनके अगोचर हो। तुम्हारे चिदानन्दस्वरूपको भला कौन जान सकता है? तुम अणुसे भी अणु, स्थूलसे भी स्थूल सर्वान्तर्यामी हो। तुम्हीं जीव और प्रकृतिस परे पुरुषोत्तम हो! तुम्हारे निर्विशेष ब्रह्मस्वरूपको मायाधीन प्राणी नहीं जान सकता। तुम्हारे भीषण रूपको देखकर हम सब भयभीत हो गये हैं। अब कृपा करके सौम्य, शान्तरूपसे दर्शन दो।' भगवान्ने ब्रह्माकी प्रार्थना स्वीकार की। सबके देखते ही देखते भगवान्ने अपना भयङ्कर रूप अन्तर्हित करके बड़ा ही मधुर मनोहर स्वरूप प्रकट कर दिया। रत्नजटित विमानपर श्यामसुन्दर पीताम्बरधारी चतुर्भुज मूर्ति, कर-कमलोंमें चारों आयुध, चन्द्रमाके समान शान्त शीतल मुख, प्रेमभरी चितवन, मन्द मन्द मुसकान देखकर सभी मुग्ध हो गये। जब सबने प्रणाम स्तुति कर ली, तब भगवान्ने विनयावनत अगस्त्यसे कहा—'मुनीश्वर! तुमने मेरे लिये घोर तपस्या की है, तुम्हारा भाव भक्तिसे मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो माँगो, मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूँगा।' अगस्त्य बार बार भगवान्को प्रणाम कर रहे थे, इनका शरीर पुलकायमान था और वाणी गद्गद। उन्होंने रुँधे कण्ठसे कहा—'प्रभो! तुम्हारे दर्शनसे मेरी तपस्या, स्वाध्याय,

चिन्तन सब सफल हो गये। तुम मेरी आँखोंके सामने प्रकट हुए, तुमने मेरा आदर किया, इससे बढ़कर मुझे और क्या चाहिये? तुम्हारी कृपासे मेरी सब इच्छाएँ पूर्ण हैं। सोचनेपर भी नहीं मालूम पड़ता कि मैं तुमसे क्या माँगूं, फिर भी मेरा बालचापल्य यह कहनेके लिये विवश कर रहा है कि तुम मुझे अपने चरणोंकी अहैतुकी भक्ति प्रदान करो। प्रभो! एक प्रार्थना है, देवताओंकी प्रार्थनासे संसारके कल्याणार्थ सुवर्णमुखरी नदी आ रही थी, वह पर्वतोंमें फँस गयी है, तुम कृपा करके इसका उद्धार कर दो और इसी पर्वतपर तुम निवास करो जिससे लोग तुम्हारा सेवाका अवसर प्राप्त कर सकें।' भगवान्‌ने कहा—'मुनीश्वर, मेरी भक्ति तो तुम्हारे हृदयमें पहलेसे ही निवास करती है, आगे भी रहेगी। सुवर्णमुखरी नदी भी मुक्त हो जायगी और दूसरी गङ्गाके समान जगत्‌का कल्याण करती रहेगी। तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण हो। मैं तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करके यहाँ निवास करूँगा, जो मेरा दर्शन करेंगे, उनका कल्याण होगा।'

भगवान्‌ने राजा शङ्खको सम्बोधन करके कहा—'तुम्हारा प्रेम भक्तिसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम्हारा जो अभिलाषा हो मैं पूर्ण करूँगा।' शङ्खने अञ्जलि बाँधकर कहा—'नाथ! तुम्हारे चरण-कमलोंकी सेवाके अतिरिक्त और कौन सी वस्तु मैं माँगूं। तुम्हारे प्रेमी भक्त जिस उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं, वही मुझे भी दो।' भगवान्‌ने कहा—'तुम्हारी प्रार्थना पूर्ण होगी। जो मेरा सेवा करते हैं उनके लिये अलभ्य कुछ भी नहीं है। तुम कल्पपर्यन्त मेरा स्मरण करते हुए, उत्तम लोकोंमें निवास करो। अन्तमें तुम मेरे लोकमें आओगे।' भगवान्‌की आज्ञासे सब लोग, अपने अपने लोकको गये और भगवान् अन्तर्धान हो गये। अगस्त्य और शङ्ख दोनोंकी अभिलाषा पूर्ण हुई। दोनों कृतकृत्य हो गये।

धन्य हैं प्रेमी भक्त और उनके भगवान्!

भक्त पद्मनाभ

भगवान् दयामय हैं। वे सम्पूर्ण जगत्पर निरन्तर दयाकी वर्षा करते हैं। उनकी ओरसे किसी भी प्रकारका भेद भाव नहीं है। उसके अनुभवमें जो कुछ विलम्ब है वह जीवकी ओरसे ही है भगवान्‌की ओरसे नहीं। जीव जिस समय सच्चे दिलसे उनकी कृपाका अनुभव करनेके लिये उन्मुख हो उसी समय उनकी उन्नत कृपाका अनुभव करा देते हैं। जीवका सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ इसीमें है कि वह भगवान्‌की कृपाका अनुभव करे। इसके लिये किसी विशेष साधनाकी आवश्यकता नहीं, केवल भाव भक्ति चाहिये। भीम कुम्हारने कौन-सी तपस्या की थी? वह तो केवल मिट्टीके तुलसीदल, फल और फूल बनाकर भगवान्‌को चढ़ा दिया करता था। इसीसे उसपर रीझ गये। वसु किमान कौन-सा बहुत बड़ा तपस्वी था? वह तो केवल साँवेकी खेती करता और उसीका भोग लगाकर प्रसाद पाता, केवल इतनेसे ही उसपर प्रसन्न हो गये। वह रगदास शूद्र ही भगवान्‌के लिये कितना व्याकुल था, केवल उनके एक मानसिक अपराधके मार्जनके लिये ही आप चले आये। भगवान्‌की लीला विचित्र है। वे कब किसपर क्यों प्रसन्न होते हैं इसको वे ही ... । परन्तु इतना निश्चित है कि वे दयाकी मूर्ति हैं जो ... चाहता है, उसको वे अवश्य मिलते हैं।

भारतवर्ष सन्तोंकी खान है। इसमें इतने अ... कि उनकी गणना किसी प्रकार सम्भव नहीं है। तीर्थके एक-एक स्थानमें अनेक-अनेक भक्त हो... तो बात ही क्या, शायद ही कोई ऐसा गाँव

भक्त न हुए हों। वेङ्कटाचल तो मानो भक्तोंके लिये वैकुण्ठ धाम ही है। वहाँ इतने अधिक भक्त हुए हैं कि इस गये-बीते जमानेमें भी वेङ्कटाचल इतना सुन्दर और इतना आकर्षक है कि वहाँ जानेपर एक बार तो प्रत्येक सहृदयके मनमें वहीं रह जानेकी अभिलाषा हो ही जाती है। वहाँकी हरी भरी पर्वतमालाएँ आकाशगङ्गा, स्वामिपुष्करिणी, चक्रतीर्थ आदि ऐसे स्थान हैं, जिनमें स्वभावसे ही सात्त्विकता भरी हुई है, और उनके साथ कोई-न-कोई ऐसी स्मृति लगी हुई है जो जीवको भगवान्‌की ओर अग्रसर करती है।

प्राचीन कालकी बात है। आजकल जहाँ बालाजीका मन्दिर है, वहाँसे थोड़ी दूर एक चक्रपुष्करिणी नामका तीर्थ है। उसके तटपर *श्रीवत्सगोत्रीय पद्मनाभ नामक ब्राह्मण निवास करते थे। उनके पास* न कोई सङ्ग्रह था न परिग्रह। भगवान्‌के नामका जप, उन्हींका स्मरण, उन्हींका चिन्तन—बस, यही उनके जीवनका व्रत था। इन्द्रियाँ उनके वशमें थीं, हृदयमें दीन दुखियोंके प्रति दया थी। सत्यसे प्रेम, विषयोंके प्रति उपेक्षा तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें आत्मभाव—यही उनका जीवन था। अपने सुख दुःखकी कल्पनासे ही उनका हृदय द्रवीभूत हो जाता था। कभी वे सूखे पत्ते खा लेते थे, तो कभी पानीपर ही निर्वाह कर लेते और कभी-कभी तो भगवान्‌के ध्यानमें इतने तन्मय हो जाते कि *शरीरकी सुधि ही नहीं रहती,* फिर खाये-पिये कौन? परन्तु यह सब तो बाहरकी बात थी। उनका हृदय भगवान्‌के लिये छटपटा रहा था। उनके सामने अपने जीवनका कोई मूल्य नहीं था। वे तो ऐसे ऐसे सौ सौ जीवन निछावर करके भगवान्‌को, अपने प्रियतम प्रभुको प्राप्त करना चाहते थे। उनके हृदयमें आशा और निराशाके भयङ्कर तूफान उठा ही करते। कभी वे सोचने लगते कि 'भगवान्' बड़े दयालु हैं, वे

अवश्य ही मुझे मिलेंगे, मैं उनके चरण प्रेमाश्रुसे भिगो दूँगा, वे अपने करकमलोंसे उठाकर हृदयसे लगा लेंगे, मेरे सिरपर हाथ रखकर मुझे अपना कहकर स्वीकार करेंगे, मैं उनके चरणकमलोंपर लोट जाऊँगा आनन्दके समुद्रमें डूबता-उतराता होऊँगा। कितना सौभाग्यमय होगा वह क्षण, कितना मधुर होगा उस समयका जीवन! वे कहेंगे 'वरदान माँगो' और मैं कहूँगा 'मुझे कुछ नहीं चाहिये, मैं तो तुम्हारा सेवा करूँगा, तुम्हें देखा करूँगा। तुम मुझे भूल जाओ या याद रक्खो, मैं तुम्हें कभी नहीं भूलूँगा।' ऐसी भावना करते-करते पद्मनाभ आनन्द-विभोर हो जाते, उनके शरीरमें रोमाञ्च हो जाता, आँखोंसे आँसू गिरने लगते। उनकी यह प्रेममुग्ध अवस्था बहुत देरतक रहती। वे सारे संसारको भूलकर प्रभुकी सेवामें लग रहते।

है।' यही सब सोचते-सोचते इतनी वेदना होती उनके हृदयमें कि ऐसा मालूम होता मानो अब उनका हृदय फट जायगा। कई बार निराशा इतनी बढ़ जाती कि उन्हें अपना जीवन भार हो जाता कभी-कभी वे मूर्च्छित हो जाते और बेहोशीमें ही पुकारने लगते— हे प्रभो, हे स्वामी, हे पुरुषोत्तम ! क्या तुम मुझे अपना दर्शन नहीं दोगे ? इसी प्रकार रोते-रोते, बिलखते बिलखते मर जाना ही मेरे भाग्यमें बदा है ? मैं मृत्युसे नहीं डरता, इस बीच जीवनका अन्त हो जाय—यही अच्छा है। परन्तु मैं तुम्हें देख नहीं पाऊँगा। न जाने कितने जन्मोंके बाद तुम्हारे दर्शन हो सकेंगे। मेरी यह करुण पुकार क्या तुम्हारे विश्वव्यापी कानोंतक नहीं पहुँचती ? अपनालो, प्रभो ! मेरी ओर न देखकर अपनी ओर देखो।' इस प्रकार प्रार्थना करते-करते वे चेतनाशून्य हो जाते और उनका शरीर घण्टोंतक यों ही पड़ा रहता।

लोग कहते हैं, भगवान्के लिये तप करो परन्तु तपका अर्थ क्या है—इसपर विचार नहीं करते। जेठकी दुपहरीमें जब सूर्य चारहों कलासे तप रहे हों पाँच अथवा चौरासी अग्नियोंके बीचमें बैठना, अथवा घोर सर्दीमें पानीमें खड़े रहना—तपकी केवल इतनी ही व्याख्या नहीं है। तपका अर्थ है अपने किये हुए प्रमादके लिये पश्चात्ताप। अपने जीवनकी निम्न स्थितिसे असन्तोष और भगवान्के विरहकी वह ज्वाला जो जीवनकी सम्पूर्ण कलुषताओंको जलाकर उसे सोनेकी भाँति चमका दे—वास्तवमें यही तपका अर्थ है। यही ताप देवदुर्लभ तप है। पद्मनाभका जीवन इसी तपस्यासे परिपूर्ण था और वे सच्चे अर्थमें तपस्वी थे। एक दिन उनकी यह तपस्या पराकाष्ठाको पहुँच गयी। उन्होंने सच्चे हृदयसे, सम्पूर्ण शक्तिसे भगवान्से प्रार्थना की—'हे प्रभो, अब मुझे अधिक न तरसाओ। तुम्हारे दर्शनकी आशामें अब मैं और कितने

दिनांतक जीवित रहूँ ? एक एक पल कल्पके समान बीत रहा है, संसार सूना दीखता है और मेरा यह दग्ध जीवन, यह प्रभुहीन जीवन विषसे भी कटु मालूम हो रहा है। वे आँखें किस कामकी, जिन्होंने आजतक तुम्हारे दर्शन नहीं किये ? अब इनका फूट जाना ही अच्छा है। यदि इस जीवनमें तुम नहीं मिल सकते तो इसे नष्ट कर दो। मुझे स्त्री, पुत्र, धन जन, लोक परलोक कुछ नहीं चाहिये। मुझे तो तुम्हारा दर्शन चाहिये, तुम्हारी सेवा चाहिये। एक बार तुम मुझे अपना स्वीकार कर लो, बस इतना ही चाहिये। गज, ग्राह गणिका और गीधपर जैसी कृपा तुमने की, क्या उसका पात्र मैं नहीं हूँ ? तुम तो बड़े कृपालु हो कृपापरवश हो, कृपालुता ही तुम्हारा विरद है। मेरे ऊपर भी अपनी कृपाकी एक किरण डालो।' इस प्रकार प्रार्थना करते-करते पद्मनाभ भगवान्‌की अहैतुक कृपाके स्मरणमें तन्मय हो गये।

भगवान्‌के धैर्यकी भी एक सीमा है। वे अपने प्रेमियोंसे कबतक छिप सकते हैं। वे तो सर्वदा, सब जगह, सबके पास ही रहते हैं, केवल प्रकट होनेका अवसर ढूंढा करते हैं। जब देखते हैं कि मेरे प्रकट हुए बिना अब काम नहीं चल सकता, तब तत्क्षण प्रकट हो जाते हैं। वे तो पद्मनाभके पास पहलेसे ही थे, उनके ताप उत्कण्ठा और प्रार्थनाको देख देखकर मुग्ध हो रहे थे। जब उनकी अवधि पूरी हो गयी, तब वे पद्मनाभ ब्राह्मणके सम्मुख प्रकट हो गये। सारा स्थान भगवान्‌की दिव्य अङ्गज्योतिसे भर गया। पद्मनाभकी पलकें खुल गयीं। सहस्र सहस्र सूर्यके समान दिव्य प्रकाश और उसके भीतर शङ्ख चक्र गदा पद्मधारी चतुर्भुज भगवान्! हृदय शीतल हो गया। आँखें निर्निमेष होकर रूप रसका पान करने लगीं। पद्मनाभका सम्पूर्ण हृदय उन्मुक्त होकर भगवान्‌के कृपापूर्ण नेत्रोंसे बरसती हुई प्रेम धारामें डूबने उतराने लगा। जन्म-जन्मकी

अभिलाषा पूरी हुई। कुछ कहा नहीं जाता था। भगवान्‌ने एकाएक ऐसे अनुग्रहकी वर्षा की कि वे चकित-स्तम्भित रह गये। भगवान् केवल मुस्करा रहे थे।

कुछ क्षणतक निस्तब्ध रहकर गद्गद वाणीसे पद्मनाभने स्तुति की—'प्रभो! आप ही मेरे, निखिल जगत्‌के और जगत्‌के स्वामियोंके भी स्वामी हैं, सम्पूर्ण ऐश्वर्य और माधुर्य आपके ही आश्रित हैं। आप पतितपावन हैं, आपके स्मरणमात्रसे ही पापोंका नाश हो जाता है। आप घट-घटमें व्यापक हैं, जगत्‌के बाहर और भीतर केवल आप ही हैं। आप विश्वातीत, विश्वेश्वर और विश्वरूप होनेपर भी भक्तोंपर कृपा करके इनके सामने प्रकट हुआ करते हैं। ब्रह्मा आदि देवता भी आपका रहस्य नहीं जानते, केवल आपके चरणोंमें भक्तिभावसे नम्र होकर प्रणाम करते हैं। आपकी सुन्दरता, आपकी कोमलता और आपकी प्रेमवशता किसे आपकी ओर आकृष्ट नहीं कर लेती? आप क्षीरसागरमें शयन करते रहते हैं, फिर भी अपने भक्तोंकी विपत्तिका नाश करनेके लिये सर्वत्र चक्रधारी रूपमें विद्यमान रहते हैं। भक्त आपके हैं और आप भक्तोंके। जिसने आपके चरणोंमें अपना सिर झुकाया, उसको आपने समस्त विपत्तियोंसे बचाकर परमानन्दमय अपना धाम दिया। आप योगियोंके समाधिगम्य हैं, वेदान्तियोंके ज्ञानस्वरूप आत्मा हैं, और भक्तोंके सर्वस्व हैं। मैं आपका हूँ, आपके चरणोंमें समर्पित हूँ—नत हूँ।' इतना कहकर पद्मनाभ मौन हो गये, और कहना ही क्या था?

अब भगवान्‌की बारी आयी। वे जानते थे कि पद्मनाभ निष्काम भक्त हैं, इनके चित्तमें संसारके भोगोंकी तो बात ही क्या—मुक्तिकी इच्छा भी नहीं है। इसलिये उन्होंने पद्मनाभसे वर माँगनेको नहीं कहा। उनके चित्तकी स्थिति जानकर उनको सुधामयी वाणीसे सींचते हुए भगवान्‌ने कहा—'हे महाभाग ब्राह्मणदेव, मैं

जानता हूँ कि तुम्हारे हृदयमें केवल मेरी सेवाकी इच्छा है। तुम लोक परलोक, मुक्ति और मेरे धाम तकका परित्याग करके मेरी पूजा सेवामें ही सुख मानते हो और वही करना चाहते हो, तुम्हारा इच्छा पूर्ण हो। कल्पपर्यन्त मेरा सेवा करते हुए यहीं निवास करो। अन्तमें ता तुम्हें मेरे पास आना ही पड़ेगा।' इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और पद्मनाभ भगवान्की शारीरिक तथा मानसिक सेवा करते हुए अपना सर्वश्रेष्ठ एवं आनन्दमय जीवन व्यतीत करने लगे। भगवान्की सेवा पूजासे बढ़कर और ऐसा कर्तव्य ही कौन सा है, जिसके लिये भगवान्के प्रेमी भक्त जीवन धारण करें? पद्मनाभकी प्रत्येक क्रिया, उनकी प्रत्येक भावना भगवान्के लिये ही होती थी और स्वभावसे ही उनके द्वारा जगत्का कल्याण सम्पन्न होता था। ऐसे भक्त एकान्तमें रहकर भी भगवान्की सेवामें ही लगे रहकर भी अपने शुद्ध सङ्कल्पसे संसारकी जितनी सेवा कर सकते हैं, उतनी सेवा काममें लग रहकर बड़े-बड़े कर्मनिष्ठ भी नहीं कर सकते।

इसी प्रकार भगवान्की सेवा पूजा करते हुए पद्मनाभको अनेकों वर्ष बीत गये। वे एक दिन भगवान्का स्मरण करते हुए उनकी पूजाकी सामग्री इकट्ठी कर रहे थे, इसी समय एक भयङ्कर राक्षसने उनपर आक्रमण किया। उन्हें अपने शरीरका मोह नहीं था। मरनेके बाद किसी दुःखमय स्थानमें जाना पड़ेगा, यह आशङ्का भी उनके चित्तमें नहीं थी। परन्तु राक्षस खा जायगा, इस कल्पनासे उनके चित्तमें यह प्रश्न अवश्य उठा कि तब क्या भगवान्ने मुझे अपनी सेवा पूजाका जो अवसर दिया है, वह आज ही, इसी क्षण समाप्त हो जायगा? मेरे इस सौभाग्यकी यहीं इस प्रकार पूर्णाहुति हो जायगी? भगवान्ने मुझे जो एक कल्पतक पूजा करनेका वरदान दिया है, वह क्या झूठा हो जायगा? यह तो बड़े दुःखकी बात है।

ऐसा सोचकर वे भगवान्से प्रार्थना करने लगे—'हे दयासागर! हे दीनोंके एक मात्र आश्रय! हे अन्तर्यामी! हे चक्रपाणे! आप मेरी रक्षा करें, मेरी रक्षा करें। जो भी आपकी शरणमें आया, आपने उसकी रक्षा की। मैं आपका शरणागत हूँ, आपका अपना हूँ, क्या आपके देखते देखते यह राक्षस मुझे खा जायगा? जब ग्राहने गजेन्द्रको पकड़ लिया था, दुर्वासाकी कृत्या अम्बरीषको खा जाना चाहती थी, तब आपने अपना चक्र भेजकर उनकी रक्षा की थी। प्रह्लादकी रक्षाके लिये तो स्वयं आप ही पधारे थे। इस राक्षसका साहस तो इतना बढ़ गया है कि यह आपके वरदानको ही खा जाना चाहता है। प्रभो! अपने विरदकी रक्षा कीजिये, मुझे इस राक्षससे बचाइये।'

तीखी सुईसे कमलका कोमल दल वेधनेमें विलम्ब हो सकता है, परन्तु सच्ची प्रार्थनाके भगवान्तक पहुँचनेमें तनिक भी विलम्ब नहीं हो सकता। अन्तर्यामी भगवान् भक्त पद्मनाभकी प्रार्थनाके पहले ही जान गये थे कि उनपर सङ्कट आया है। भगवान् जानते तो सब कुछ हैं और करते भी सब कुछ ठीक ही हैं, लोग उनके विधानपर निर्भर नहीं रह पाते, इसीसे कुछ कहने या सोचने लगते हैं। भगवान्ने भक्त पद्मनाभकी रक्षाके लिये अपने प्रिय आयुध सुदर्शन चक्रको भेजा। चक्रका तेज कोटि-कोटि सूर्यके समान है। भक्तोंके भयको भस्म करनेके लिये आगकी भीषण लपटें उससे निकला करती हैं। चक्रकी तेजोमय मूर्ति देखकर वह राक्षस भयभीत हो गया और ब्राह्मणको छोड़ कर बड़े वेगसे भागा। परन्तु सुदर्शन चक्र उसे कब छोड़नेवाले थे? उन्हें इस राक्षसका भी तो उद्धार करना था।

यह राक्षस आजसे सोलह वर्ष पहले गन्धर्व था। इसका नाम सुन्दर था। एक दिन श्रीरङ्गक्षेत्रमें अपनी स्त्रियोंके साथ कावेरी

नदीमें जलविहार कर रहा था। उसी समय उधरसे श्रीरङ्गनाथके परमभक्त महर्षि वसिष्ठ निकले, उन्हें देखकर स्त्रियाँ लज्जित हो गयीं। उन्होंने जल्दीसे बाहर निकलकर अपने अपने वस्त्र पहन लिये। परन्तु मदान्ध सुन्दर जहाँ-का-तहाँ उच्छृङ्खलभावसे खड़ा रहा। महर्षि वसिष्ठने उसके इस अनुचित कृत्यको देखकर डाँटा और कहा—'नीच गन्धर्व! तू इस पवित्र क्षेत्रमें, इस पावन नदीमें, इतना गर्हित कृत्य कर रहा है! तू गन्धर्व रहने योग्य नहीं है, जा राक्षस हो जा।' वसिष्ठके शाप देते ही उसकी स्त्रियोंने दौड़कर महर्षिके चरण पकड़ लिये। उन्होंने प्रार्थना की कि हे महर्षे! आप बड़े शक्तिमान्, धर्मज्ञ और दयालु हैं। आप हम लोगोंकी ओर देखकर हमारे पतिदेवपर क्रोध न करें। पति ही स्त्रियोंका शृङ्गार है पति ही सती स्त्रियोंका जीवन है; यदि सौ पुत्र हों तो भी पतिके बिना स्त्री विधवा कही जाती है। पतिके बिना स्त्रीका जीवन शून्य है। हे दयासागर, आप हमपर प्रसन्न हों। हम स्त्रियोंके सम्मानके लिये हमारे स्वामीपर कृपा करें। उनका यह एक अपराध अपनी दयालुतासे हमारी ओर देखकर क्षमा करें; वे आपके सेवक हैं, आपकी आज्ञाकी प्रतीक्षामें हैं।' महर्षि वसिष्ठ प्रसन्न हो गये, उन्होंने कहा—'देवियो, तुम्हारा पतिप्रेम आदर्श है, परन्तु मेरी बात कभी झूठी नहीं होती, मैं जानबूझकर कभी झूठ नहीं बोलता, इसलिये अनजानमें कही हुई बात भी सत्य हो जाती है। इसलिये सुन्दरको राक्षस तो होना ही पड़ेगा; परन्तु आजके सोलहवें वर्ष जब यह भगवान्‌के भक्त पद्मनाभपर आक्रमण करेगा, तब सुदर्शन चक्र इसका उद्धार कर देंगे?

आज वही सोलहवाँ वर्ष पूरा होनेवाला था। राक्षस बड़े वेगसे भाग रहा था, परन्तु सुदर्शन चक्रसे बचकर कहाँ जा सकता था? देखते-ही देखते, सुदर्शन चक्रने उसका सिर काट लिया और

तत्क्षण वह राक्षस गन्धर्व हो गया। दिव्य शरीर, दिव्य वस्त्र एवं दिव्य आभूषणोंसे युक्त होकर सुन्दरने सुदर्शन चक्रको प्रणाम करते हुए स्तुति की—'हे भगवान्के परम प्रिय आयुध! मैं आपको बार बार नमस्कार करता हूँ। आपका तेज कोटि कोटि सूर्यसे भी अधिक है। आप भक्तोंके द्रोहियोंका संहार करते हैं। आपने कृपा करके मुझे राक्षसयोनिसे मुक्त किया। अब मैं गन्धर्व होकर अपने लोकको जा रहा हूँ, आप सर्वदा मुझपर कृपा रखिये। मुझे आप ऐसा वरदान दीजिये कि मैं आपको कभी न भूलूँ और सर्वदा आपका स्मरण करता रहूँ। मैं चाहे जहाँ रहूँ, मेरा मन आपकी सन्निधिमें रहे।' सुदर्शन चक्रने 'तथास्तु' कहकर उसकी अभिलाषा पूर्ण की। उसने दिव्य विमानपर बैठकर अपने लोककी यात्रा की।

भक्त पद्मनाभने सुन्दरके गन्धर्वलोकमें चले जानेपर सुदर्शन चक्रकी स्तुति की—'हे सुदर्शन, मैं तुम्हें बार-बार प्रणाम करता हूँ। तुम्हारे जीवनका व्रत है संसारकी रक्षा। इसीसे भगवान्ने तुम्हें अपने करकमलोंका आभूषण बनाया है। तुमने समय-समयपर अनेक भक्तोंको महान् विपत्तियोंसे बचाया है, मैं तुम्हारी इस कृपाका ऋणी हूँ। तुम सर्व शक्तिमान् हो, मैं तुमसे यही प्रार्थना करता हूँ कि तुम यहीं रहो और सारे संसारकी रक्षा करो।' सुदर्शन चक्रने भक्त पद्मनाभकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और कहा—'भक्तवर, तुम्हारी प्रार्थना कभी व्यर्थ नहीं हो सकती, क्योंकि भगवान्के तुम परम कृपा पात्र हो। मैं यहीं तुम्हारे समीप ही सर्वदा निवास करूँगा। तुम निर्भय होकर भगवान्की सेवा पूजा करो। अब तुम्हारी उपासनामें किसी प्रकारका विघ्न नहीं पड़ सकता।' भक्त पद्मनाभको इस प्रकारका वरदान देकर सुदर्शन चक्र सामनेकी पुष्करिणीमें प्रवेश कर गये। इसीसे उसका नाम चक्रतीर्थ हुआ।

करा कर नाना प्रकारके रंग बिरंगे सुगन्धित पुष्प चढ़ाते और उपहारमें मणि, मोती, और हीरे समर्पित करते। नैवेद्यके लिये अनेकों प्रकारकी सामग्री नित्य तैयार करवाते और बड़े उत्साहसे उसका भोग लगाते। उनका यह नित्यनियम बहुत वर्षोंतक चलता रहा।

यद्यपि भगवान् शंकर केवल पूजासे भी प्रसन्न होते हैं, इन्द्रसेन राजापर तो जो अपने सैनिकोंसे 'आहर-प्रहर' कहा करता था उसके 'हर-हर' इस उच्चारणपर ही प्रसन्न हो गये—तथापि वे अपने भक्तमें कोई त्रुटि नहीं रहने देना चाहते, इसलिये कभी-कभी प्रसन्न होनेमें विलम्ब भी कर दिया करते हैं। यह विलम्ब भी उनकी अतिशय कृपासे परिपूर्ण ही होता है। उन्होंने वहाँ एक ऐसी घटना घटित की जिससे यह मालूम हो जाय कि भगवान् केवल नियमपालनसे ही प्रसन्न नहीं होते, उनके लिये और भी कुछ आवश्यक है और वह है भाव-भक्ति, प्रेम एवं आत्मसमर्पण।

जिस मन्दिरमें नन्दी वैश्य पूजा करते थे, वह बस्तीसे कुछ दूर जंगलमें था। एक दिनकी बात है कि कोई किरात शिकार खेलता हुआ उधरसे निकला। प्राणियोंकी हिंसामें, जो कि अत्यन्त गर्हित है उसे रस मिलता था। उसकी बुद्धि जड़प्राय थी, उसमें विवेकका लेश भी नहीं था। दोपहरका समय था, वह भूख प्याससे व्याकुल हो रहा था। मन्दिरके पास आकर वहाँके सरोवरमें उसने स्नान किया और जल पान कर अपनी तृषा शान्त की। जब वहाँसे लौटने लगा, तब उसकी दृष्टि मन्दिरपर पड़ी और पूर्वजन्मके न जाने कौन से संस्कार उसके चित्तमें उग आये और उसके मनमें यह इच्छा हुई कि मन्दिरमें जाकर भगवान्का दर्शन कर लूँ। जब उसने मन्दिरमें जाकर भगवान् शंकरका दर्शन किया तो उसके चित्तमें पूजा करनेका संकल्प उठा और उसने अपनी बुद्धिके अनुसार पूजा की।

उसने कैसी पूजा की होगी इसका अनुमान सहज ही लग सकता है। न उसके पास पूजाकी सामग्री थी और न वह उसे जानता ही था। किस सामग्रीका उपयोग किस विधिसे किया जाता है, यह जाननेकी भी उसे आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई। उसने देखा, लोगोंने स्नान कराकर बिल्वपत्र आदि चढ़ाये हैं। उसने एक हाथसे बिल्वपत्र तोड़ा, दूसरे हाथमें मांस पहलेसे ही था। गण्डूष-जलसे स्नान कराकर उसने बिल्वपत्र और मांस चढ़ा दिया। वह मांसभोजी भील था, उसको इस बातका पता नहीं था कि देवताको मांस नहीं चढ़ाना चाहिये। यही काम यदि कोई जानबूझकर करे तो वह दोषका भागी होता है। परन्तु उसने तो भावसे अपनी शक्ति और ज्ञानके अनुसार पूजा की थी। बड़ा आनन्द हुआ उसे, प्रेम मुग्ध होकर वह शिवलिंगके सम्मुख साष्टाङ्ग दण्डवत् करने लगा। उसने दृढ़तासे यह निश्चय किया कि आजसे मैं प्रतिदिन भगवान् शंकरकी पूजा करूँगा। उसका यह निश्चय अविचल था, क्योंकि यह उसके गम्भीर अन्तस्तलकी प्रेरणा थी।

दूसरे दिन प्रात.काल नन्दी वैश्य पूजा करने आये। मन्दिरकी स्थिति देख वे अवाक् रह गये। कलकी पूजा इधर-उधर बिखरी पड़ी थी, मांसके टुकड़े भी इधर-उधर पड़े थे। उन्होंने सोचा—'यह क्या हुआ! मेरी पूजामें ही कोई त्रुटि हुई होगी, जिसका यह फल है। इस प्रकार मन्दिरको भ्रष्ट करनेवाला विघ्न तो कभी नहीं हुआ था। अवश्य ही यह मेरा दुर्भाग्य है।' यही सब सोचते हुए उन्होंने मन्दिर साफ किया और पुनः स्नानादि करके भगवान्की पूजा की। घर लौटकर उन्होने पुरोहितसे सारा समाचार कह सुनाया और बड़ी चिन्ता प्रकट की। पुरोहितको क्या मालूम था कि इस काममें भी किसीका भक्ति भाव हो सकता है। उन्होंने कहा—'अवश्य ही यह किसी मूर्खका काम है, नहीं तो रत्नोंको इधर-उधर बिखेरकर भला

कोई मन्दिरको अपवित्र एवं भ्रष्ट क्यों करता ? चलो, कल हम भी तुम्हारे साथ चलेंगे और देखेंगे कि कौन दुष्ट ऐसा काम करता है ?' नन्दी वैश्यने बड़े दुःखसे वह रात्रि व्यतीत की।

प्रातःकाल होते न-होते नन्दी वैश्य अपने पुरोहितको लेकर शिव-मन्दिर पहुँच गया। देखा, वही हालत आज भी थी जो कल थी। वहाँ मार्जन आदि करके नन्दीने शिवजीकी पञ्चोपचार पूजा की और रुद्राभिषेक किया। ब्राह्मण स्तुतिपाठ करने लगे। वेद-मन्त्रोंकी ध्वनिसे वह जंगल गूँज उठा, सबकी आँखें लगी हुई थीं कि देखें मन्दिरको भ्रष्ट करनेवाला कब किधरसे आता है।

दोपहरके समय किरात आया। उसकी आकृति बड़ी भयङ्कर थी। हाथोंमें धनुष बाण लिये हुए था। शङ्कर भगवान्की कुछ ऐसी लीला ही थी कि किरातको देखकर सब के-सब डर गये और एक कोनेमें जा छिपे। उनके देखते-देखते किरातने उनकी की हुई पूजा नष्ट-भ्रष्ट कर दी एवं गण्डूष-जलसे स्नान कराकर बिल्वपत्र और मांस चढ़ाया। जब वह साष्टाङ्ग नमस्कार करके चला गया, तब नन्दी वैश्य और ब्राह्मणोंके जीमें जी आया और सब बस्तीमें लौट आये। नन्दीके पूछने पर ब्राह्मणोंने यह व्यवस्था दी की यह उपासनाका विघ्न है। बड़े-बड़े देवता भी इसका निवारण नहीं कर सकते। इसलिये उस लिङ्गमूर्तिको ही अपने घर ले आना चाहिये। उन विद्वानोंके चित्तमें यह बात कब आ सकती थी कि वह किरात नन्दी वैश्यकी अपेक्षा भगवान्का श्रेष्ठ भक्त है और वह भी अपनी जानमें भगवान्की उपासना ही करता है। ब्राह्मणोंकी व्यवस्थाके अनुसार शिवलिङ्ग वहाँसे उखाड़ लाया गया और नन्दी वैश्यके घरपर विधिपूर्वक उसकी प्रतिष्ठा की गयी। उनके घर सोने और मणि-रत्नोंकी कमी तो

थीं ही नहीं संकोच छोड़कर उनका उपयोग किया गया, परन्तु भगवान्‌को धन-सम्पत्तिके अतिरिक्त कुछ और भी चाहिये।

प्रतिदिनके नियमानुसार किरात अपने समयपर शङ्करकी पूजा करने आया, परन्तु मूर्तिको न पाकर सोचने लगा—'यह क्या, भगवान् तो आज हैं ही नहीं।' मन्दिरका एक एक कोना छान डाला, एक एक छिद्रको ध्यानपूर्वक देखा, मन्दिरके आसपास भी यथासम्भव ढूँढनेकी चेष्टा की, परन्तु सब व्यर्थ। उसके भगवान् उसे नहीं मिले। किरातकी दृष्टिमें वह मूर्ति नहीं थी, स्वयं भगवान् थे। अपने प्राणोंके लिये वह भगवान्‌की पूजा नहीं करता था। अपने जीवनसर्वस्व प्रभुको न पाकर वह विह्वल हो गया और बड़े आर्तस्वरसे पुकारने लगा—'महादेव, शम्भो, मुझे छोड़कर तुम कहाँ चले गये? प्रभो, अब एक क्षणका भी विलम्ब सहन नहीं होता। मेरे प्राण तड़फड़ा रहे हैं, छाती फटी जा रही है, आँखोंसे कुछ सूझता नहीं। मेरी करुण पुकार सुनो, मुझे जीवनदान दो। अपने दर्शनसे मेरी आँखें तृप्त करो। जगन्नाथ, त्रिपुरान्तक, यदि तुम्हारे दर्शन नहीं होंगे तो मैं जीकर क्या करूँगा? मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ और सच कहता हूँ, तुम्हारे बिना मेरी क्या दशा हो रही है, मैं तुम्हारे बिना जी नहीं सकता। क्या तुम देख नहीं रहे हो आशुतोष, कि यह निष्ठुरता तुम्हारे अनुरूप नहीं है? क्या तुमने समाधि लगा ली? क्या कहीं जाकर सो गये? मेरा करुण पुकार क्या तुम्हारे कानोंतक नहीं पहुँच रही है?' इस प्रकार प्रार्थना करते-करते किरातकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा अविरल रूपसे बहने लगी। वह विकल हो गया, अपने हाथोंको पटकने तथा शरीरको पीटने लगा। उसने कहा—'अपनी जानमें मैंने कोई अपराध नहीं किया है, फिर क्या कारण है कि तुम चले गये? अच्छा यही सही, मैं तो तुम्हारी पूजा करूँगा ही। किरातने

अपने हाथसे बहुत-सा मांस काटकर उस स्थानपर रक्खा जहाँ पहले शिवलिङ्ग था। स्वस्थ हृदयसे, क्योंकि अब उसने प्राणत्यागका निश्चय कर लिया था, सरोवरमें स्नान करके सदाकी भाँति पूजा की और साष्टाङ्ग प्रणाम करके ध्यान करने बैठ गया।

ध्यान तो बहुत से लोग करते हैं, परन्तु वे तो कुछ समय तक कर्तव्यपालनके लिये ध्यान करते हैं। इसीसे वे अपने अन्तर्देशमें प्रवेश नहीं कर पाते, क्योंकि ध्यानके बादके लिये बहुत सी वासनाओंको वे सुरक्षित रक्खे रहते हैं। किरातके चित्तमें अब एक भी वासना अवशेष नहीं थी वह केवल भगवान्का दर्शन चाहता था। ध्यान अथवा मृत्यु यही उसकी साधना थी। यही कारण है कि बिना किसी विक्षेपके उसने लक्ष्यवेध कर लिया और उसका चित्त भगवान्के लीलालोकमें विचरण करने लगा। उसकी अन्तर्दृष्टि भगवान्के कर्पूरोज्ज्वल भस्मभूषित, गंगातरङ्गरमणीयजटाकलापसे शोभित एवं सर्पपरिवेष्टित अङ्गोंकी सौन्दर्यसुधाका पान करने लगी और वह उनकी लीलामें सम्मिलित होकर विविध प्रकारसे उनकी सेवा करने लगा। उसे बाह्य जगत्, शरीर अथवा अपने आपकी सुधि नहीं थी, वह केवल अन्तर्जगत्की अमृतमयी सुरभिसे छक रहा था, मस्त हो रहा था। बाहरसे देखनेपर उसका शरीर रोमाञ्चित था, आँखोंसे आँसूकी बूँदें ढुलक रही थीं रोम रोमसे आनन्दकी धारा फूटी पड़ती थी। उस क्रूरकर्मा किरातके अन्तरालमें इतना माधुर्य कहाँ सो रहा था, इसे कौन जान सकता है?

किरातकी तन्मयता देखकर शिवने अपनी समाधि भङ्ग की। वे उसके हृदयदेशमें नहीं, इन चर्मचक्षुओंके सामने—जिनसे हमलोग इस संसारको देखते हैं—प्रकट हुए। उनके ललाटदेशस्थित चन्द्रने अपनी सुधामयी रश्मियोंसे किरातकी काया उज्ज्वल कर दी।

उसके शरीरका अणु-अणु बदलकर अमृतमय हो गया। परन्तु उसकी समाधि ज्यों-की-त्यों थी। भगवान्‌ने मानो अपनी अनुपस्थितिके दोषका परिमार्जन करते हुए किरातसे कहा—'हे महाप्राज्ञ, हे वीर, मैं तुम्हारे भक्तिभाव और प्रेमका ऋणी हूँ, तुम्हारी जो बड़ी-से-बड़ी अभिलाषा हो, वह मुझसे कहो, मैं तुम्हारे लिये सब कुछ कर सकता हूँ।' भगवान्‌की वाणी और सङ्कल्पने किरातको बाहर देखनेके लिये विवश किया। परन्तु जब उसने जाना कि मैं जो भीतर देख रहा था वही बाहर भी है, तब तो उसकी प्रेमभक्ति पराकाष्ठाको पहुँच गयी और वह सर्वाङ्गसे नमस्कार करता हुआ श्रीभगवान्‌के चरणोंमें लोट गया। भगवान्‌के प्रेम पूर्वक उठानेपर और प्रेरणा करनेपर उसने प्रार्थना की—'भगवन्, मैं आपका दास हूँ, आप मेरे स्वामी हैं—मेरा यह भाव सदा बना रहे और मुझे चाहे जितनी बार जन्म लेना पड़े, मैं तुम्हारी सेवामें संलग्न रहूँ। प्रतिक्षण मेरे हृदयमें तुम्हारा प्रेम बढ़ता ही रहे। प्रभो! तुम्हीं मेरी दयामयी माँ हो और तुम्हीं मेरे न्यायशील पिता हो। मेरे सहायक बन्धु और प्राणप्रिय सखा भी तुम्हीं हो। मेरे गुरुदेव, मेरे इष्टदेव और मेरे मन्त्र भी तुम्हीं हो। तुम्हारे अतिरिक्त तीनों लोकोंमें और कुछ नहीं है, केवल तुम्हीं हो।' किरातकी निष्काम प्रेमपूर्ण प्रार्थना सुनकर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने सर्वदाके लिये उसे अपना पार्षद बना लिया। उसे पार्षदरूपमें प्राप्त करके शङ्करको बड़ा आनन्द हुआ और वे अपने उल्लासको प्रकट करनेके लिये डमरू बजाने लगे।

भगवान्‌के डमरूके साथ ही तीनों लोकमें भेरी, शङ्ख, मृदङ्ग और नगारे बजने लगे। सर्वत्र 'जय-जय' की ध्वनि होने लगी। शिवभक्तोंके चित्तमें आनन्दकी बाढ़ आ गयी। यह आनन्द कोलाहल तत्क्षण नन्दी वैश्यके घर पहुँच गया। उन्हें बड़ा आश्चर्य

हुआ और वे अविलम्ब वहाँ पहुँचे। किरातके भक्तिभाव और भगवत्-प्रसादको देखकर उनका हृदय गद्गद हो गया और जो कुछ अज्ञानरूप मल था उनके चित्तमें कि भगवान् धन आदिसे प्राप्त हो सकते हैं वह सब धुल गया. वे मुग्ध होकर किरातकी स्तुति करने लगे—'हे तपस्वी, तुम भगवान्‌के परम भक्त हो; तुम्हारी भक्तिसे ही प्रसन्न होकर भगवान् यहाँ प्रकट हुए हैं। मैं तुम्हारी शरणमें हूँ। अब तुम्हीं मुझे भगवान्‌के चरणोंमें अर्पित करो? नन्दीकी बातसे किरातको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने तत्क्षण नन्दीका हाथ पकड़कर भगवान्‌के चरणोंमें उपस्थित किया। उस समय भोलेबाबा सचमुच भोले बन गये। उन्होंने किरातसे पूछा—'ये कौन सज्जन हैं? मेरे गणोंमें इन्हें लानेकी क्या आवश्यकता थी?' किरातने कहा—'प्रभो, ये आपके सेवक हैं, प्रतिदिन रत्न-माणिक्यसे आपकी पूजा करते थे। आप इनको पहचानिये और स्वीकार कीजिये।' शङ्करने हँसते हुए कहा—'मुझे तो इनकी बहुत कम याद पड़ती है। तुम तो मेरे प्रेमी हो, सखा हो; परन्तु ये कौन हैं? देखो भाई, जो निष्काम हैं, निष्कपट हैं और हृदयसे मेरा स्मरण करते हैं, वे ही मुझे प्यारे हैं; मैं उन्हींको पहचानता हूँ।' किरातने प्रार्थना की—'भगवन्, मैं आपका भक्त हूँ और यह मेरा प्रेमी है। आपने मुझे स्वीकार किया और मैंने इसे, हम दोनों ही आपके पार्षद हैं।' अब तो भगवान् शङ्करको बोलनेके लिये कोई स्थान ही नहीं रहा। भक्तकी स्वीकृति भगवान्‌की स्वीकृतिसे बढ़कर होती है। किरातके मुँहसे यह बात निकलते ही सारे संसारमें फैल गयी। लोग शत-शत मुखसे प्रशंसा करने लगे कि किरातने नन्दी वैश्यका उद्धार कर दिया।

उसी समय बहुत से ज्योतिर्मय विमान वहाँ आ गये। भगवान् शङ्करका सारूप्य प्राप्त करके दोनों भक्त उनके साथ कैलास गये

और मॉ पार्वतीके द्वारा सत्कृत होकर वहीं निवास करने लगे। यही दोनों भक्त भगवान् शङ्करके गणोंमें नन्दी और महाकालके नामसे प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार नन्दीकी भक्तिके द्वारा किरातकी भक्तिको उत्तेजित करके और किरातकी भक्तिके द्वारा नन्दीकी भक्तिको पूर्ण करके आशुतोष भगवान् शङ्करने दोनोंको स्वरूप दान किया और कृतकृत्य बनाया।

धन्य हैं ऐसे दयालु भगवान् और उनके प्रेमी भक्त!

भक्त राजा पुण्यनिधि

दक्षिण देशमें पाण्ड्य और चोलवंशियोंके राज्य चिरकालसे प्रसिद्ध हैं। दोनों ही वंशोंमें बड़े-बड़े धर्मात्मा, न्यायशील, भगवद्भक्त राजा हो गये हैं। उनके प्रजापालनकी बात आज भी बड़े प्रेमसे कही-सुनी जाती है। वे प्रजाको सगे पुत्रसे बढ़कर मानते थे और प्रजा भी उन्हें मनुष्यके रूपमें परमेश्वर ही समझती थी। सब सुखी थे, सर्वत्र शान्ति थी। जिन दिनों पाण्ड्यवंशकी राजधानी मधुरा थी—जिसे आजकल मदुरा कहते हैं, उसके एकच्छत्र अधिपति थे राजा पुण्यनिधि। पुण्यनिधिका नाम सार्थक था, वास्तवमें वे पुण्योंके खजाने ही थे। उनका सादा जीवन इतना उच्च और आदर्श था कि जो भी उन्हें देखता, प्रभावित हुए बिना नहीं रहता, उनके जीवनमें शान्ति थी। उनके परिवारमें शान्ति थी और उनके राज्यमें शान्ति थी। उनके पुण्यप्रतापसे उनके शुद्ध व्यवहारसे सम्पूर्ण प्रजा पुण्यात्मा हो रही थी। शासनकी तो आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी, सब लोग बड़े प्रेमसे अपने-अपने कर्तव्यका पालन करते थे। उनके पास सेना प्रजाकी रक्षाके लिये ही थी। उनका सारा व्यवहार प्रेम और आत्मबलसे ही चलता था। वे समय-समयपर तीर्थयात्रा करते, यज्ञ करते, दान करते और दिल खोलकर दीन दुखियोंकी सहायता करते। सबसे बड़ा गुण उनमें यह था कि वे जो कुछ भी करते थे, भगवान्‌के लिये, भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये और भगवान्‌के प्रेमके लिये। उनके चित्तमें न तो इस लोकके लिये कामना थी न परलोकके लिये। वे शुद्ध भावसे भगवान्‌की आज्ञा समझकर उन्हींकी शक्तिसे, उन्हींकी प्रसन्नताके लिये अपने कर्त्तव्योंका पालन करते थे।

एक बार अपने परिवार और सेनाके साथ राजा पुण्यनिधिने सेतुबन्ध रामेश्वरकी यात्रा की। इस बार उनकी यह इच्छा थी कि समुद्रके पवित्र तटपर गन्धमादन पर्वतकी उत्तम भूमिमें अधिक दिनोंतक निवास किया जाय, इसलिये राज्यका सारा भार पुत्रको सौंप दिया और आवश्यक सामग्री एवं सेवकोंको लेकर वे वहीं निवास करने लगे।

वैसे तो मथुरा भी एक परम पावन तीर्थ ही है। भगवती मीनाक्षी और भगवान् सोमसुन्दरकी क्रीड़ास्थली होनेके कारण उसकी महिमा भी कम नहीं है। परन्तु रामेश्वर तो रामेश्वर ही है। वहाँ भगवान् रामने शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा की है। सब तीर्थ मूर्तिमान होकर वहाँ निवास करते हैं। वहाँका समुद्र, वहाँके जङ्गल–सभी मोहक हैं तपोमय हैं और सात्त्विकताका सञ्चार करनेवाले हैं। राजा पुण्यनिधिका मन वहीं रम गया। वे बहुत दिनोंतक वहीं रह गये। उनके हृदय में भगवान्की भक्ति थी। वे जहाँ जाते, जहाँ रहते वहीं भगवान्का स्मरण-चिन्तन किया करते। मनमें कोई कामना तो थी नहीं, इसलिये उनका अन्तःकरण शुद्ध था। शुद्ध अन्तःकरणमें जो भी सङ्कल्प उठता है वह भगवान्की प्रसन्नताके लिये होता है और उस सङ्कल्पके अनुसार जो क्रिया होती है वह भी भगवान्के लिये ही होती है। राजाके चित्तमें विष्णु और शिवके प्रति कोई भेदभाव नहीं था। वे कभी जगलमें घूम-घूमकर भगवान् रामकी लीलाओंका अनुसन्धान करते। एक बार उनके मनमें आया कि एक महान् यज्ञ करके भगवान्की प्रसन्नता प्राप्त की जाय। बड़ी तैयारीके साथ यज्ञकी समाप्तिपर अवभृथ स्नान करनेके लिये राजा धनुष्कोटि तीर्थमें गये। रामेश्वर तीर्थसे बारह तेरह मीलकी दूरीपर समुद्रमें धनुष्कोटि तीर्थ है। वहाँका समुद्र धनुषाकार है। कहते हैं कि लङ्कापर विजय प्राप्त करके जब भगवान् राम लौटकर आ रहे थे तब उन्होंने

यहाँ धनुषका दान किया था अथवा धनुषकी प्रत्यञ्चा उतार दी थी। उस तीर्थमें स्नान करके राजको बड़ा आनन्द हुआ। भगवान्‌की स्मृतिके साथ जो भी काम किया जाता है, वह आनन्ददायक होता है।

राजा पुण्यनिधि जब स्नान, दान, नित्यकर्म और भगवान्‌की पूजा करके वहाँसे लौटने लगे तब उन्हें रास्तेमें एक बड़ी सुन्दर कन्या मिली। वह कन्या क्या थी सौन्दर्यकी प्रतिमा थी। उसकी आँखोंमें पवित्रता थी और उसका सम्पूर्ण शरीर एक अद्भुत कोमलतासे भर रहा था मानो भगवान्‌की प्रसन्नता ही मूर्तिमान होकर आयी हो। वास्तवमें वह भगवान्‌की प्रसन्नता ही थी। न जाननेपर भी राजाका चित्त उसकी ओर खिंच गया मानो वह उनकी अपनी ही लड़की हो। उन्होंने वात्सल्य-स्नेहसे भरकर पूछा—'बेटी! तुम कौन हो, किसकी कन्या हो, यहाँ किसलिये आयी हो?' कन्याने कहा-'मेरे माँ-बाप नहीं हैं, भाई-बन्धु भी नहीं हैं, मै अनाथ हूँ। मैं आपकी पुत्री बननेके लिये आयी हूँ। मै आपके महलमें रहूँगी; आपकी देखा करूँगी; लेकिन एक शर्त है, यदि कोई मुझे बलपूर्वक स्पर्श करेगा अथवा मेरा हाथ पकड़ लेगा तो आपको उसे दण्ड देना पड़ेगा।

भक्त तो यों ही परम दयालु होते हैं अनाथकी सेवा करनेके लिये उत्सुक रहते हैं, क्योंकि जो किसीका नहीं है, वह भगवान्का है। जो उसकी सेवा करता है, वह भगवान्के अपने जनकी सेवा करता है। राजा इस अनाथ लड़कीको कैसे छोड़ सकते थे। उनकी दृष्टिमें तो यह एक अनाथ लड़की ही नहीं थी, अस्पष्टरूपमें उनके हृदयके किसी कोनेमें यह बात अवश्य थी कि इसका मेरे इष्टदेवसे सम्बन्ध है। हो-न हो यह उन्हींकी कोई लीला है। राजाने कहा—'बेटी तुम जो कह रही हो, वह सब मैं करूँगा। मेरे घर कोई लड़की नहीं है एक लड़का है तुम अन्तःपुरमें मेरी धर्मपत्नीके साथ पुत्रीके रूपमें निवास करो। जब तुम्हारी अवस्था विवाहके योग्य होगी, तब तुम जैसा चाहोगी वैसा कर दूँगा।' कन्याने राजाकी बात स्वीकार की और उनके साथ समयपर राजधानीमें गयी। राजा पुण्यनिधिकी धर्मपत्नी विन्ध्यावली अपने पतिके समान ही शुद्ध हृदयकी थीं। अपने पतिको ही भगवान्की मूर्ति समझकर उनकी पूजा करती थी। उनकी प्रसन्नताके लिये ही प्रत्येक चेष्टा करती थी। उसका मन राजाका मन था, उसका जीवन राजाका जीवन था। यह कन्या पाकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। राजाने कहा यह हमलोगोंकी लड़की है इसके साथ परायेका सा व्यवहार कभी नहीं होना चाहिये। विन्ध्यावलीने प्रेमसे इस कन्याका हाथ पकड़ लिया और अपने पुत्रके समान ही इसका पालन—पोषण करने लगी। इस प्रकार कुछ दिन बीते।

भगवान्की लीला बड़ी विचित्र है। वे कब, किस बहाने, जिसपर कृपा करते हैं, यह उनके सिवा और कोई नहीं जानता। राजा पुण्यनिधिपर कृपा करनेके लिये ही तो यह लीला रची गयी थी। अब वह अवसर आ पहुँचा। एक दिन वह कन्या सखियोंके साथ महलके पुष्पोद्यानमें फूल चुन रही थी। एक ही उम्रकी सब

लड़कियाँ थीं हँस खेलकर आपसमें मनोरञ्जन कर रही थीं। उसी समय वहाँ एक ब्राह्मण आया। उसके कधेपर एक घड़ा था, जिसम जल भरा हुआ था। एक हाथसे वह उस घड़को पकड़े हुए था मानो अभी गङ्गास्नान करके लौट रहा हो। उसके शरीरमें भस्म लगा हुआ था और मस्तकपर त्रिपुण्ड्र था। हाथमें रुद्राक्षकी माला और मुखमें भगवान् शङ्करका नाम। इस ब्राह्मणको देखकर वह कन्या स्तब्ध-सी हो गयी वह पहचान गयी कि ब्राह्मणके वेशमें यह कौन है। यह छद्मवेशी ब्राह्मण इसी कन्याको तो ढूँढ़ रहा था। कन्याकी ओर दृष्टि जाते ही ब्राह्मणने पहचान लिया और आकर उस कन्याका हाथ पकड़ लिया। कन्या चिल्ला उठी। उसकी सखियोंने भी साथ दिया। उनकी आवाज सुनते ही कई सैनिकोंके साथ राजा पुण्यनिधि वहाँ आ पहुँचे और पूछा—'बेटी, तुम्हारे चिल्लानेका क्या कारण है? किसने तुम्हारा अपमान किया है?' कन्याकी आँखोंमें आँसू थे, वह खेद और रोषसे कातर हो रही थी, उसने कहा—'पाण्ड्यनाथ, इस ब्राह्मणने बलात् मेरा हाथ पकड़ लिया अब भी वह निडर होकर पेड़के नीचे खड़ा है।' राजा पुण्यनिधिको अपनी प्रतिज्ञा याद आ गयी। वे सोचने लगे कि मैंने इस कन्याको वचन दिया है कि यदि कोई तुम्हारी इच्छाके विपरीत तुम्हारा हाथ पकड़ लेगा तो उसे मैं दण्ड दूँगा। इस कन्याको मैंने अपनी पुत्री माना है, मुझे अवश्य ही ब्राह्मणको दण्ड देना चाहिये। उनके चित्तमें इस बातकी कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि मेरे भगवान् इस रूपमें मुझपर कृपा करने आये होंगे। उन्होंने सैनिकोंको आज्ञा दी और वे ब्राह्मण पकड़ लिये गये। हाथोंमें हथकड़ी और पैरोंमें बेड़ी डालकर उन्हें रामनाथके मन्दिरमें डाल दिया गया। कन्या प्रसन्न होकर अन्तःपुरमें गयी और राजा अपनी बैठकमें गये।

रात हुई। राजाने स्वप्नमें देखा—जिस ब्राह्मणको कैद किया गया है वह तो ब्राह्मण नहीं है। साक्षात् भगवान् हैं। वर्षाकालीन मेघके समान श्यामल छवि, चारों करकमलोंमें शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म, शरीरपर पीताम्बर एवं वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि और वनमाला धारण किये हुए हैं, मन्द मन्द मुस्कराते हुए मुखमेंसे दाँतोंकी किरणें निकलकर दिशाओंको उज्ज्वल कर रही हैं। मकराकृति कुण्डलोंकी छटा निराली ही है। गरुड़के ऊपर शेषशय्यापर विराजमान हैं। साथ ही राजाकी वह कन्या लक्ष्मीके रूपमें खिले हुए कमलपर बैठी है। काले-काले घुँघराले बाल हैं। हाथमें कमल है, बड़े-बड़े दिग्गज स्वर्ण कलशोंमें अमृत भरकर अभिषेक कर रहे हैं। अमूल्य रत्न और मणियोंकी माला पहने हुए हैं। विष्वक्सेन आदि पार्षद, नारदादि मुनिगण उनकी सेवा कर रहे हैं। महाविष्णुके रूपमें उस ब्राह्मणको और महालक्ष्मीके रूपमें अपनी पुत्रीको देखकर राजा पुण्यनिधि चकित—स्तम्भित हो गये। स्वप्न छूटते ही वे अपनी कन्याके पास गये। परन्तु यह क्या? कन्या कन्याके रूपमें नहीं है। स्वप्नमें जो रूप देखा था वही रूप सामने है। महालक्ष्मीको साष्टाङ्ग प्रणाम करके वे उनके साथ ही रामनाथ मन्दिरमें गये। वहाँ ब्राह्मणको भी उसी रूपमें देखा, जिस रूपमें स्वप्नके समय देखा था। अपने अपराधका स्मरण करके वे मूर्च्छित से हो गये। त्रिलोकीके नाथको मैंने कैदमें डाल दिया; जिसकी पूजा करनी चाहिये, उसीको बेड़ीसे जकड़ दिया। धिक्कार है, मुझे सौ-सौ बार धिक्कार है। बड़े बड़े योगी लोग जिन्हें अपने हृदयके सिंहासनपर विराजमान करके अपना सर्वस्व समर्पित कर देते हैं अपने-आपको जिनका समझकर कृतार्थ हो जाते हैं, उन्हींके हाथोंमें मैंने हथकड़ी डाल दी। मुझसे बड़ा अपराधी भला, और कौन हो सकता है? राजा पुण्यनिधिका हृदय फटने लगा, शरीर शिथिल हो गया, उनकी मृत्युमें अब

और इसम रहनेवाले सब जीव आपके नन्हे-नन्हे शिशु हैं। आप सबके एक मात पिता हैं। हे मधुसूदन ! शिशुओंका अपराध गुरुजन क्षमा करते ही आये हैं। प्रभो! जिन दैत्योंने अपराध किया था उनको तो आपने अपने स्वरूपका दान किया। भगवन्! आप मेरे इस अपराधको भी क्षमा करें। हे नाथ! कृष्णावतारमें [illegible] को मार डालनेकी इच्छासे आयी थी। उसे आपने [illegible]मलमें स्थान दिया। हे कृपानिधे! हे लक्ष्मीकान्त! [illegible] कृपा-कोमल दृष्टि मेरे ऊपर भी डालें।'

आये क्षणका भी विलम्ब नहीं था, इतनेमें ही उन्हें भगवान्‌की कृपाका स्मरण हो आया। ऐसी अद्भुत लीला! भला उन्हें कौन बाँध सकता है। यशोदाने बाँधा था प्रेमसे और मैंने बाँधा शक्तिके घमण्डसे, अपने रोषसे, पर मुझसे भी बँध गये प्रभो! यह तुम्हारी कृपा-परवशता नहीं तो और क्या है?

राजा पुण्यनिधिने प्रेममुग्ध हृदयसे, गद्‌गद कण्ठसे आँसूभरी आँखोंसे, सिर झुकाकर रोमाञ्चित शरीरसे हाथ जोड़कर स्तुति की 'प्रभो! मैं आपके चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ। आप मुझपर कृपा करें, प्रसन्न हों मैंने अनजानमें यह अपराध किया है, परन्तु अपराध चाहे जैसे किया गया हो, है अपराध ही। हे कमलनयन! हे कमलाकान्त! आपने रामावतार लेकर रावणका नाश किया, नृसिंहावतार ग्रहण करके प्रह्लादको बचाया। आप सम्पूर्ण जगत्‌में व्याप्त रहनेपर भी भक्तोंके लिये समय-समयपर प्रकट हुआ करते हैं। आपकी मूर्ति कृपामयी है। आप यदि अपनेको प्रकट नहीं करें तो संसारी लोग भला अपनेको कैसे पहचान सकते हैं। हे दयामूर्ते! मैंने आपको हथकड़ी-बेड़ीसे जकड़कर महान् अन्याय और अपराध किया है। यदि आप मुझपर कृपा नहीं करेंगे तो मेरे निस्तारका कोई साधन नहीं है। मैं आपके चरणोंमें बार बार नमस्कार करता हूँ।'

राजा पुण्यनिधिने महालक्ष्मीकी ओर देखकर कहा—'हे देवि! हे जगद्धात्री! मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। आपका निवास भगवान्‌का वक्षःस्थल है। मैंने साधारण कन्या समझकर आपको कष्ट दिया है। आपकी महिमाका भला, कौन वर्णन कर सकता है! सिद्धि, सन्ध्या, प्रभा, श्रद्धा, मेधा, आत्मविद्या आदि आप ही के नाम हैं उन रूपोंमें आप ही प्रकट हो रही हैं। हे ब्रह्मस्वरूपिणी! अपनी कृपादृष्टिसे मुझे जीवनदान दो।' इस प्रकार स्तुति करके राजाने भगवान्‌से प्रार्थना की—'हे प्रभो! मैंने अनजानमें जो अपराध किया है, उसे आप क्षमा कर दीजिये। यह सम्पूर्ण संसार

और इसमें रहनेवाले सब जीव आपके नन्हे नन्हे शिशु हैं। आप सबके एक मात्र पिता हैं। हे मधुसूदन! शिशुओंका अपराध गुरुजन क्षमा करते ही आये हैं। प्रभो! जिन दैत्योंने अपराध किया था उनको तो आपने अपने स्वरूपका दान किया। भगवन्! आप मेरे इस अपराधको भी क्षमा करें। हे नाथ! कृष्णावतारमें पूतना आपको मार डालनेकी इच्छासे आयी थी। उसे आपने अपने चरणकमलोंमें स्थान दिया। हे कृपानिधे! हे लक्ष्मीकान्त! आप अपनी कृपा-कोमल दृष्टि मेरे ऊपर भी डालें।' १.

पुण्यनिधिकी प्रार्थना सुनकर भगवान्‌ने कहा—'हे राजन्! मुझे कैद करनेके कारण भयभीत होना उचित नहीं है। मैं तो स्वभावसे ही प्रेमियोंका कैदी हूँ, भक्तोंके वशमें हूँ। तुमने मेरी प्रसन्नताके लिये यज्ञ किया था। जो मेरी प्रसन्नताके लिये कर्म करते हैं, वे मेरे भक्त हैं। तुम्हारे यज्ञसे मैं तुम्हारे अधीन हो गया हूँ। इसीसे चाहे तुम हथकड़ी बेड़ी पहनाओ या मत पहनाओ, मैं तुम्हारे प्रेमकी बेड़ीमें बँधा हुआ हूँ। मैं अपने भक्तोंके अपराधको अपराध ही नहीं गिनता। इसलिये डरनेकी कोई बात नहीं है। ये महालक्ष्मी मेरी अर्धाङ्गिनी शक्ति हैं। तुम्हारी भक्तिकी परीक्षाके लिये ही मेरी सम्मतिसे यह तुम्हारे पास आयी थी। तुमने इनकी रक्षा करके, अनाथ बालिकाके रूपमें होनेपर भी, इन्हें अपने घरमें रखकर और सेवा करके मुझे सन्तुष्ट किया है। ये मुझसे अभिन्न हैं, जगत्‌की आदिजननी हैं, इनका सेवक मेरा सेवक है। इनकी पूजा करके तुमने मेरी पूजा की है। तुमने अपराध नहीं किया है, मुझे प्रसन्न किया है। इनके साथ तुमने जो प्रतिज्ञा की थी, उसकी रक्षाके लिये मुझे कैदमें डालना किसी प्रकार अनुचित नहीं है। तुमने इनकी रक्षा की है, इसलिये मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। अपनी प्राणप्रियाके लिये अपने प्यारे भक्तके हाथसे बँध जाना मेरे लिये कितना प्रियकर है,

इसे मैं ही जानता हूँ। ये लक्ष्मी तुम्हारी पुत्री हैं, ऐसा ही समझो। यह सत्य है, इसमें सन्देह नहीं।'

महालक्ष्मीने कहा— 'राजन्! तुमने बहुत दिनोंतक मेरी रक्षा की है, इसलिये मैं तुमपर बहुत ही प्रसन्न हूँ। भगवान् और मैंने तुम्हारी भक्तिको शुद्ध करनेके लिये प्रेम-कलहका बहाना बनाया था और इस प्रकार हम दोनोंही तुम्हारे सामने प्रकट हुए। तुमने कोई अपराध नहीं किया। हम तुमपर प्रसन्न हैं। हमारी कृपासे तुम सर्वदा सुखी रहोगे। सारे भूमण्डलका ऐश्वर्य तुम्हें प्राप्त हो। जबतक जीवित रहो, हमारे चरणोंमें तुम्हारी अविचल भक्ति बनी रहे। तुम्हारी बुद्धि कभी पापमें न जाय, सदा धर्ममें ही लगी रहे। तुम्हारा हृदय निरन्तर भक्ति-रसमें डूबा रहे। इस जीवनके अन्तमें तुम हमारा सायुज्य प्राप्त करो।' इतना कहकर महालक्ष्मी भगवान्के वक्षःस्थलमें समा गयीं। भगवान्ने कहा—'राजन्! यह जो तुमने मुझे बाँधा है, यह बड़ा मधुर बन्धन है। मैं नहीं चाहता कि इससे छूट जाऊँ और इसकी स्मृति यहाँ लुप्त हो जाय। इसलिये अब मैं यहाँ इसी रूपमें निवास करूँगा और मेरा नाम 'सेतुमाधव' होगा।' इतना कहकर भगवान् चुप हो गये।

राजा पुण्यनिधिने भगवान्की इस अर्चा-मूर्तिकी पूजा की और रामनाथ लिङ्गकी सेवा करके अपने घर गये। जीवनपर्यन्त वे अपनी पत्नीके साथ भगवान्का स्मरण-चिन्तन करते रहे। अन्तमें दोनों भगवान्की सायुज्य-मुक्ति प्राप्त करके भगवान्से एक हो गये। इस प्रकार अद्भुत प्रेममयी लीला करके भगवान्ने अपने भक्तको अपनाया और भक्तके द्वारा जो बन्धन प्राप्त हुआ था, उसको सर्वदाके लिये स्वीकार करके अपनी कृपा और प्रेमकी परवशताको स्पष्टरूपसे प्रकट कर दिया।

धन्य हैं ऐसे परम दयालु भगवान् और उनके परमप्रिय कृपापात्र भक्त!

मॉकी गोदमें

श्रीवृन्दावनधाममें बड़ा ही सुन्दर स्थान है वह। दूर तक घनी झाड़ियाँ हैं और हरी भरी लताओंसे आलिङ्गित करीलोंके कुञ्ज, पुष्पोंपर रक्तिमा, पीतिमा, और कहीं-कहीं श्वेतिमा भी है। सौरभ इतना है कि भौरोंका उन्मत्त सङ्गीत कभी बन्द ही नहीं होता। उसपर भी कोयलोंकी कुहू और मयूरोंका मधुर नृत्य। बड़ी कोमल स्निग्ध और दिव्य भूमि है। यमुनाकी मन्द-मन्द बहती हुई धारा भी वहाँसे दूर नहीं है। मैं कभी-कभी वहाँ स्नान करने जाया करता था वहाँसे थोड़ी ही दूरपर श्रीगोपालजीका एक मन्दिर भी है जहाँ मैंने एकदिन छाछ मॉगकर पी थी। पुजारीजी प्राय लोगोंको छाछ पिलाया करते हैं।

एक दिन प्रात काल ही पहुँच गया मैं उस पावन प्रान्तमें। मुझे कुछ ठंड मालूम हो रही थी, स्नानके लिये धूपकी प्रतीक्षा थी, मैं एक वृक्षके नीचे बैठ गया। एक दूध-सी सफेद गाय वहाँ आयी। उसके साथ फुदकता हुआ एक बछड़ा भी था। वह थोड़ी दूर दौड़ कर आता और फिर अपनी मॉका दूध पीने लगता। कभी-कभी उसके थनमें हिव्वा भी मारता और कभी कभी उसकी ललरियों के साथ सटकर खड़ा हो जाता। मातृस्पर्शका रस लेता। सूर्योदय हो रहा था। उन दोनोंका रोआ रोआ प्रसन्नतासे चमक रहा था। हाँ, जब कभी वह दूर भाग जाता तब वह हुकार भरती और वह पलक मारते उसके पास आ जाता। म कुछ देर तक देखता रहा। मुझे अपनी बचपनकी स्मृति हो आयी जब मैं अपनी मॉंकी गोद में था।

सकता है । मुझे एक एक घटनाका स्मरण होने लगा । मैं भी तो अपने नन्हे-से शिशुसे प्रेम करता था । वही मेरी आँखोंकी ज्योति था, मेरे हृदयका धन था, मेरे जीवनका सर्वस्व था । कितना मोहक था, कितना मधुर था! कितना सौन्दर्य था उसके अङ्ग अङ्गमें! मेरे हृदयमें अब भी रसकी धारा बह रही है । उसकी मादकता खेल रही है आँखोंके सामने । प्राण छटपटा रहे हैं उसको पानेके लिये । वह मेरा अपना था । तब क्या मैं अपनी माँके लिये वैसा ही हूँ? अवश्य वैसा ही हूँ । म ही क्यों? सभी अपनी माँके लिये वैसे ही हैं । जो सब माताओंकी माँ भी तो कोई होगी । वह भी सबके लिये वैसी ही होगी । जो सब माताओंकी माँ है, जिसकी स्नेहधाराकी एक एक बूँद समस्त माताओंके हृदयमें प्रकट हुई है—कितनी दयामयी होगी वह माँ! मैंने तो कभी उसका स्मरण नहीं किया, उसकी सेवा नहीं की, उसको पुकारा भी नहीं। तब क्या वह भी हमें अपनी गोदमें ही रखती होगी? जैसे मेरी यह माँ मुझसे प्यार करती है वैसे ही वह भी करती होगी? तब तो मैं अपराधी हूँ । मैं पुकार उठा, 'माँ, माँ, तुम कहाँ हो? मैं तुम्हें देखूँगा। मेरे न पुकारनेसे क्या तुम रूठ गयी हो! मेरी सच्ची माँ, आओ, मुझे अपनी गोदमें उठा लो । मैं उत्सुकता मिश्रित व्याकुलताके आवेशमें था । मेरी आँखोंसे आँसू गिरने लगे । आवाज आयी, 'बेटा, तुम गोदमें ही तो हो । आज बार-बार स्वप्न क्यों देखने लगते हो? आज ही तुम बोले, केवल दो बार बोले, सो भी स्वप्नमें डरते हुए ही । मेरी [illegible] रहकर डरना क्यों!' मेरा आवेश टूट गया था, परन्तु [illegible] अविच्छिन्न बह रही थी । मैं अपनी सच्ची माँको पाने [illegible] हो रहा था ।

मेरी व्याकुलता बढ़ती ही ग[illegible] मन्द थी, परन्तु मेरी आत्मा बोल रही थी । [illegible] प्यारी माँ,'

भूतशुद्धि

भूतशुद्धिका अर्थ है अव्यय ब्रह्मके संयोगसे शरीरके रूपमें परिणत पञ्चभूतोंका शोधन। भावनाशास्त्र और मन्त्रशक्तिके संयोगसे क्रियाविशेषद्वारा शरीरस्थ मलिन भूतोंको भस्म करके, नवीन दिव्य भूतोंका निर्माण करने और स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीरके शोधनमें ही इस क्रियाका तात्पर्य है। चित्तशुद्धिके लिये जितनी क्रियाओंका निर्देश किया गया है, उनमें इस क्रियाका स्थान सर्वोपरि है। वसिष्ठसंहितामें तो यहाँतक कहा गया है कि इसके बिना जप पूजादि कृत्य निरर्थक हो जाते हैं। वास्तवमें ऐसी ही बात है। जबतक शरीर अशुद्ध रहेगा, मनमें पापभावनाएँ रहेंगी, तबतक एकाग्रभावसे किसीकी पूजा, ध्यान आदि कैसे किये जा सकते हैं? भूतशुद्धिके संक्षेप और विस्तार-भेदसे कई प्रकार हैं। उनमेंसे कुछ थोड़े-से यहाँ लिखे जाते हैं।

स्नान, सन्ध्या आदि नित्य कृत्योंसे निवृत्त होकर ध्यानके स्थानपर आवे और वहाँ आसनपर बैठकर आचमनादि आवश्यक कृत्य करके अपने चारों ओर जल छिड़के और अग्निबीज 'रं' का जप करे। साथ ही ऐसी भावना करे कि 'मेरे चारों ओर अग्निकी चहारदीवारी है, मेरा आसन दृढ़ एवं शरीर स्थिर है, परमात्माकी कृपासे कोई विघ्न-बाधा मुझे अपने संकल्पसे विमुख कर सकेगी।' इसके पश्चात् भूतशुद्धिका संकल्प करे—

ओम् अद्येत्यादि देवपूजाद्यधिकारसिद्धये भूतशुद्ध्याद्यहं करिष्ये।

तत्पश्चात् कुण्डलिनीका चिन्तन करे । कुण्डलिनी सहस्र-सहस्र विद्युत्की कान्तिके समान देदीप्यमान है और कमलनालगत तन्तुके समान सूक्ष्म एवं सर्पाकार है । वह मूलाधारचक्रमें सोती रहती है। अब वह जग गयी है और क्रमशः स्वाधिष्ठान और मणिपूरकचक्रका भेदन करके सुषुम्णामार्गसे हृदयस्थित अनाहतचक्रमें आ गयी है । हृदयमें दीपशिखाके समान आकारवाला जीव निवास करता है। उसे उसने अपने मुखमें ले लिया और कण्ठस्थ विशुद्धचक्र तथा भ्रूमध्यस्थ आज्ञाचक्रका भेदन करके पूर्वोक्त मार्गसे ही सहस्रारमें पहुँच गयी । सहस्रारमें परमात्माका निवास है । 'हंस' मन्त्रके द्वारा वह कुण्डलिनी जीवात्माके साथ ही परमात्माके साथ ही परमात्मामें विलीन हो गयी ।

इसके बाद ऐसी भावना करनी चाहिये कि शरीरमें पैरके तलवेसे लेकर जानुपर्यन्त पृथ्वीमण्डल है। वह चौकोन है और उसका रंग पीला है । उसीमें पादेन्द्रिय, चलनेकी क्रिया, गन्तव्य, स्थान गन्ध, घ्राण, पृथिवि, ब्रह्मा, निवृत्तिकला एवं समान वायु निवास करते हैं । इनका स्मरण करके—'ॐ ह्रां ब्रह्मणे पृथिव्यधिपतये निवृत्तिकलात्मने हुं फट् स्वाहा । '—इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए कुण्डलिनीके द्वारा उन्हें जलस्थानमें विलीन कर देना चाहिये । जानुसे नाभिपर्यन्त श्वेत वर्णका अर्द्धचन्द्राकार जलमण्डल है । उसीमें हस्त इन्द्रिय, दानक्रिया, दातव्य, रस, रसनेन्द्रिय, जल, विष्णु, प्रतिष्ठाकला और उदान वायु निवास करते हैं । उनका स्मरण करके—'ॐ ह्रीं विष्णवे जलाधिपतये प्रतिष्ठाकलात्मने हुं फट् स्वाहा । '—इस मन्त्रका उच्चारण करके कुण्डलिनीके द्वारा उन सबको अग्निस्थानमें विलीन कर देना चाहिये । नाभिसे लेकर हृदय पर्यन्त रक्तवर्णका त्रिकोण अग्निमण्डल है । उसमें पायुइन्द्रिय, विसर्ग क्रिया, विसर्जनीय, रूप, चक्षु, तेज, रुद्र, विद्याकला एवं

व्यानवायु निवास करते हैं। उनका स्मरण करके —'ॐ हूं रुद्राय तेजोधिपतये विद्याकलात्मने हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्रका उच्चारण करके कुण्डलिनीके द्वारा वायुमण्डलमें विलीन कर देना चाहिये। हृदयसे भ्रूपर्यन्त काले रंगका गोलाकार छः बिन्दुओंसे चिह्नित वायुमण्डल है। उसमें उपस्थ इन्द्रिय, आनन्द-क्रिया, उस इन्द्रियका विषय, स्पर्शका विषय और वायु, ईशान, शान्तिकला एवं अपानवायुका निवास है। उनका स्मरण करके —'ॐ हैं ईशानाय वाय्वधिपतये शान्तिकलात्मने स्वाहा' इस मन्त्रका उच्चारण करके आकाशमण्डलमें उनको विलीन कर देना चाहिये। भ्रूमध्यसे ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त स्वच्छ आकाशमण्डल है। उसमें वाग् इन्द्रिय, वचन क्रिया, वक्तव्य, शब्द, श्रोत्र आकाश, सदाशिव, शान्त्यतीतकला और प्राणवायुका निवास है। उनका स्मरण करके 'ॐ ह्रौं सदाशिवाय आकाशाधिपतये शान्त्यतीतकलात्मने हुं फट् स्वाहा'—इस मन्त्रका उच्चारण करके उन सबको कुण्डलिनीके द्वारा अहङ्कारमें विलीन कर दे। अहङ्कारको महत्तत्त्वमें और महत्तत्त्वको शब्दब्रह्मरूपा हृदयशब्दके सूक्ष्मतम अर्थ प्रकृतिमें विलीन कर दे। और प्रकृतिको नित्यशुद्धबुद्धस्वभाव, स्वयंप्रकाश, सत्यज्ञान, अनन्त आनन्दस्वरूप, परम कारण, ज्योति स्वरूप परब्रह्म परमात्मामें विलीन कर दे।

इसके पश्चात् पापपुरुषका शोषण करनेके लिये विनियोग करे—'ॐ शरीरस्यान्तर्यामी ऋषि सत्य देवता प्रकृतिपुरुषच्छन्द पापपुरुष शोषणे विनियोग।' पहले पापपुरुषका चिन्तन इस प्रकार करना चाहिये—मेरा वाम कुक्षिमें अनादिकालीन पाप मूर्तिमान् पुरुषके रूपमें निवास करता है। उसका शरीर अँगूठेके बराबर है। वह कान्तिहीन है। पाँच महापापोंसे ही उसके शरीरका निर्माण हुआ है। ब्रह्महत्या उसका सिर है, स्वर्णस्तेय (सोनेकी चोरी) दोनों हाथ हैं, सुरापान हृदय है, गुरुतल्पगमन कटि है और इन पापोंसे

युक्त पुन्योंका सहारा दोनों पैर हैं, अङ्ग प्रत्यङ्ग पापसे ही बने हैं— रोम रोम उपपातक है, दाढ़ी और आँखें लाल हैं, उसके हाथमें अविवेकका खड्ग और अहंताकी ढाल है, असत्यके घोड़े पर सवार है, चेहरेसे पिशुनता प्रकट हो रही है, क्रोधके दाँत हैं, कामकी कवच है। गन्देके समान रेंकता है। ऐसा मूढ पापपुरुष व्याधिग्रस्त होनेके कारण मरणासन्न हो रहा है। इस प्रकार पापपुरुषका चिन्तन करके उसके शोषणका विनियोग करना चाहिये। ॐ 'य'—यह वायु-बीज है। इसके किष्किन्ध ऋषि हैं, वायु देवता हैं और जगती छन्द है। पापपुरुषके शोषणमें इनका विनियोग है। नाभिके मूलमें षड्बिन्दुचिह्नित एक मण्डल है। उसपर धूम्रवर्णका वायु बीज 'य' रहता है, उसकी ध्वजाएँ चञ्चल होती रहती हैं और उससे 'घू घू' शब्द निकलता रहता है। सबको सुखा डालना उसका काम है। इस प्रकार 'य' बीजका चिन्तन करके और पूरकके द्वारा सोलह बार उसकी आवृत्ति करके उस बीजसे उठे हुए वायुके द्वारा पापपुरुषको सशरीर सूखा हुआ देखना चाहिये। इसके पश्चात् अग्नि बीज 'र' का चिन्तन करना चाहिये। इसके कश्यप ऋषि, अग्नि देवता और त्रिष्टुप् छन्द हैं। हृदयमें रक्तवर्णका अग्निमण्डल है। उसके देवता रुद्र हैं, विद्यावलाका उसीमें निवास है। उसीमें बीज है 'र'। ऐसा चिन्तन करके कुम्भकके द्वारा ६४ या ५० बार 'र' की आवृत्ति करके पापपुरुषके सूखे हुए शरीरको भस्म कर दे। इसके पश्चात् पूर्वोक्त प्रकारसे वायु बीज 'य' की ३२ बार आवृत्ति करके रेचक प्राणायामके द्वारा पापपुरुषकी भस्म उड़ा दे। इसके पश्चात् वरुण बीज 'व' का चिन्तन करे। इसके हिरण्यगर्भ ऋषि हैं, हंस देवता हैं और त्रिष्टुप् छन्द है। सिरमें अर्धचन्द्राकार दो श्वेत पद्मवाले वरुणदैवत वरुण बीज 'व' का चिन्तन करना चाहिये और उससे प्रवाहित होनेवाले अमृतसे पिण्डीभूत भस्मको आप्लावित अनुभव करना चाहिये। इसके पश्चात् पृथिवी बीज 'ल'

का चिंतन करे। इसके ऋषि ब्रह्मा हैं, देवता इन्द्र हैं और छन्द गायत्री। आधारमण्डलमें वज्रलाञ्छित पृथिवी है—चौकोनी, कड़ी, पीली और इन्द्रदैवत। उसपर 'ल' बीजका चिंतन करना चाहिये। उसके प्रभावसे शरीरको दृढ एवं कठिन चिन्तन करके आकाश बीज 'ह' का चिंतन करना चाहिये। आकाशमण्डल वृत्ताकार, स्वच्छ, शान्त्यतीतकलासे युक्त, आकाशदैवत एवं 'ह' रूप है। इसकी भावनासे शरीर सावकाश एवं व्यूहित हो जाता है। इसको अपना दिव्य शरीर भावित करके पूर्वोक्त प्रक्रियासे परमात्मामें विलीन तत्त्वोंको पुनः अपने अपने स्थानपर स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार जब सूक्ष्मशरीर और स्थूलशरीरकी दिव्यता सम्पन्न हो जाय, तब 'ॐ सोऽहम्' इस मन्त्रसे परमात्माकी संनिधिसे जीवको हृदय-कमलमें ले आवे और ऐसा अनुभव करे कि मैं परमात्माकी सत्ता, शक्ति, कृपा, सान्निध्य और सायुज्यका अनुभव करके परम पवित्र और दिव्य हो गया हूँ। मेरा शरीर पापरहित, नूतन, निर्मल और इष्ट देवताकी आराधनाके योग्य हो गया है। इसके पश्चात् आगेका कार्यक्रम प्रारम्भ करे।

इसके अतिरिक्त एक संक्षिप्त भूतशुद्धि है, उसका प्रकार निम्नलिखित है—

अथवान्यप्रकारेण भूतशुद्धिर्विधीयते ।
धर्मकन्दसमुद्भूतं ज्ञाननालं सुशोभितम् ॥
ऐश्वर्याष्टदलोपेतं परवैराग्यकर्णिकम् ।
स्वीयहृत्कमले ध्यायेत्प्रणवेन प्रकाशितम् ॥
कृत्वा तत्कर्णिकासंस्थं प्रदीपकलिकानिभम् ।
जीवात्मानं हृदि ध्यात्वा मूले सञ्चिन्त्य कुण्डलीम् ॥
सुषुम्णावर्त्मनात्मानं परमात्मनि योजयेत् ।

इस प्रकारसे भूतशुद्धि की जाती है। 'हृदयमें एक कमल है, उसका मूल धर्म है और नाल ज्ञान है। आठ प्रकारके ऐश्वर्य उसके दल हैं और परवैराग्य ही कर्णिका है। यह प्रणवके द्वारा उद्भासित हो रहा है। उस कर्णिकापर दीपशिखाके समान ज्योति स्वरूप जीवात्मा स्थित है। ऐसा ध्यान करके मूलाधारमें कुण्डलिनीका चिन्तन करे। वहाँसे आकर कुण्डलिनी जीवात्माको अपने मुखमें ले लेती है। और सुषुम्ना मार्गसे आकर परमात्मामें मिल जाती है।' कुछ समयतक इसी अवस्थाका अनुभव करके पुनः जीवात्माको हृदयमें ले आना चाहिये और आगेका विधान करना चाहिये। यह संक्षिप्त भूतशुद्धि है।

भूतशुद्धिकी ये दोनों प्रणालियाँ साधन सम्प्रदायमें प्रचलित हैं और मैं ऐसे कई साधकोंको जानता हूँ, जिन्हें इनसे बहुत लाभ हुआ है। एक मित्रने मुझसे कहा था कि भूतशुद्धि करते-करते मेरा चित्त शुद्ध होकर परमात्मामें इस प्रकार लीन हो जाता है और इतने आनन्दका अनुभव करता है कि मैं घटों उसी स्थितिमें बैठा रहता हूँ, और दूसरी क्रियाका स्मरण ही नहीं होता। एक वयोवृद्ध बाबू साहबने बतलाया था कि इस क्रियाके द्वारा मेरा शरीर नीरोग और अन्तःकरण शुद्ध हो गया है। जिस दिन मेरी भूतशुद्धि ठीक ठीक सम्पन्न हुई थी उसके बाद मेरे चित्तमें कभी विकार नहीं आया। उन्हें स्पष्ट अपने शरीरकी दिव्यताका अनुभव होता है। एक स्वामीजीकी तो एक मात्र यही साधना है। उनकी दिव्यताका अनुभव तो उनके दर्शन मात्रसे ही होता है। शरीरके अणु अणु बदल जाते हैं, इस क्रिया की प्रशंसा करते हुए उन्होंने स्वयं कहा था।

इन दो प्रणालियोंके अतिरिक्त एक तीसरी प्रणाली भी है जो एक महात्मासे प्राप्त हुई थी। मैं नहीं जानता, किस ग्रन्थमें उसका

उद्वेग है, परन्तु उसमे बड़ा लाभ होता है। यह सत्य है कि उपर्युक्त प्रणालियोंमें राजयोगकी अनुभूति, लययोगकी भावना, मन्त्रयोगकी शक्ति और हठयोगकी क्रियाएँ विद्यमान हैं। परन्तु इसमें केवल मन्त्रशक्ति ही है। भगवान्‌का सुन्दर पुट है। राजयोग में उसकी परिणति है। परन्तु हठयोग बिलकुल नहीं है। इसके चार मन्त्र निम्न लिखित हैं—

१ ॐ भूतशृङ्गाटात् शिरःसुषुम्णापथेन जीवशिवं परमशिवपदे योजयामि स्वाहा।

२. ॐ यं लिङ्गशरीरं शोषय शोषय स्वाहा।

३. ॐ रं सङ्कोचशरीरं दह दह स्वाहा।

४. ॐ परमशिव सुषुम्णापथेन मूलशृङ्गाटम् उल्लस उल्लस, ज्वल ज्वल, प्रज्वल प्रज्वल सोऽहं हंस स्वाहा।

मन्त्रोक्त अर्थकी भावना करते हुए उपर्युक्त मन्त्रोंकी आवृत्ति कर लेनी चाहिये। कुछ दिनोंतक लगातार श्रद्धापूर्वक अभ्यास करनेसे बड़े विचित्र विचित्र अनुभव होते हैं और अपनी दिव्यता प्रकट हो जाती है।

इष्टदेव और श्रीगुरुदेवके ध्यानमें जब चित्त तन्मय हो जाता है और उनकी कृपाका अनुभव करके उसीमें उन्मज्जन निमज्जन करने लगता है तब पवित्रता, शक्ति, शान्ति और आनन्दकी शत शत धाराएँ उसके सम्पूर्ण 'स्व' को और यही क्यों निखिल जगत्‌को आप्यायित आप्लावित अथ च अत्यन्त दिव्य बना देती हैं। जो धीर भावसे साधन करते हैं, उनके जीवनमें ये सब बातें प्रत्यक्ष होती हैं। इसलिये विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं।

न्यासका प्रयोग और उसकी महिमा

न्यासका अर्थ है स्थापना। बाहर और भीतरके प्रत्येक अङ्गमे इष्टदेवता और मन्त्रका स्थापन ही न्यास है। इस स्थूल शरीरमे अपवित्रताका ही साम्राज्य है इसलिये इसे देवपूजाका तबतक अधिकार नहीं जबतक यह शुद्ध एवं दिव्य न हो जाय। जबतक उसकी अपवित्रता बनी रहती है तबतक इसके स्पर्श और स्मरणसे ग्लानिका उदय चित्तमें होता रहता है। ग्लानियुक्त चित्त प्रसाद और भावोद्रेकसे शून्य होता है, विक्षेप और अवसादसे आक्रान्त होनेके कारण बार बार प्रमाद, तन्द्रामे अभिभूत हुआ करता है। यही कारण है कि न तो वह एकतार स्मरण ही कर सकता है और न विधि-विधानके साथ किसी कर्मका साङ्गोपाङ्ग अनुष्ठान ही। इस दोषको मिटानेके लिये न्यास सर्वश्रेष्ठ उपाय है। शरीरके प्रत्येक अवयवमे जो क्रियाशक्ति मूर्च्छित है उसको जगानेके लिये न्यास अव्यर्थ महौषधि है।

न्यास कई प्रकारके होते हैं। मातृकान्यास स्वर और वर्णोंका होता है। मन्त्रन्यास पूरे मन्त्रका, मन्त्रके पदोंका, मन्त्रके एक एक अक्षरका और एक साथ ही सब प्रकारका होता है। देवतान्यास शरीरके बाह्य और आभ्यन्तर अङ्गोंमें अपने इष्टदेव अथवा अन्य देवताओंके यथास्थान न्यासको कहते हैं। तत्त्वन्यास वह है जिसमें संसारके कार्य-कारणके रूपमे परिणत और इनसे परे रहने वाले तत्त्वोंका शरीरमें यथास्थान न्यास किया जाता है। यही पीठन्यास भी है। जो हाथोंकी सब अंगुलियोंमें तथा करतल और करपृष्ठमें किया जाता है वह करन्यास है। जो त्रिगत देवताओंके प्रसन्न

षडङ्ग और अन्य देवताओंके प्रसङ्गमें पञ्चाङ्ग होता है उसे अङ्गन्यास कहते हैं। जो किसी भी अङ्गका स्पर्श किये बिना सर्वाङ्गमें मन्त्रन्यास किया जाता है वह व्यापकन्यास कहलाता है। ऋष्यादि-न्यासके छ अंग होते हैं-सिरमें ऋषि, मुखमें छन्द, हृदयमें देवता, गुह्यस्थानमें बीज, पैरोंमें शक्ति और सर्वाङ्गमें कीलक। और भी बहुत से न्यास हैं जिनका वर्णन प्रसगानुसार किया जा सकता है।

न्यास चार प्रकारसे किये जाते हैं। मन से उन-उन स्थानोंमें देवता, मन्त्रवर्ण तत्त्व आदिकी स्थितिकी भावना की जाती है। अन्तर्न्यास केवल मनसे ही होता है। बहिर्न्यास केवल मनसे भी होता है और उन-उन स्थानोंके स्पर्शसे भी। स्पर्श दो प्रकारसे किया जाता है—किसी पुष्पसे अथवा अगुलियोंसे अगुलियोंका प्रयोग दो प्रकारसे होता है—एक तो अगुष्ठ और अनामिकाको मिलाकर सब अङ्गोंका स्पर्श किया जाता है और दूसरा भिन्न-भिन्न अङ्गोंके स्पर्शके लिये भिन्न भिन्न अगुलियोंका प्रयोग किया जाता है। विभिन्न अगुलियोंके द्वारा न्यास करनेका क्रम इस प्रकार है—मध्यमा, अनामिका और तर्जनीसे हृदय, मध्यमा और तर्जनीसे सिर, अगूठेसे शिखा, दसों अगुलियोंसे कवच, तर्जनी, मध्यमा और अनामिकासे नेत्र, तर्जनी, और मध्यमासे करतल करपृष्ठमें न्यास करना चाहिये। यदि देवता त्रिनेत्र हो तो तर्जनी, मध्यमा और अनामिकामें और द्विनेत्र हो तो मध्यमा और तर्जनीसे नेत्रमें न्यास करना चाहिये। यदि देवता त्रिनेत्र हो तो पञ्चाङ्गन्यास नेत्रको छोड़कर होता है। वैष्णवोंके लिये इसका क्रम भिन्न प्रकारका है। ऐसा कहा गया है कि अगूठेको छोड़कर सीधी अगुलियोंसे हृदय और मस्तकमें न्यास करना चाहिये। अगूठेको अन्दर करके मुट्ठी बाँधकर शिखाका स्पर्श करना चाहिये। सब अगुलियोंसे कवच, तर्जनी और मध्यमासे नेत्र, नाराचमुद्रासे दोनों हाथोंको ऊपर

उठाकर अगूठे और तर्जनीके द्वारा मस्तकके चारों ओर करतलध्वनि करनी चाहिये। कहीं-कहीं अगन्यासका मन्त्र नहीं मिलता, ऐसे स्थानमें देवताके नामके पहले अक्षरसे अगन्यास करना चाहिये।

शास्त्रमें यह बात बहुत जोर देकर कही गयी है कि केवल न्यासके द्वारा ही देवत्वकी प्राप्ति और मन्त्रसिद्धि हो जाती है। हमारे भीतर-बाहर, अग प्रत्यगम देवताका निवास है, हमारा अन्तस्तल और बाह्य शरीर दिव्य हो गया है—इस भावनासे ही अदम्य उत्साह, अद्भुत स्फूर्ति और नवीन चेतनाका जागरण अनुभव होने लगता है। जब न्यास सिद्ध हो जाता है तब तो भावनासे एकत्व स्वतःसिद्ध है। न्यासका कवच पहनकर कोई भी आध्यात्मिक अथवा आधिदैविक विघ्न पास नहीं आ सकते जब कि बिना न्यासके जप-ध्यान आदि करनेपर अनेकों प्रकारके विघ्न उपस्थित हुआ करते हैं। प्रत्येक मन्त्रके, प्रत्येक पद्य और प्रत्येक अक्षरके अलग अलग ऋषि, देवता, छन्द बीज, शक्ति और कीलक होते हैं मन्त्रसिद्धिके लिये इनके ज्ञान, प्रसाद और सहायताकी अपेक्षा होती है। जिस ऋषिने भगवान् शङ्करसे मन्त्र प्राप्त करके पहले-पहल उस मन्त्रकी साधना की थी, वह उसका ऋषि है। वह गुरुस्थानीय होनेके कारण मस्तकमें स्थान पाने योग्य है। मन्त्रके स्वर-वर्णोंकी विशिष्ट गति, जिसके द्वारा मन्त्रार्थ और मन्त्रतत्त्व आच्छादित रहते हैं और जिसका उच्चारण मुखके द्वारा होता है, छन्द है और वह मुखमें ही स्थान पानेका अधिकारी है। मन्त्रका देवता जो अपने हृदयका धन है, जीवनका सञ्चालक है, समस्त भावोंका प्रेरक है, हृदयका अधिकारी है, हृदयमें ही उसके न्यासका स्थान है। इस प्रकार जितने भी न्यास हैं, सबका एक विज्ञान है और यदि ये न्यास किये जायँ तो शरीर और अन्तःकरणको दिव्य बनाकर स्वय ही अपनी महिमाका अनुभव करा देते हैं। अभी थोड़े ही दिनोंकी बात है—गङ्गा और सरयूके

सङ्गमके पास ही एक ब्रह्मचारी रहते थे, जिनका साधन ही न्यास था। दिनभर वे न्यास ही करते रहते थे। उनमें बहुत सी सिद्धियाँ प्रकट हुई थीं और उन्हें बहुत बड़ा आध्यात्मिक लाभ हुआ था। यहाँ संक्षेपसे कुछ न्यासोंका विवरण दिया जाता है—

मातृकान्यास

ॐ अस्य मातृकामन्त्रस्य ब्रह्म ऋषिर्गायत्रीच्छन्दो मातृकासरस्वती देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयः क्लीं कीलकं मातृकान्यासे विनियोगः।

—यह विनियोग करके जल छोड़ दे और ऋष्यादिका न्यास करे। सिरमें—ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखमें—ॐ गायत्र्याच्छन्दसे नमः। हृदयमें—ॐ मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः। गुह्यस्थानमें—ॐ हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः। पैरोंमें—ॐ स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः। सर्वाङ्गमें—ॐ क्लीं कीलकाय नमः। इसके पश्चात् करन्यास करे

ॐ अं कं खं गं घं ङं आं अंगुष्ठाभ्यां नमः।

ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा।

ॐ उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां वषट्।

ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां हुम्।

ॐ ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां वौषट्।

ॐ अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः करतल-करपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।

इसके अनन्तर इस प्रकार अङ्गन्यास करे—

ॐ अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः ।
ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा ।
ॐ उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट् ।
ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुम् ।
ॐ ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः अस्त्राय फट् ।

इस अङ्गन्यासके पश्चात् अन्तर्मातृकान्यास करना चाहिये। शरीरमें छः चक्र हैं, उनमें जितने दल होते हैं उतने ही अक्षरोंका न्यास किया जाता है। इसकी प्रक्रिया सम्प्रदायानुसार भिन्न भिन्न है। यहाँ वैष्णवोंकी प्रणाली लिखी जाती है।

पायु इन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियके बीचमें सिवनीके पास मूलाधारचक्र है। इसका रङ्ग सोनेका-सा है और उसमें चार दल हैं। उन चारों दलोंपर प्रणवके साथ इन अक्षरोंका न्यास करना चाहिये—ॐ वं नमः, शं नमः, षं नमः, सं नमः। ज्ञानेन्द्रियके मूलमें विद्युत्के समान स्वाधिष्ठान कमल है, उसके छः दलोंपर प्रणवके साथ इन अक्षरोंका न्यास करना चाहिये—ॐ वं नमः, भं नमः, मं नमः, यं नमः, रं नमः, लं नमः। नाभिके मूलमें नील मेघके समान दशदल मणिपूरकचक्र है, उसमें इन वर्णोंका न्यास करना चाहिये—ॐ डं नमः, ढं नमः, णं नमः, तं नमः, थं नमः, दं नमः, धं नमः, नं नमः, पं नमः, फं नमः। हृदयमें स्थित मूँगेके समान लाल द्वादशदल अनाहतचक्रमें—ॐ कं नमः, खं नमः, गं नमः, घं नमः, ङं नमः, चं नमः, छं नमः, जं नमः, झं नमः, ञं नमः, टं नमः, ठं नमः। कण्ठमें धूम्रवर्ण,

षोडशदल विशुद्धचक्र है, इसमें— ॐ अं नमः आं नमः, इं नमः, ईं नमः, उं नमः, ऊं नमः, ऋं नमः, ॠं नमः, ऌं नमः, ॡं नमः, एं नमः, ऐं नमः, ओं नमः, औं नमः, अं नमः, अः नमः। भ्रूमध्यस्थित चन्द्रवर्ण द्विदल आज्ञाचक्रमें—ॐ हं नमः, क्षं नमः। इसके पश्चात् सहस्रारपर, जो कि स्वर्णके समान कान्तिमान् और स्वर-वर्णोंसे भूषित है, त्रिकोणका ध्यान करना चाहिये। उसके प्रत्येक कोणपर ह, ल, क्ष,-ये तीनों वर्ण लिखे हुए हैं। उसकी तीनों रेखाएँ क्रमशः 'अ' से 'क' से और 'थ' से शुरू हुई हैं। इस त्रिकोणके बीचमें सृष्टि-स्थिति लयात्मक बिन्दुरूप परमात्मा विराजमान है। इस प्रकारके ध्यानको अन्तर्मातृकान्यास कहते हैं।

बहिर्मातृकान्यास

इस न्यासमें पहले मातृकासरस्वतीका ध्यान होता है, वह निम्नलिखित है—

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोः पन्मध्यवक्षःस्थलां,
भास्वन्मौलिनिबद्धचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम्।
मुद्रामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं विद्याञ्च हस्ताम्बुजै
र्बिभ्राणां विशदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये॥

'पचास स्वर-वर्णोंके द्वारा जिनके मुख, बाहु, चरण, कटि और वक्षःस्थल पृथक्-पृथक् दीख रहे हैं, सूर्यके समान चमकीले मुकुटपर चन्द्रखण्ड शोभायमान है, वक्षःस्थल बड़ा और ऊँचा है, कर-कमलोंमें मुद्रा, रुद्राक्षमाला सुधापूर्ण कलश और पुस्तक धारण किये हुए हैं, अङ्ग-अङ्गसे दिव्य ज्योति बिखर रही है, उन त्रिनेत्रा वाग्देवता मातृकासरस्वतीकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।' ऐसा ध्यान करके न्यास करना चाहिये। इस न्यासमें अंगुलियोंका नियम

अनिवार्य है। इसलिये उन उन स्थानोंके साथ ही अंगुलियोंकी संख्या भी लिखी जा रही है। न्यास करते समय उनका ध्यान रखना चाहिये। संख्याका संकेत इस प्रकार है—१-अंगूठा, २—तर्जनी, ३—मध्यमा ४—अनामिका और ५—कनिष्ठा। जहाँ जितनी अंगुलियोंका संयोग करना चाहिये वहाँ उतनी संख्या लिख दी गयी है।

ललाटमें—ॐ अं नमः ३, ४। मुखपर—ॐ आं नमः २, ३, ४। आँखोंमें—ॐ इं नमः, ॐ ईं नमः १, ४। इसी प्रकार पहले ॐ और पीछे नमः जोड़कर प्रत्येक स्थानमें न्यास करना चाहिये। कानोंमें उं, ऊं १। नासिकामें—ऋं ॠं, १, ५। कपोलोंपर लृं लॄं २, ३, ४। ओठमें—एं ३। अधरमें ऐं ३। ऊपरके दाँतोंमें—ॐ ओं ४। नीचेके दाँतोंमें औं ४। ब्रह्मरन्ध्रमें—अं ३। मुखमें—अः ४। दाहिने हाथके मूलमें—कं ३, ४, ५। कोहनीमें—खं ३ ४ ५। मणिबन्धमें गं। अंगुलियोंकी जड़में—घं। अंगुलियोंके अग्रभागमें ङं। इसी प्रकार बायें हाथके मूल, कोहनी, मणिबन्ध, अंगुलीमूल और अंगुल्यग्रमें—चं छं जं झं ञं। दाहिने पैरके मूलमें दोनों सन्धियोंमें, अंगुलियोंके मूलमें और उनके अग्रभागमें—टं ठं डं ढं णं। बायें पैरके उन्हीं पाँच स्थानोंमें—तं थं दं धं नं। दाहिने बगलमें—पं, बायेंमें—फं और पीठमें—बं (यहाँ तक अंगुलियोंकी संख्या कोहनीवाली ही समझनी चाहिये) नाभिमें भं १, ३ ४, ५। पेटमें—मं १ से ५। हृदयमें—यं। दाहिने कंधेपर—रं। गलेके ऊपर—लं। बायें कंधेपर—वं। हृदयसे दाहिने हाथतक—शं। हृदयसे बायें हाथतक—षं। हृदयसे दाहिने पैरतक—सं। हृदयसे बायें पैरतक—हं। हृदयसे पेटतक—ळं। हृदयसे मुखतक—क्षं। हृदयसे अन्ततक हथेलीसे न्यास करना चाहिये।

संहारमातृकान्यास

ब्राह्ममातृकान्यास जहाँ समाप्त होता है, वहींसे संहारमातृकान्यास प्रारम्भ होता है। जैसे हृदयसे लेकर मुखतक—ॐ क्ष नमः। मुखसे पेटतक—ॐ ळ नमः। इस प्रकार उलटे चलकर ललाटतक पहुँच जाना—यह संहारमातृकान्यास है। इसके पूर्व यह ध्यान किया जाता है—

अक्षस्रजं हरिणपोतमुदग्रटङ्कं
विद्या करैरविरतं दधतीं त्रिनेत्राम्।
अर्द्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दरामां
वर्णेश्वरीं प्रणमत स्तनभारनम्राम्॥

'जो अपने चार करकमलोंमें सदा रुद्राक्षकी माला, हरिणशावक, पत्थर फोड़नेकी तीखी टाँकी और पुस्तक लिये रहती हैं, जिनके तीन आँखें हैं और मुकुटपर अर्द्ध चन्द्रमा है, शरीरका रंग लाल है, कमलपर बैठी हुई हैं, स्तनोंके भारसे झुकी हुई उन वर्णेश्वरीको नमस्कार करो।' संहारमातृकान्यासके सम्बन्धमें कुछ लोगोंकी ऐसी सम्मति है कि यह केवल संन्यासियोंको ही करना चाहिये। ब्राह्ममातृकान्यासमें अक्षरोंका उच्चारण चार प्रकारसे किया जा सकता है। केवल बिन्दुयुक्त अक्षर, सविसर्ग अक्षर और बिन्दु विसर्गयुक्त अक्षर। विशिष्ट कामनाओंके अनुरूप इनकी व्यवस्था है। इन अक्षरोंके पूर्व बीजाक्षर भी जोड़े जाते हैं। वाक्सिद्धिके लिये ऐं, श्रीवृद्धिके लिये श्रीं, सर्वसिद्धिके लिये नमः, वशीकरणके लिये क्लीं और मन्त्रप्रसादनके लिये अः जोड़ा जाता है। मन्त्रशास्त्रमें ऐसा कहा गया है कि मातृकान्यासके बिना मन्त्रसिद्धि अत्यन्त कठिन है।

पीठन्यास

देवताके निवासयोग्य स्थानको 'पीठ' कहते हैं। जैसे कामाख्यादि स्थानविशेष पीठके नामसे प्रसिद्ध हैं। जैसे बाह्य आसनविशेष शास्त्रीय विधिके अनुष्ठानसे पीठके रूपमें परिणत हो जाता है, वैसे ही पीठन्यासके प्रयोगसे साधकका शरीर और अन्तःकरण शुद्ध होकर देवताके निवास करने योग्य पीठ बन जाता है। वर्तमान युगमें जो दो प्रकारके पीठ प्रचलित हैं—समन्त्रक और अमन्त्रक, उन दोनोंकी अपेक्षा यह पीठन्यास उत्तम है, क्योंकि इसमें बाह्य आलम्बनकी आवश्यकता नहीं है। यह साधकके शरीरमें ही मन्त्रशक्ति, भावशक्ति, प्राणशक्ति और अचिन्त्य दैवीशक्तिके सम्मिश्रणसे उत्पन्न हो जाता है। विचारदृष्टिसे देखा जाय तो पीठन्यासमें जितने तत्त्वोंका न्यास किया जाता है वे प्रत्येक शरीरमें पहलेसे ही विद्यमान हैं। स्मृति और मन्त्रके द्वारा उन्हें अव्यक्तसे व्यक्त किया जाता है, उनके सूक्ष्मरूपको स्थूलरूपमें लाया जाता है। यह सृष्टिक्रमके इतिहासके सर्वथा अनुकूल है और यह साधकको देवताका पीठ बना देनेमें समर्थ है। इसका प्रयोग निम्नलिखित प्रकारसे होता है—

प्रत्येक चतुर्थ्यन्त पदके साथ जिनका उल्लेख आगे किया जा रहा है, पहले ॐ और पीछे नमः जोड़कर यथास्थान न्यास करना चाहिये—जैसे ॐ आधारशक्त्यै नमः। इसी प्रकार क्रमशः सबके साथ ॐ और नमः जोड़कर न्यासका विधान है।

हृदयमें—आधारशक्त्यै, प्रकृत्यै, कूर्माय, अनन्ताय, पृथिव्यै, क्षीरसमुद्राय, श्वेतद्वीपाय, मणिमण्डपाय, कल्पवृक्षाय, मणिवेदिकायै रत्नसिंहासनाय।

दाहिने कन्धेपर—धर्माय	बायें कन्धेपर — ज्ञानाय
बायें ऊरुपर—वैराग्याय	दाहिने ऊरुपर—ऐश्वर्याय
मुखपर — अधर्माय	बायें पार्श्वमें—अज्ञानाय
नाभिमें — अवैराग्याय	दाहिने पार्श्वमें अनैश्वर्याय

फिर हृदयमें—अनन्ताय, पद्माय, अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने, मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने, सं सत्त्वाय, रं रजसे, तं तमसे, आं आत्मने, अं अन्तरात्मने, पं परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने।

सबके साथ पहले ॐ और पीछे नमः जोड़कर न्यास कर लेनेके पश्चात् हृदयकमलके पूर्वादि केसरोंपर इष्टदेवताकी पद्धतिके अनुसार पीठशक्तियोंका न्यास करना चाहिये। उनके बीचमें इष्टदेवताका मन्त्र, जो कि इष्टदेवस्वरूप ही है, स्थापित करना चाहिये। इस न्याससे साधकके हृदयमें ऐसा पीठ उत्पन्न हो जाता है जो अपने देवताको आकर्षित किये बिना नहीं रहता।

इन न्यासोंके अतिरिक्त और भी बहुत से न्यास हैं, जिनका वर्णन उन-उन मन्त्रोंके प्रसङ्गमें आता है। उनके विस्तारकी यहाँ आवश्यकता नहीं है, वैष्णवोंका एक केशवकीर्त्यादिन्यास है, उसमें भगवान्‌के केशव, नारायण, माधव आदि मूर्तियोंको उनकी शक्तियोंके साथ शरीरके विभिन्न अङ्गोंमें स्थापित करके ध्यान किया जाता है। उस न्यासके फलमें कहा जाता है कि यह न्यास प्रयोग करनेमात्रसे साधकको भगवान्‌के समान बना देता है। वास्तवमें न्यासोंमें ऐसी ही शक्ति है।

न्यासके प्रकारभेदोंकी चर्चा न करके यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि छोटेसे गम्भीर रहस्योंकी दृष्टिसे न्यास भी

एक अतुलनीय साधन है। वर्णोंके न्यासमें वर्णमयी सृष्टिका उद्बोध होकर परमात्माके स्वरूपका ज्ञान और प्राप्ति हो जाती है, क्योंकि जब यह सृष्टि नहीं थी, तब प्रथम कम्पनके रूपमें प्रणव प्रकट हुआ और उस प्रणवसे ही समस्त स्वर वर्णोंका विस्तार हुआ। उनके आनुपूर्वी सङ्गठनसे वेद और वेदसे समस्त सृष्टि। इस क्रमसे विचार करनेपर ज्ञात होता है कि ये समस्त महान् और अणु, स्थूल एवं सूक्ष्म पदार्थ अन्तिम रूपमें वर्ण ही हैं। वर्णोंके न्यास और इनकी वर्णनात्मकताके ध्यानमें इनका वास्तविक रूप, जो कि दिव्य है, दृष्टिगोचर हो जाता है और फिर तो सर्वत्र दिव्यता ही दिव्यता छा जाती है। समस्त नाम रूपात्मक जगत्‌में अव्यक्तरूपसे रहनेवाली दिव्यताको व्यक्त करनेके लिये वर्णन्यास अथवा मन्त्रन्यास सर्वोत्तम साधनामेंसे एक है।

पीठन्यास, योगपीठन्यास अथवा तत्त्वन्यासके द्वारा भी हम उसी परिणामपर पहुँचते हैं, जो साधनाका अन्तिम लक्ष्य होना चाहिये। अधिष्ठान परब्रह्ममें आधारशक्ति, प्रकृति एवं क्रमशः सम्पूर्ण सृष्टि स्थित है। क्षीरसागरमें मणिमण्डल, कल्पवृक्ष, रत्नसिंहासन आदिकी भावना करते करते अन्तःकरण सर्वथा अन्तर्मुख हो जाता है और इष्टदेवताका ध्यान करते करते समाधि लग जाती है। एक ओर तो उस सृष्टिक्रमका ज्ञान होनेसे बुद्धि अधिष्ठानतत्त्वकी ओर अग्रसर होने लगती है और दूसरी ओर मन इष्टदेवताको प्राप्त करके उन्हींमें लय होने लगता है। इस प्रकार परमानन्दमयी अवस्थाका विकास होकर सब कुछ भगवान् ही है और भगवान्‌के अतिरिक्त और कोई अन्य सत्ता नहीं है, इस सत्यका साक्षात्कार हो जाता है।

सिरमें ऋषि, मुखमें छन्द और हृदयमें इष्टदेवताका न्यास करनेके अतिरिक्त जब सर्वाङ्गमें—या कहिये कि रोम रोममें सशक्तिक देवताका न्यास कर लिया जाता है, तो मनको इतना अवकाश

ही नहीं मिलता और इससे मधुर अन्यत्र कहीं स्थान नहीं मिलता कि वह और कहीं जाकर जाय। शरीरके रोम रोममें देवता अणु-अणुमें देवता, और देवतामय शरीर ! ऐसी स्थितिमें यह मन भी दिव्य हो जाता है । जड़ताके चिन्तनसे और अपनी जड़तासे यह संसार मनको जड़रूपमें प्रतीत होता है। इसका वास्तविक स्वरूप तो चिन्मय है ही, यह चिन्मयी लीला है । जब चिन्मयके ध्यानसे इसकी जड़ता निवृत्त हो जाती है, तो सब चिन्मयके रूपमें ही स्फुरित होने लगता है । जब इसकी चिन्मयताका बोध हो जाता है, तब अन्तर्देशमें रहनेवाला निगूढ चैतन्य भी इस चिन्मयसे एक हो जाता है और केवल चैतन्य ही चैतन्य अवशेष रहता है ।

यहाँ न्यासके सम्बन्धमें बहुत ही संक्षेपसे लिखा गया है ।

पूजाके विविध उपचार

संक्षेप और विस्तार-भेदसे अनेक प्रकारके उपचार हैं—चौंसठ, अठारह, सोलह, दस और पाँच।

६४ उपचार

देवीकी पूजाके चौंसठ उपचार यहाँ लिखे जाते हैं। इष्टमन्त्रसे इनका समर्पण होता है। मानस पूजामें इनकी भावना होती है। वाग्बीज, मायाबीज और लक्ष्मीबीजके साथ भी इनका समर्पण होता है—'जैसे पाद्यके समय ॐ ऐं ह्रीं श्रीं पाद्यं कल्पयामि नमः'। प्रत्येक उपचारका नाम जोड़कर यही मन्त्र बोल सकते हैं। उपचारोंके नाम ये हैं—१ पाद्यम्, २ अर्घ्यम्, ३ आसनम्, ४ सुगन्धितैलाभ्यङ्गम्, ५ मज्जनशालाप्रवेशनम्, ६ मज्जनमणिपीठोपवेशनम्, ७. दिव्यस्नानीयम्, ८ उद्वर्तनम्, ९ उष्णोदकस्नानम्, १० कनककलशस्थितसर्वतीर्थाभिषेकम्, ११ धौतवस्त्रपरिमार्जनम्, १२ अरुणदुकूलपरिधानम्, १३ अरुणदुकूलोत्तरीयम्, १४ आलेपमण्डपप्रवेशनम्, १५ आलेपमणिपीठोपवेशनम्, १६ चन्दनागुरुकुङ्कुममृगमदकर्पूरकस्तूरीरोचनादिदिव्यगन्धसर्वाङ्गानुलेपनम् १७ केशभारस्य कालागुरुधूपमल्लिकामालतीजातीचम्पकाशोकशतपत्रपूगकुहरीपुन्नागकह्लारयूथीसर्वर्तुकुसुममालाभूषणम्, १८ भूषणमण्डपप्रवेशनम्, १९. भूषणमणिपीठोपवेशनम्, २० नवरत्नमुकुटम्, २१ चन्द्रशकलम्, २२ सीमन्तसिन्दूरम्, २३ तिलकरत्नम्, २४ कालाञ्जनम्, २५ कर्णपालीयुगलम्, २६ नासाभरणम्, २७ अधरयावकम्, २८ ग्रथनभूषणम्,

२९. रत्नचित्रपदकम्, ३०. महापदकम्, ३१. मुक्तावलीम्, ३२. एकावलीम्, ३३ देवच्छन्दकम्, ३४. केयूरयुगलचतुष्कम् ३५. वलयावलीम्, ३६ ऊर्मिकावलीम्, ३७. काञ्चीदामकटिसूत्रम्, ३८. शोभाख्याभरणम्, ३९ पादकटकयुगलम्, ४०. रत्ननूपुरम् ४१ पादाङ्गुलीयकम्, ४२ एककरे पाशम्, ४३ अन्यकरे अङ्कुशम्, ४४ इतरकरेषु पुण्ड्रेक्षुचापम्, ४५. अपरकरे पुष्पबाणान्, ४६. श्रीमन्माणिक्यपादुकाम्, ४७ स्वसमानवेषाभिरावरणदेवताभिः सह सिंहासनारोहणम्, ४८ कामेश्वरपर्यङ्कोपवेशनम्, ४९. अमृतासवम् ५० आचमनीयम्, ५१ कर्पूरवटिकाम्, ५२. आनन्दोल्लासविलासहासम्, ५३ मङ्गलारात्रिकम्, ५४ श्वेतच्छत्रम्, ५५. चामरयुगलम् ५६ दर्पणम्, ५७. तालवृन्तम्, ५८ गन्धम्, ५९ पुष्पम्, ६० धूपम्, ६१. दीपम्, ६२. नैवेद्यम्, ६३ पानम्, ६४. पुनराचमनीयम्, इसके पश्चात् ताम्बूलम्, नमस्कारम्—इत्यादि, इन सबके साथ पूर्वोक्त बीज पहले जोड़कर पीछे 'कल्पयामि नमः' कहना चाहिये। मानस पूजामें तो ये उपचार ही पूरा ध्यान करा देते हैं। बाह्यपूजामें उपचारोंका अभाव होनेपर भी स्थिरभावसे इन मन्त्रोंका पाठ कर लेनेपर पूजाका ही फल मिलता है।

१८ उपचार

अष्टादशोपचार—१. आसन, २ स्वागत, ३. पाद्य, ४. अर्घ्य, ५. आचमनीय, ६. स्नानीय, ७. वस्त्र, ८ यज्ञोपवीत, ९ भूषण, १०. गन्ध, ११ पुष्प, १२. धूप, १३. दीप, १४ अन्न, १५ दर्पण, १६. माल्य, १७ अनुलेपन, १८. नमस्कार।

१६ उपचार

षोडशोपचार ये हैं—१. पाद्य, २. अर्घ्य, ३. आचमनीय, ४ स्नानीय, ५. वस्त्र, ६ आभूषण, ७. गन्ध, ८ पुष्प, ९ धूप,

१०. दीप, ११. नैवेद्य, १२ आचमनीय, १३. ताम्बूल, १४ स्तवपाठ, १५. तर्पण और १६. नमस्कार ।

५ उपचार

पञ्चोपचार ये हैं—१. गन्ध, २. पुष्प, ३. धूप, ४. दीप और ५. नैवेद्य ।

आसन समर्पणमें आसनके ऊपर पाँच पुष्प भी रख लेने चाहिये । छ पुष्पोंसे स्वागत करना चाहिये । पाद्यमें चार पल जल और उसमें श्यामा घास, दूब, कमल और अपराजिता देनी चाहिये। अर्घ्यमें चार पल जल और गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, दूब, चार तिल कुशाका अग्रभाग तथा सरसों देना चाहिये । आचमनीयमें छ पल जल और उसमें जायफल, लवंग और कङ्कोलका चूर्ण देना चाहिये । मधुपर्कमें कांस्य पात्रस्थित घृत, मधु और दधि देना चाहिये । मधुपर्कके पश्चात्कालमें आचमनमें केवल एक पल विशुद्ध जल ही आवश्यक होता है । स्नानके लिये पचास पल जल का विधान है । वस्त्र बारह अंगुलसे ज्यादा, नवीन और जोड़ा होना चाहिये । आभरण स्वर्ण-निर्मित हों और उनमें मोती आदि जड़े हों, गन्ध-द्रव्यमें चन्दन अगर, कपूर आदि एकमें मिला दिये गये हों । एक पलके लगभग उनका परिमाण कहा गया है । पुष्प पचाससे अधिक हों, अनेक रंगके हों । धूप गुग्गुलका हो और कांस्य पात्रमें निवेदन किया जाय । नैवेद्यमें एक पुरुषके भोजन योग्य वस्तु होनी चाहिये। चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय—चारों प्रकारकी सामग्री हो । दीप कपासकी बत्तीसे कपूर आदि मिलाकर बनाया जाय । बत्तीकी लम्बाई चार अंगुलके लगभग हो और दृढ़ हो। दीपके साथ शिलापिष्टका भी उपयोग करना चाहिये । इसीको श्री अथवा आके कहते हैं, जो आरतीके समय सात बार घुमाया जाता है । दूर्वा और

अक्षतकी सख्या सौसे अधिक समझनी चाहिये। एक-एक सामग्री अलग-अलग पात्रोंमें रक्खी जाय; वे पात्र सोने, चाँदी, ताँबे, पीतल या मिट्टीके हों। अपनी शक्तिके अनुसार ही करना चाहिये। जो वस्तु अपने पास नहीं हो, उसके लिये चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं और अपनी शक्ति सामर्थ्यके अनुसार जो मिल सकते हों, उनके प्रयोगमें आलस्य, प्रमाद और सकीर्णता नहीं करनी चाहिये।

पूजाके मन्त्र

भगवान् विष्णु, कृष्ण आदिकी पूजामें जिन मन्त्रोंका उपयोग होता है, वे लिखे जाते हैं—

आसन

सर्वान्तर्यामिणे देव सर्वबीजमयं ततः।
आत्मस्थाय परं शुद्धमासनं कल्पयाम्यहम्॥

'हे देव, आप सबके अन्तर्यामी और आत्मरूपसे स्थित हैं; इसलिये आपको मैं सर्वबीजस्वरूप उत्तम और शुद्ध आसन समर्पित कर रहा हूँ।

स्वागत

यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवा ब्रह्महरादयः।
कृपया देवदेवेश मदग्रे सन्निधीभव॥
तस्य ते परमेशान स्वागतं स्वागतं प्रभो।

ब्रह्मा, शिव आदि जिसके दर्शनके लिये लालायित रहते हैं, हे देवदेवेश, वे ही सबके आराध्य आप दया करके मेरे सामुख आवें। परमेश्वर, प्रभो, आपका स्वागत है, स्वागत है।'

आवाहन

कृतार्थोऽनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं तु मे ।
यदागतोऽसि देवेश चिदानन्दमयाव्यय ॥
अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा वैकल्यात् साधनस्य च ।
यदपूर्णं भवेत् कृत्यं तथाप्यभिमुखो भव ॥

'हे विज्ञानानन्दघन, हे अविनाशी, हे देवेश, आपने जो पदार्पण किया, इससे मैं कृतार्थ हो गया बड़ा अनुग्रह किया आपने। मेरा जीवन सफल हो गया। अज्ञान, असावधानी और साधनोंकी कमीके कारण मैं आपकी पूजा पूर्णत नहीं कर सकता तथापि आप कृपा करके मेरे सामने रहें।'

पाद्य

यद्भक्ति लेशसम्पर्कात् परमानन्दसम्भव ।
तस्मै ते परमेशान पाद्य शुद्धाय कल्पये ॥

जिनकी बिन्दुमात्र भक्तिका सम्पर्क हो जानेसे हृदय परमानन्द धाराका उद्गम बन जाता है, हे परमेश्वर! आपके उसी विशुद्ध स्वरूपको मैं पाद्य समर्पित कर रहा हूँ।'

आचमनीय

देवानामपि देवाय देवानां देवतात्मने ।
आचामं कल्पयामीश सुधायाः स्तुतिहेतवे ॥

'हे ईश, आप समस्त देवताओंके भी देवता—आराध्य देव हैं। और तो क्या, स्वयं आप ही देवताओंमें देवरूपसे प्रकट हैं। आप सुधाके मूलस्रोत हैं, अत आपसे सुधाकरणके लिये मैं आचमनीय समर्पित कर रहा हूँ।'

अर्घ्य

तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम् ।
तापत्रयविमोक्षाय तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम् ॥

'हे प्रभो, आपका अर्घ्य तीनों तापोंको हरनेवाला, दिव्य एवं परमानन्दरूप है, इसलिये तीनों तापोंसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये मैं आपको अर्घ्य समर्पित करता हूँ।'

मधुपर्क

सर्वकल्मषहीनाय परिपूर्णसुधात्मकम् ।
मधुपर्कमिमं देव कल्पयामि प्रसीद मे ॥

'हे देव, आप समस्त पापों और उनके कारणोंसे मुक्त हैं, आपके लिये मैं यह परिपूर्णसुधात्मक मधुपर्क समर्पित करता हूँ। आप अनुग्रह करके इसे स्वीकार करें।'

पुनराचमनीय

उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रतः ।
शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम् ॥

'जिसके स्मरण करनेमात्रसे उच्छिष्ट अथवा अपवित्र भी पवित्र हो जाता है, वही आप हैं। आपके लिये मैं आचमन समर्पित करता हूँ।'

स्नान

परमानन्दबोधाब्धिनिमग्ननिजमूर्तये ।
साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीश ते ।

'हे ईश, आप अपने परमानन्दस्वरूप ज्ञान-समुद्रमें स्वय निमग्न हैं। आपके लिये साङ्गोपाङ्ग स्नानार्थ जल मैं समर्पित करता हूँ।'

वस्त्र

मायाचित्रपटाच्छन्ननिजगुह्योरुतेजसे ।
निरावरणविज्ञान वासस्ते कल्पयाम्यहम् ॥

'आपने अपना परमज्योतिर्मय स्वरूप मायाके विचित्र वस्त्रमें ढक रक्खा है, वास्तवमें आप आवरणरहित विज्ञानस्वरूप हैं। ऐसे आपके लिये, हे देव, मैं वस्त्र समर्पित कर रहा हूँ।'

उत्तरीय

यमाश्रित्य महामाया जगत्सम्मोहनी सदा ।
तस्मै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥

जिसका आश्रय करके महामाया जगत्को मोहित करती है, आप वे ही परमेश्वर हैं। आपके लिये मैं उत्तरीय समर्पित करता हूँ।'

यज्ञोपवीत

यस्य शक्तित्रयेणेदं सम्प्रोतमखिलं जगत् ।
यज्ञसूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्र प्रकल्पये ॥

'जिसकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयरूप तीन शक्तियोंके द्वारा यह जगत् गुँथा हुआ है, जो स्वय यज्ञसूत्र हैं, उन्हींके लिये मैं यज्ञोपवीत समर्पित कर रहा हूँ।'

आभूषण

स्वभावसुन्दराङ्गाय नानाशक्त्याश्रयाय ते ।
भूषणानि विचित्राणि कल्पयामि सुरार्चित ॥

'हे सुरपूजित, आपका एक-एक अङ्ग स्वभावसे ही परम सुन्दर परम मनोहर है, आप स्वयं समस्त शक्तियोंके आश्रय हैं। आपके लिये मैं विचित्र भूषण समर्पित करता हूँ।'

जल

समस्तदेवदेवेश सर्वतृप्तिकरं परम् ।
अखण्डानन्दसम्पूर्ण गृहाण जलमुत्तमम् ॥

'हे देवदेवेश्वर, हे अनन्त आनन्दसे परिपूर्ण, आपके लिये मैं सबको तृप्ति देनेवाला यह उत्तम जल समर्पित करता हूँ, कृपया इसे स्वीकार करें।'

गन्ध

परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्णदिगन्तरम् ।
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वर ॥

'हे परमेश्वर, जिसकी परमानन्दमय सुरभिसे दिग् दिगन्त परिपूर्ण हो रहे हैं—आपके लिये वही परम गन्ध मैं समर्पित करता हूँ। आप कृपा करके स्वीकार करें।'

पुष्प

तुरीयं गुणसम्पन्नं नानागुणमनोहरम् ।
आनन्दसौरभं पुष्पं गृह्यतामिदमुत्तमम् ॥

'त्रिगुणातीत, गुणयुक्त, अनेक गुणोंसे मनोहर, आनन्द सौरभसम्पन्न, यह उत्तम पुष्प मैं आपको समर्पित करता हूँ, स्वीकार करें।'

धूप

वनस्पतिरसो दिव्यगन्धाढ्यः सुमनोहरः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

'वनस्पतियोंके रससे सगृहीत, दिव्य, सुगन्धपूर्ण निखिल देवताओंके आघ्राण करने योग्य यह सुमनोहर धूप मैं आपको समर्पित करता हूँ, कृपया स्वीकार करें।'

दीप

सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः ।
सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

'परम तेजसे सम्पन्न, भीतर और बाहर ज्योतिर्मय, सब ओरसे अन्धकारको दूर करनेवाला जो उत्तम आलोकमय दीपक है, वह आप स्वीकार करें।'

नैवेद्य

सत्पात्रसिद्धं सुहविर्विविधानेकभक्षणम् ।
निवेदयामि देवेश सानुगाय गृहाण तत् ॥

'हे देवेश, पवित्र पात्रमें बनाये हुए, अनेक प्रकारकी खाद्यसामग्रियोंसे युक्त यह उत्तम नैवेद्य अनुचरोंके सहित आपकी सेवामें समर्पित करता हूँ, आप कृपा करके इसे स्वीकार करें।'

भोजनके पश्चात् जल आदि पूर्वोक्त मन्त्रोंसे ही देने चाहिये। यागकी विधि दूसरे प्रसङ्गमें देखनी चाहिये।

पूजाके पाँच प्रकार

शास्त्रोंमें पूजाके पाँच प्रकार बताये गये हैं—अभिगमन, उपादान, योग, स्वाध्याय और इज्या। देवताके स्थानको साफ करना, लीपना, निर्माल्य हटाना—ये सब कर्म अभिगमनके अन्तर्गत हैं। गन्ध, पुष्प आदि पूजा-सामग्रीका संग्रह उपादान है। इष्टदेवकी आत्मरूपसे भावना करना योग है। मन्त्रार्थका अनुसन्धान करते हुए जप करना, सूक्त, स्तोत्र आदिका पाठ करना, गुण, नाम, लीला आदिका कीर्तन करना, वेदान्तशास्त्र आदिका अभ्यास करना—ये सब स्वाध्याय हैं। उपचारोंके द्वारा अपने आराध्यदेवकी पूजा इज्या है। ये पाँच प्रकारकी पूजाएँ क्रमशः सार्ष्टि, सामीप्य, सालोक्य, सायुज्य और सारूप्य मुक्तिको देनेवाली हैं।
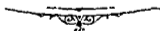
माला और उसके संस्कार

साधकोंके लिये माला बड़े महत्त्वकी वस्तु है। माला भगवान्‌के स्मरण और नामजपमें बड़ी ही सहायक होती है, इसलिये साधक उसे अपने प्राणोंके समान प्रिय समझते हैं और उसे गुप्त धनकी भाँति सुरक्षित रखते हैं। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि जपकी संख्या आवश्यक होनी चाहिये। इससे उतनी संख्या पूर्ण करनेके लिये सब समय प्रेरणा प्राप्त होती रहती है एवं उत्साह तथा लगनमें किसी प्रकारकी कमी नहीं आने पाती। जो लोग बिना संख्याके जप करते हैं उन्हें इस बात का अनुभव होगा कि जब कभी जप करते-करते मन अन्यत्र चला जाता है, तब मालूम ही नहीं होता कि जप हो रहा था या नहीं या कितने समयतक जप बंद रहा। यह प्रमाद हाथमें माला रहनेपर या संख्यासे जप करनेपर नहीं होता। यदि कभी कहीं मन चला भी जाता है तो मालाका चलना बंद हो जाता है। संख्या आगे नहीं बढ़ती और यदि माला चलती रही तो जीभ भी अवश्य चलती ही रहेगी और यह दोनो कुछ ही समयमें मनको खींच लानेमें समर्थ हो सकेंगी। जो यह कहते हैं कि मैं जप तो करता हूँ, पर मेरा मन कहीं अन्यत्र रहता है उन्हें यह विश्वास रखना चाहिये कि यदि जीभ और माला दोनों घूमती रहीं— क्योंकि बिना कुछ-न-कुछ मन रहे ये घूम नहीं सकतीं तो बाहर घूमने वाला मन कहीं भी आश्रय न पाकर अपने उसी स्थिर अंशके पास लौट आवेगा जो मूर्च्छितरूपसे मालाकी गतिमें कारण हो रहा है। मालाके फिरनेमें जो श्रद्धा और विश्वासकी शक्ति काम कर रही है वह एक दिन व्यक्त हो जायगी और सम्पूर्ण मनको आत्मसात् कर लेगी।

मालाके द्वारा जब इतना काम हो सकता है तब आदर पूर्वक उसका विचार न करके यों ही साधारण सी वस्तु समझ लेना भूल नहीं तो और क्या है? उसे केवल गिननेकी एक तरकीब समझकर अशुद्ध अवस्थामें भी पास रखना, बायें हाथसे गिन लेना, लोगोंको दिखाते फिरना, दैरतक लटकाये रहना, जहाँ कहीं रख देना, जिस किसी चीजसे बना लेना तथा चाहे जिस प्रकार गूँथ लेना सर्वथा वर्जित है। ऐसी बातें समझदारी और श्रद्धाकी कमीसे होती हैं, विशेषकर उन लोगोंसे जिन्होंने किसी गुरुसे विधिपूर्वक दीक्षा न लेकर मालाके विधि विधानपर विचार ही नहीं किया है। शास्त्रोंमें मालाके सम्बन्धमें बहुत विचार किया गया है। यहाँ संक्षेपसे उसका कुछ थोड़ा-सा दिग्दर्शन कराया जाता है।

माला प्रायः तीन प्रकारकी होती है—करमाला, वर्णमाला और मणिमाला। अंगुलियोंपर जो जप किया जाता है वह करमाला जप है। यह दो प्रकारसे होता है—एक तो अंगुलियोंसे ही गिनना और दूसरा अंगुलियोंके पर्वोंपर गिनना। शास्त्रतः दूसरा प्रकार ही स्वीकृत है। इसका नियम यह है कि अनामिकाके मध्यभागसे नीचेकी ओर चले, फिर कनिष्ठाके मूलसे अग्रभागतक और फिर अनामिका और मध्यमाके अग्रभागपर होकर तर्जनीके मूलतक जाय। इस क्रमसे अनामिकाके दो, कनिष्ठाके तीन, पुनः अनामिकाका एक, मध्यमाका एक और तर्जनीके तीन पर्व— दस संख्या होती है। मध्यमाके दो पर्व सुमेरुके रूपमें छूट जाते हैं। साधारण करमालाका यही क्रम है; परन्तु अनुष्ठानभेदसे इसमें अन्तर भी पड़ता है—जैसे, शक्तिके अनुष्ठानमें अनामिकाके दो पर्व, कनिष्ठाके तीन पुनः अनामिकाका अग्रभाग एक, मध्यमाके तीन पर्व और तर्जनीका एक मूलपर्व—इस प्रकार दस संख्या पूरी होती है। श्रीविद्यामें इसमें भिन्न नियम है। मध्यमाका मूल एक, अनामिकाका मूल एक, कनिष्ठाके

तीन अनामिका और मध्यमाके अग्रभाग एक एक और तर्जनीके तीन इस प्रकार दस संख्या पूरी होती है। करमालासे जप करते समय अंगुलियाँ अलग अलग नहीं होनी चाहिये। थोड़ी सी हथेली मुड़ी रहनी चाहिये। मेरुका उल्लङ्घन और पर्वोंकी सन्धि (गाठ) का स्पर्श निषिद्ध है। यह निश्चित है कि जो इतनी सावधानी रखकर जप करेगा उसका मन अधिकांश अन्यत्र नहीं जायगा। हाथको हृदयके सामने लाकर अंगुलियोंको कुछ टेढ़ी करके वस्त्रसे उसे ढककर दाहिने हाथसे ही जप करना चाहिये। जप अधिक संख्यामें करना हो तो इन दशकोंको स्मरण नहीं रखा जा सकता इसलिये उनको स्मरण करनेके लिये एक प्रकारकी गोली बनानी चाहिये। लाक्षा, रक्तचन्दन, सिन्दूर और गौके सूखे कंडेको चूर्ण करके सबके मिश्रणसे वह गोली तैयार करनी चाहिये। अक्षत, अंगुली, अन्न, पुष्प, चन्दन अथवा मिट्टीसे उन दशकोंका स्मरण रखना निषिद्ध है। मालाकी गिनती भी इनके द्वारा नहीं करनी चाहिये।

वर्णमालाका अर्थ है— अक्षरोंके द्वारा संख्या करना। यह प्रायः अन्तर्जपमें काम आती है। परन्तु बहिर्जपमें भी इसका निषेध नहीं है। वर्णमालाके द्वारा जप करनेका प्रकार यह है कि पहले वर्णमालाका एक अक्षर बिन्दु लगाकर उच्चारण कीजिये और फिर मन्त्रका—इस क्रमसे अवर्गके सोलह, कवर्गसे पवर्गतकके पचीस और यवर्गके हकारतक आठ और पुनः एक लकार—इस प्रकार पचासतक गिनते जाइये, फिर लकारसे लौटकर अकारतक आ जाइये—सौकी संख्या पूरी हो जायगी। क्षको सुमेरु मानते हैं। उसका उल्लङ्घन नहीं होना चाहिये। संस्कृतमें त्र और ज्ञ स्वतन्त्र अक्षर नहीं, संयुक्ताक्षर माने जाते हैं। इसलिये उनकी गणना नहीं होती। वर्ग भी सात नहीं, आठ माने जाते हैं। आठवाँ शकारसे प्रारम्भ होता है। इनके द्वारा अ क च ट त प य श, यह गणना करके आठ बार और

जपना चाहिये—ऐसा करनेसे जपकी संख्या एकसौ आठ हो जाती है। ये अक्षर तो मालाके मणि हैं। इनका सूत्र है कुण्डलिनी शक्ति। वह मूलाधारसे आज्ञाचक्रपर्यन्त सूत्ररूपसे गुथे हुए हैं। इन्हींके द्वारा आरोह और अवरोह क्रमसे अर्थात् नीचेसे ऊपर और ऊपरसे नीचे जप करना चाहिये। इस प्रकार जो जप होता है, वह सद्य सिद्धिप्रद होता है।

जिन्हें अधिक संख्यामें जप करना हो, उन्हें तो मणि माला रखना अनिवार्य है। मणि (मनिया) पिरोये होनेके कारण इसे मणिमाला कहते हैं। यह माला अनेक वस्तुओंकी होती है। रुद्राक्ष, तुलसी, शङ्ख, पद्मबीज, जीवपुत्रक, मोती, स्फटिक, मणि, रत्न, सुवर्ण, मूँगा, चाँदी, चन्दन और कुशमूल—इन सबीके मणियोंसे माला तैयार की जा सकती है। इनमें वैष्णवोंके लिये तुलसी और स्मार्त, शैव, शाक्त आदिकोंके लिये रुद्राक्ष सर्वोत्तम माना गया है। माला बनानेमें इतना ध्यान रखना चाहिये कि एक चीजकी मालामें दूसरी चीज न लगायी जाय। विभिन्न कामनाओंके अनुसार भी मालाओंमें भेद होता है और देवताओंके अनुसार भी। उनका विचार कर लेना चाहिये। मालाके मणि (दाने) छोटे-बड़े न हों। एक सौ आठ दानोंकी माला सब प्रकारके जपोंमें काम आती है। ब्राह्मण कन्याओंके द्वारा निर्मित सूतसे माला बनायी जाय तो सर्वोत्तम है। शान्तिकर्ममें श्वेत, वशीकरणमें रक्त, अभिचारमें कृष्ण और मोक्ष तथा ऐश्वर्यके लिये रेशमी सूतकी माला विशेष उपयुक्त है। ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंके लिये क्रमशः श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण वर्णके सूत श्रेष्ठ हैं। रक्त वर्णका प्रयोग सब वर्णोंके लोग सब प्रकारके अनुष्ठानोंमें कर सकते हैं। सूतको तिगुना करके फिरसे तिगुना कर देना चाहिये। प्रत्येक मणिको गूँथते समय प्रणवके साथ एक एक अक्षरका उच्चारण करते जाना चाहिये—जैसे 'ॐ अ'

कहकर प्रथम मणि तो 'ॐ आ' कहकर दूसरी मणि। बीचमें जो गाँठ देते हैं, उसके सम्बन्धमें विकल्प है। चाहे तो गाँठ दे और चाहे तो न दे। दोनों ही बातें ठीक हैं। माला गूँथनेका मन्त्र अपना इष्टमन्त्र भी है। अन्तमें ब्रह्मग्रन्थि देकर सुमेरु गूँथे और पुनः ग्रन्थि लगाये। स्वर्ण आदिके सूतसे भी माला पिरोयी जा सकती है। रुद्राक्षके दानोंके मुख और पुच्छका भेद भी होता है। मुख कुछ ऊँचा होता है और पुच्छ नीचा। पोहनेके समय यह ध्यान रखना चाहिये कि दानोंका मुख परस्परमें मिलता जाय अथवा पुच्छ। गाँठ देनी हो तो तीन फेरेकी अथवा ढाई फेरेकी लगानी चाहिये। ब्रह्मग्रन्थि भी लगा सकते हैं। इस प्रकार निर्माण करके उसका संस्कार करना चाहिये।

पीपलके नौ पत्ते लाकर एकको बीचमें और आठको अगल-बगल इस ढंगसे रक्खे कि वह अष्टदल कमल-सा मालूम हो। बीचवाले पत्तेपर माला रक्खे और 'ॐ अ आ' इत्यादिसे लेकर 'ह क्ष' पर्यन्त समस्त स्वर-वर्णोंका उच्चारण करके पञ्चगव्यके द्वारा उसका क्षालन करे और फिर 'सद्योजात' मन्त्र पढकर पवित्र जलसे उसको धो डाले। 'सद्योजात' मन्त्र यह है—

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः।
भवे भवे नाति भवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥

इसके पश्चात् वामदेवमन्त्रसे चन्दन, अगर, गन्ध आदिके द्वारा घर्षण करे। वामदेवमन्त्र निम्न लिखित है—

ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमः।

वलाय नमो वलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो। मनोन्मनाय नमः।

तत्पश्चात् अघोरमन्त्रसे धूपदान करे—

"ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः।"

यह अघोर-मन्त्र है। तदनन्तर तत्पुरुषमन्त्रसे लेपन करे।

"ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।"

इसके पश्चात् एक एक दानेपर एक-एक बार अथवा सौ-सौ बार ईशानमन्त्रका जप करना चाहिये। ईशानमन्त्र यह है—

ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्।

फिर मालामें अपने इष्टदेवताकी प्राण प्रतिष्ठा करे। प्राण प्रतिष्ठाकी विधि पूजाके प्रकरणमें देखनी चाहिये। तदनन्तर इष्टमन्त्रसे सविधि पूजा करके प्रार्थना करनी चाहिये—

"माले माले महामाले सर्वतत्त्वस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव॥

यदि मालामें शक्तिकी प्रतिष्ठा हो तो इस प्रार्थनाके पहले 'ह्रीं' जोड़ लेना चाहिये। और रक्तवर्णके पुष्पसे पूजा करनी चाहिये। वैष्णवाके लिये माला पूजाका मन्त्र है—

ॐ ऐं श्रीं अक्षमालायै नमः।

अकारादि क्षकारान्त प्रत्येक वर्णमें पृथक् पृथक् पुटित करके अपने इष्टमन्त्रका एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। इसके पश्चात् एक सौ आठ आहुति हवन करे अथवा दो सौ सोलह बार इष्टमन्त्रका जप कर ले। उस मालापर दूसरे मन्त्रका जप न करे। स्वयं हिले नहीं और मालाको हिलावे नहीं। आवाज नहीं होनी चाहिये और हाथसे छूटकर गिरनी नहीं चाहिये। माला टूटना मृत्यु ही है—ऐसा समझकर निरन्तर सावधान रहना चाहिये। उसे बड़े आदरसे पवित्र स्थानमें रखना चाहिये और प्रार्थना करनी चाहिये—

ॐ त्वं माले सर्वदेवानां सर्वसिद्धिप्रदा मता।
तेन सत्येन मे सिद्धिं देहि मातर्नमोऽस्तु ते॥

ऐसी प्रार्थना करके मालाको गुप्त रखना चाहिये। अंगुष्ठ और मध्यमाके द्वारा जप करना चाहिये और तर्जनीसे मालाका कभी स्पर्श नहीं करना चाहिये। सूत पुराना हो जाय तो फिर गूँथकर सौ बार जप करना चाहिये। प्रमादवश हाथसे गिर पड़े अथवा निषिद्ध स्पर्श हो जाय तो भी सौ बार जप करना चाहिये। टूट जानेपर फिर गूँथकर पूर्ववत् सौ बार जप करना चाहिये। मालाके इन नियमोंमें सावधानी वर्तनेसे शीघ्र ही सिद्धि-लाभ होगा, इसमें सन्देह नहीं।

मालाके संस्कारकी एक और प्रक्रिया है, जिसका आगम-कल्पद्रुममें उल्लेख हुआ है। भूतशुद्धि आदि करके मालामें विष्णु, शिव शक्ति, सूर्य और गणेशका आवाहन करके पूजा करनी चाहिये। फिर मालाको पञ्चगव्यमें डालकर 'ॐ ह्रें सौः' इस मन्त्रसे निकालकर उसको सोनेके पात्रमें रखे। उसके ऊपर पञ्चामृतके नियमसे दूध, दही, घी, मधु और शीतल जलसे स्नान

करावे । इसके पश्चात् चन्दन, कस्तूरी और कुङ्कुम आदि सुगन्धद्रव्यसे मालाको लिप्त करे और 'हे सौ.' इस मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे । इसके पश्चात् मालामें नवग्रह, दिक्पाल और गुरुदेवकी पूजा करके उस मालाको ग्रहण करना चाहिये । इस प्रकारकी माला ही प्रत्येक क्षण भगवान्का स्मरण दिलाती रहती है । साधकको मालाकी आवश्यकता, उसके भेद, निर्माणपद्धति, संस्कार और प्रायश्चित्त जानकर उनके अनुसार अनुष्ठान करना चाहिये ।

मन्त्रानुष्ठान

मन्त्र शब्दका अर्थ है गुप्त परामर्श। वह श्रीगुरुदेवकी ही कृपासे प्राप्त होता है। मन्त्र प्राप्त होनेपर भी यदि उसका अनुष्ठान न किया जाय, सविधि पुरश्चरण करके उसे सिद्ध न कर लिया जाय तो उससे उतना लाभ नहीं होता जितना होना चाहिये। श्रद्धा, भक्तिभाव और विधिके संयोगसे जब मन्त्रोंके अक्षर अन्तर्देशमें प्रवेश करके एक दिव्य आलिङ्गन करने लगते हैं तो उस संघर्षसे जन्म जन्मान्तरीय पाप-तापोंके संस्कार धुल जाते हैं। जीवकी प्रसुप्त चेतनता जीवन्त, ज्वलन्त एवं जागरितरूपमें चमक उठती है। मन्त्रार्थके साक्षात्कारसे वह कृतकृत्य हो जाता है। जबतक दीर्घकालतक निरन्तर श्रद्धाभावसे मन्त्रका अनुष्ठान नहीं किया जायगा, तबतक प्रेम अथवा ज्ञानके उदयकी कोई संभावना ही नहीं है। इस अनुष्ठानमें कुछ नियमोंकी आवश्यकता होती है। यम और नियम ही आन्तरिक एवं बाह्य शान्तिके मूल हैं। इन्हींकी नींवपर अनुष्ठानका प्रासाद प्रतिष्ठित है। इसलिये अनुष्ठान करनेके पूर्व उन्हें जान लेना आवश्यक है। यहाँ संक्षेपमें उनका दिग्दर्शन कराया जाता है।

मन्त्रानुष्ठानके योग्य स्थान

मन्त्रानुष्ठान स्वयं करना चाहिये। यह सर्वोत्तम कल्प है। यदि श्रीगुरुदेव ही कृपा करके कर दें तब तो पूछना ही क्या। यदि ये दोनों सम्भव न हों तो परोपकारी, प्रेमी, शास्त्रवेत्ता, सदाचारी ब्राह्मणके द्वारा भी कराया जा सकता है। कहीं-कहीं अपनी धर्मपत्नीसे भी अनुष्ठान करानेकी आज्ञा है, परन्तु ऐसा उसी स्थितिमें

करना चाहिये, जब उसे पुत्र हो। अनुष्ठानका स्थान निम्नलिखित स्थानोंमेंसे कोई होना चाहिये। सिद्धपीठ, पुण्यक्षेत्र, नदीतट, गुहा, पर्वतशिखर, तीर्थ, संगम, पवित्र जङ्गल, एकान्त उद्यान, बिल्ववृक्ष, पर्वतकी तराई, तुलसीकानन, गोशाला (जिसमें बैल न हों), देवालय, पीपल या आँवलेके नीचे, पानीमें अथवा अपने घरमें मन्त्रका अनुष्ठान शीघ्र फलप्रद होता है। सूर्य, अग्नि, गुरु, चन्द्रमा, दीपक, जल, ब्राह्मण और गौओंके सामने बैठकर जप करना उत्तम माना गया है। यह नियम सार्वत्रिक नहीं है। मुख्य बात यह है कि जहाँ बैठकर जप करनेसे चित्तकी ग्लानि मिटे और प्रसन्नता बढ़े, वही स्थान सर्वश्रेष्ठ है। घरसे दसगुना गोष्ठ, सौ गुना जंगल, हजारगुना तालाब, लाखगुना नदीतट, करोड़गुना पर्वत, अरबोंगुना शिवालय और अनन्त गुना गुरुका सन्निधान है। जिस स्थानपर स्थिरतासे बैठनेमें किसी प्रकारकी आशङ्का आतङ्क न हो, म्लेच्छ, दुष्ट, बाघ, साँप आदि किसी प्रकारका विघ्न न डाल सकते हों, जहाँके लोग अनुष्ठानके विरोधी न हों, जिस देशमें सदाचारी और भक्त निवास करते हों, गुरुजनोंकी सन्निधि और चित्तकी एकाग्रता सहजभावसे ही रहती हो, वही स्थान जप करनेके लिये उत्तम माना गया है। यदि किसी साधारण गाँव अथवा घरमें अनुष्ठान करना हो तो पहले कूर्म भगवान्‌का चिन्तन करना चाहिये। जैसे कूर्म भगवान्‌की पीठपर स्थित मन्दराचलके द्वारा समुद्रमन्थन किया गया था वैसे ही मैं कूर्माकार भूमिप्रदेशमें स्थित होकर उन्हींके आश्रयसे अमृततत्त्वकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न कर रहा हूँ, ऐसी भावना करनी चाहिये।

भोजनकी पवित्रता

मन्त्रके साधकको अपने भोजनके सम्बन्धमें पहलेसे ही विचार कर लेना चाहिये, क्योंकि भोजनके रससे ही शरीर, प्राण और मनका निर्माण होता है। जो अशुद्ध भोजन करते हैं, उनके शरीरमें रोग,

प्राणोंमें क्षोभ और चित्तमें ग्लानिकी वृद्धि होती है। ग्लान चित्तमें देवता और मन्त्रके प्रसादका उदय नहीं होता। इसके विपरीत जो शुद्ध अन्नका भोजन करते हैं, उनके चित्तके मल और विक्षेप शीघ्र ही निवृत्त हो जाते हैं। अन्नका सबसे बड़ा दोष है न्यायोपार्जित न होना। जो अन्यायसे, बेईमानी, चोरी, डकैती आदि करके अपने शरीरका पालन पोषण करते हैं उनकी उस क्रियाके मूलमें ही अशुद्ध मनोवृत्ति रहनेके कारण वह अन्न सर्वथा दूषित रहता है और उसके द्वारा शुद्ध चित्तका निर्माण असम्भवप्राय है। जो लोग अन्याय तो नहीं करते, परन्तु सन्यासी अथवा ब्रह्मचारी न होनेपर भी बिना परिश्रम किये ही दूसरोंका अन्न खाते हैं, उनमें तमोगुणकी वृद्धि होती है, वे अधिकांश आलस्य और प्रमादमें पड़े रहते हैं। उनके चित्तका मल दूर होना भी बड़ा कठिन है। अपनी कमाईके अन्नमें भी, जिससे दूसरोंका चित्त दुखता है, उस अन्नसे चित्तकी शुद्धि नहीं होती। जिस गौका बछड़ा अलग छटपटा रहा है, पेटभर भोजन न मिलनेके कारण जिस गायकी आँखोंसे आँसू गिर रहे हों, उसका न्यायोपार्जित दूध भी चित्तको प्रसन्न कर सकेगा—इसमें सन्देह है। इसलिये भोजनमें सबसे पहले यह बात देखनी चाहिये कि यह वर्णाश्रमोचित परिश्रमसे प्राप्त किया हुआ है या नहीं? इसके उपयोगसे किसीका हक तो नहीं मारा गया है? इसको स्वीकार करनेमें किसीको कष्ट तो नहीं हुआ? कहीं इसके मूलमें विषादका बीज तो नहीं है? भोजनमें तीन प्रकारके दोष और माने गये हैं—जाति दोष, आश्रयदोष और निमित्तदोष। जातिदोष यह है जो स्वभावसे ही कई पदार्थोंमें रहता है। इसके उदाहरणमें प्याज, लहसुन और शलजमको रख सकते हैं। जातिदोष न होनेपर भी स्थानके कारण बहुत सी वस्तुएँ अपवित्र हो जाती हैं। शुद्ध दूध भी यदि शराबखानेमें रख दिया जाय तो वह अपवित्र हो जाता है। यही

आश्रयदोष है। शुद्ध स्थानमें रक्खी हुई शुद्ध वस्तु भी कुत्ते आदिके स्पर्शसे अशुद्ध हो जाती है। इस प्रकारके दोषका नाम निमित्तदोष है।

साधकका भोजन अवश्य ही इन तीन दोषोंसे रहित होना चाहिये। गौके दही, दूध, घी, श्वेत तिल, मूँग, कन्द, केला, आम, नारियल, आँवला, जड़हन धान, जौ, जीरा, नारंगी आदि हविष्यान्न जो विभिन्न व्रतोंमें उपादेय माने गये हैं तथा जिस देशमें वहाँके निवासी यही भोजन कर सकते हैं। मधु, खारी नमक, तेल, पान, गाजर, उड़द, अरहर, मसूर, कोदों, चना, बासी अन्न, रूखा अन्न और वह अन्न जिसमें कीड़े पड़ गये हों, नहीं खाना चाहिये। काँसेके बर्तनमें भी न खाना चाहिये।

भोजनके सम्बन्धमें एक बात और भी ध्यानमें रखनी चाहिये। जितने भोजनकी आवश्यकता हो, उससे कम ही खाया जाय। भोज्य अन्न खूब पका हुआ हो, थोड़ा गरम हो, हृदयदाही न हो, जिससे इन्द्रियोंको अधिक बल और उत्तेजना मिले, पेट बढ़े एवं निद्रा, आलस्य आवे, वह सर्वथा वर्जित है। भगवान्‌ने एक स्थानपर पार्वतीसे कहा है कि— जिनकी जिह्वा परान्नसे जल गयी है, जिनके हाथ प्रतिग्रहसे जले हुए हैं और जिनका मन परस्त्रीके चिन्तनसे जलता रहता है, उन्हें भला मन्त्रसिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है? जिन्हें भिक्षा लेनेका अधिकार है, उन सन्यासी आदिकोंके लिये भिक्षा परान्न नहीं है। परन्तु वैदिक, सदाचारी पवित्र एवं कुलीन ब्राह्मणोंसे ही भिक्षा लेनी चाहिये। एक ग्रन्थमें ऐसा उल्लेख मिलता है कि सर्वोत्तम बात तो यही है कि अग्निके अतिरिक्त और कोई भी वस्तु किसीसे न ली जाय। यदि ऐसा सम्भव न हो तो तीर्थके बाहर जाकर पर्वोंको छोड़कर न्यायोपार्जित

अपनी भिक्षा लेनी चाहिये, सो भी एक दिन सानभर। जो रागवश इससे अधिक भिक्षा ग्रहण करता है, उसे मन्त्रसिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती।

कुछ आवश्यक बातें

स्त्रीसंसर्ग उनकी चर्चा तथा जहाँ वे रहती हों वह स्थान छोड़ देना चाहिये। ऋतुकालके अतिरिक्त अपनी स्त्रीका भी स्पर्श करना निषिद्ध है। स्त्री साधिकाओंके लिये पुरुषोंके सम्बन्धमें भी यही बात समझनी चाहिये। कुटिलता और, उबटन, बिना भोग लगाये भोजन और बिना संकल्पके कर्म नहीं करने चाहिये। केवल आँवलेसे अथवा पञ्चगव्यसे शास्त्रोक्त विधिसे स्नान करना चाहिये। स्नान आचमन भोजन आदि मन्त्रोच्चारणके साथ ही हों। यथाशक्ति तीनों समय, दो समय अथवा एक समय स्नान संध्या और इष्टदेवकी पूजा भी अवश्य करनी चाहिये। स्नान तर्पण किये बिना, अपवित्र हाथसे, नग्न अवस्थामें अथवा सिरपर वस्त्र रखकर जप करना निषिद्ध है। जपके समय माला पूरी हुए बिना बातचीत नहीं करनी चाहिये। आवश्यक हो तो जप समाप्त करने और प्रारम्भ करनेके पूर्व आचमन कर लेना चाहिये।

यदि जप करते समय एक शब्दका उच्चारण हो जाय तो एकबार प्रणवका उच्चारण कर लेना चाहिये। यदि वह शब्द कठोर हो तो प्राणायाम भी आवश्यक हो जाता है। यदि कहीं बहुत बात कर जाय तो आचमन, अंगन्यास करके पुनः माला प्रारम्भ करनी चाहिये। छींक और अस्पृश्य स्थानोंका स्पर्श हो जानेपर भी यही विधान है। जप करते समय यदि शौच, लघुशंका आदिका वेग हो तो उसका निरोध नहीं करना

चाहिये, क्योंकि ऐसी अवस्थामें मन्त्र और इष्टका चिन्तन तो होता नहीं, मल मूत्रका ही चिन्तन होने लगता है। ऐसे समयका जप पूजनादि अपवित्र होता है। मलिन वस्त्र, केश और मुखसे जप करना शास्त्रविरुद्ध है। जप करते समय इतने कर्म निषिद्ध हैं— आलस्य, जँभाई, नींद, छींक, थूकना, डरना, अपवित्र अङ्गोंका स्पर्श और क्रोध।

जपमें न बहुत जल्दी करनी चाहिये और न बहुत विलम्ब। गाकर जपना, सिर हिलाना, लिखा हुआ पढ़ना, अर्थ न जानना और बीच बीचमें भूल जाना—ये सब मन्त्रसिद्धिके प्रतिबन्धक हैं। जपके समय यह चिन्तन रहना चाहिये कि इष्टदेवता, मन्त्र और गुरु एक ही हैं।

जबतक जप किया जाय, यही बात मनमें रहे। पहले दिन जितना जपका सङ्कल्प किया जाय उतना ही जप प्रतिदिन होना चाहिये, उसे घटाना-बढ़ाना ठीक नहीं। मन्त्रसिद्धिके लिये बारह नियम हैं—१—भूमिशयन, २—ब्रह्मचर्य, ३—मौन, ४—गुरुसेवन, ५—त्रिकालस्नान, ६—पापकर्म-परित्याग, ७—नित्य पूजा, ८—नित्य दान, ९—देवताकी स्तुति एवं कीर्तन, १०—नैमित्तिक पूजा, ११—इष्टदेव और गुरुमें विश्वास, १२—जपनिष्ठा। जो इन नियमोंका पालन करता है, उसका मन्त्र सिद्ध ही समझना चाहिये।

स्त्री, शूद्र, पतित, व्रात्य, नास्तिक आदिके साथ सम्भाषण, उच्छिष्ट मुखसे वार्तालाप, असत्य भाषण और कुटिल भाषण छोड़ देना चाहिये। किसी भी अनुष्ठानके समय शपथ लेनेसे सब निरर्थक हो जाता है। अनुष्ठान आरम्भ कर देनेपर यदि मरणाशौच या जननाशौच पड़ जाय तो भी अनुष्ठान नहीं छोड़ना

चाहिये। अपने आसन, शय्या, वस्त्र आदिको शुद्ध एवं स्वच्छ रखना चाहिये। किसीका गाना, बजाना, नाचना न सुनना चाहिये और न देखना ही। उबटन, इत्र, पुष्पमालाका उपयोग और गरम जलसे स्नान नहीं करना चाहिये। एक वस्त्र पहनकर अथवा बहुत वस्त्र पहनकर एवं पहननेका वस्त्र ओढ़कर और ओढ़नेका वस्त्र पहनकर जप नहीं करना चाहिये। सोकर, बिना आसनके, चलते या खाते समय, बिना माला ढके और सिर ढककर जो जप किया जाता है, अनुष्ठानमें उसकी गिनती नहीं की जाती। जिसके चित्तमें व्याकुलता क्षोभ, भ्रान्ति हो, भूख लगी हो, शरीरमें पीड़ा हो, स्थान अशुद्ध हो एवं अन्धकाराच्छन्न हो, उस वहाँ जप नहीं करना चाहिये। जूता पहने हुए अथवा पैर फैलाकर जप करना निषिद्ध है। और भी बहुत से नियम हैं, उन्हें जानकर यथाशक्ति उनका पालन करना चाहिये। ये सब नियम मानस जपके लिये नहीं हैं। शास्त्रकारोंने कहा है—

> अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन्नपि।
> मन्त्रैकशरणो विद्वान् मनसैव सदाभ्यसेत्॥
> न दोषो मानसे जाप्ये सर्वदेशेऽपि सर्वदा।

अर्थात् 'मन्त्र रहस्यको जाननेवाला जो साधक एकमात्र मन्त्रकी ही शरण हो गया है, वह चाहे पवित्र हो या अपवित्र सब समय चलते फिरते, उठते बैठते, सोते-जागते, मन्त्रका अभ्यास कर सकता है। मानस जपमें किसी भी समय और स्थानको दोषयुक्त नहीं समझा जाता। कुछ मन्त्रोंके सम्बन्धमें अवश्य ही विभिन्न विधान हैं। उनके प्रसंगमें वे नियम स्पष्ट कर दिये जायँगे।

संक्षेपमें इस बातका निर्देश किया गया है कि जप किस प्रकार सुप्त चेतनाको जाग्रत करके परम तत्त्वसे एक कर देता है।

यहां उसकी पुनरुक्ति आवश्यक नहीं है। जो लोग आधिदैविक जगत्का रहस्य जानते हैं, वे भलीभाँति इस तत्त्वसे अवगत हैं कि स्थूल जगत्की एक एक वस्तुके पृथक् पृथक् अधिष्ठातृ देवता होते हैं और वे जगा लिये जानेपर अनेक प्रकारकी सिद्धियाँ दे सकते हैं। केवल परमार्थ ही नहीं, इनके द्वारा स्वार्थ भी सिद्ध होता है। इन देवताओंमें अनेकों प्रकारके चमत्कारकी शक्ति रहती है और इनकी सहायतासे अर्थप्राप्ति, धर्मपालन एवं कामोपभोग पूर्णरूपसे किये जा सकते हैं। प्राचीन भारतीयोंके सम्बन्धमें जो बहुत सी बातें सुनी जाती हैं, वे किंवदन्तीमात्र नहीं हैं, पूर्ण सत्य हैं। चाहे अर्वाचीन लोग इसे न मानें परन्तु वे ही सिद्धियाँ आज भी सम्भव हैं। इन मन्त्रोंमें ऐसी ही शक्ति है, चाहे जो इनका जप करके प्रत्यक्ष फल प्राप्त कर सकता है।

जपकी महिमा और भेद

शास्त्रोंमें जपकी बड़ी महिमा गायी गयी है। सब यज्ञोंकी अपेक्षा जप-यज्ञको श्रेष्ठ बतलाया गया है। जप-यज्ञमें किसी भी बाह्य सामग्री अथवा हिंसा आदिकी आवश्यकता नहीं होती। पद्म एवं नारदीय पुराणमें कहा गया है कि और समस्त यज्ञ वाचिक जपकी तुलनामें सोलहवें हिस्सेके बराबर भी नहीं हैं। वाचिक जपसे सौगुना उपांशु और सहस्रगुना मानस जपका फल होता है। मानस जप वह है, जिसमें अर्थका चिन्तन करते हुए मनसे ही मन्त्रके वर्ण, स्वर और पदोंकी बार-बार आवृत्ति की जाती है। उपांशु जपमें कुछ कुछ जीभ और होंठ चलते हैं, अपने कानों तक ही उनकी ध्वनि सीमित रहती है, दूसरा कोई नहीं सुन सकता। वाचिक जप वाणीके द्वारा उच्चारण है। तीनों ही प्रकारके जपमें मनके द्वारा इनका चिन्तन होना चाहिये। मानसिक स्तोत्र-पाठ और जोर-शोरसे उच्चारण करके मन्त्र-जप दोनों ही निष्फल हैं।

गौतमीय तन्त्रमें कहा गया है कि केवल वर्णोंके रूपमें जो मन्त्रकी स्थिति है, वह तो उसकी जडता अथवा पशुता है। सुषुम्णाके द्वारा उच्चारित होनेपर उसम शक्तिसचार होता है। ऐसी भावना करनी चाहिये कि मन्त्रका एक एक अक्षर चिच्छक्तिसे ओतप्रोत है और परम अमृतस्वरूप चिदाकाशमें उसकी स्थिति है। ऐसी भावना करते हुए जप करनेसे पूजा, होम आदिके बिना ही मन्त्र अपनी शक्ति प्रकाशित कर देते हैं। मन्त्रजप करनेकी यही विधि है कि सम्पूर्ण प्राणबुद्धिसे सुषुम्णाके मूलदेशमें स्थित जीवरूपसे मन्त्रका चिन्तन करके मन्त्रार्थ और मन्त्रचैतन्यका ज्ञानपूर्वक उनका जप किया जाय। कुलार्णवतन्त्रमें भगवान् शङ्करने कहा है कि मन एक जगह, शिव दूसरी जगह, शक्ति तीसरी जगह और प्राण चौथी— ऐसी स्थितिमें मन्त्रसिद्धिकी क्या सम्भावना है। इसलिये इन सबका एकत्र चिन्तन करते हुए ही जप करना चाहिये।

मन्त्रमें सूतक और मन्त्रसिद्धिके साधन

मन्त्रमें दो प्रकारके सूतक होते हैं— एक जात-सूतक और दूसरा मृत-सूतक। इन दोनों अशौचोंका भङ्ग किये बिना मन्त्र सिद्ध नहीं होता। इनके भंग करनेकी विधि यह है कि जपके प्रारम्भमें एक सौ आठ बार अथवा असमर्थ होनेपर सात बार ओंकारसे पुटित करके अपने इष्ट मन्त्रका जप कर लेना चाहिये। मन्त्रार्थ और मन्त्रचैतन्यका उल्लेख किया जा चुका है। उनके साथ ही योनिमुद्राका अनुष्ठान करना भी आवश्यक होता है। उसके विकल्पमें भूत लिपिका विधान होता है, उससे अनुलोम विलोम पुटित करके मन्त्र-जप करनेसे बहुत ही शीघ्र मन्त्र सिद्ध होता है। भूत लिपिका क्रम निम्नलिखित है—

अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ ह य र व ल ङ क ख घ ग ञ च छ झ ज ण ट ठ ढ ड न त थ ध द म प फ भ न श ष स (इसके बाद इष्टमन्त्र, फिर) स ष श ब भ फ प म द ध न थ त न ड द ठ ट ण ज झ छ च ञ ग घ ख क ङ ल व र य ह औ ओ ऐ ए ऌ ऋ उ इ अ।

इस प्रकार एक महीनेतक एक हजार जप करना चाहिये। ऐसा करनेसे मन्त्र जागरित हो जाता है। तीन प्राणायाम पहले और तीन पीछे कर लेने चाहिये। प्राणायामकी साधारण विधि यह है कि चार मन्त्रसे पूरक, सोलह मन्त्रसे कुम्भक और आठ मन्त्रसे रेचक करना चाहिये। जप पूरा हो जानेपर उसको तेजस्वरूप ध्यान करके इष्ट देवताके दाहिने हाथमें समर्पित कर देना चाहिये। यदि देवीका मन्त्र हो तो बायें हाथमें समर्पण करना चाहिये। प्रतिदिन अथवा अनुष्ठानके अन्तमें जपका दशांश हवन, हवनका दशांश तर्पण, तर्पणका दशांश अभिषेक और यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये।

होम, तर्पण आदिमेंसे जो अंग पूरा न किया जा सके, उसके लिये और भी जप करना चाहिये। होम न किया जा सके, उसके लिये और भी जप करना चाहिये। होम न कर सकनेपर ब्राह्मणोंके लिये होमकी संख्यासे चौगुना, क्षत्रियोंके लिये छःगुना वैश्योंके लिये आठगुना जप करनेका विधान है।

स्त्रियोंके लिये वैश्योंके समान ही समझना चाहिये। शूद्र यदि किसी वर्णका आश्रित हो, तब तो उसके लिये अपने आश्रयकी संख्या ही समझनी चाहिये। यदि वह स्वतन्त्र हो तो उसे होमकी संख्यासे दसगुना जप करना चाहिये। अर्थात् एक लाखका अनुष्ठान हो तो होमके लिये भी एक लाख जप करना चाहिये। 'योगिनीहृदय' में यह संख्याका दुगुना, क्षत्रियोंके लिये तिगुना,

वैश्योंके लिये चौगुना और शूद्रोंके लिये पाँचगुना है। अनुष्ठानके पाँच अङ्ग हैं—जप, होम, तर्पण, अभिषेक और ब्राह्मणभोजन। यदि होम, तर्पण और अभिषेक न हो सकें तो केवल ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे भी काम चल जाता है। स्त्रियोंके लिये तो ब्राह्मण-भोजनकी भी उतनी आवश्यकता नहीं है। उन्हें न्यास, ध्यान और पूजाकी भी छूट है, केवल जपमात्रसे उनके मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। अनुष्ठानमें दीक्षासम्पन्न ब्राह्मणोंको ही खिलाना चाहिये।

अनुष्ठान पूरा हो जानेपर गुरु, गुरुपुत्र, गुरुपत्नी अथवा उनके वंशजोंको दक्षिणा देनी चाहिये। वास्तवमें यह सब उनकी प्रसन्नताके लिये ही है। जबतक वे प्रसन्न न हों, तबतक परम रहस्यमय ज्ञानकी उपलब्धि नहीं हो सकती। अपने प्रयत्न एवं विचारसे चाहे कोई कितना ही ऊपर क्यों न उठ जाय, वह पूर्णरूपसे सन्देहरहित नहीं हो सकता। इसलिये विशेष करके उपासनाके सम्बन्धमें गुरुके अतिरिक्त और कोई गति ही नहीं है। उनके बिना वह रहस्य और कौन बता सकता है, जिसमें गुरु और शिष्य एक हैं। शिष्य स्वयं गुरुका अस्तित्व कभी मिटा नहीं सकता। केवल गुरु ही अपने गुरुत्वको मिटाकर शिष्यको उसके वास्तविक स्वरूपमें प्रतिष्ठित करते हैं। यह एक ऐसा रहस्य है, जिसे निगुरे नहीं जान सकते। अतः समझना चाहिये कि अनुष्ठानकी पूर्णता गुरुकी प्रसन्नतामें है। एक बार एक मन्त्र सिद्ध हो जानेपर दूसरे मन्त्रोंकी सिद्धिमें किसी प्रकारका विलम्ब नहीं होता, वे निर्विघ्न सिद्ध हो जाते हैं।

इस प्रकार विधि निषेध आदि जानकर गुरुदेवके आश्रयमें रहते हुए, श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मन्त्रानुष्ठान करनेसे अवश्यमेव मन्त्रसिद्धि होती है—इसमें कोई सन्देह नहीं है।

उपयोगी मन्त्रोंके जपकी विधि

शास्त्रोंमें भगवत्प्रेम एव चारों पुरुषार्थ प्राप्त करनेके लिये अनेकों मन्त्रोंका वर्णन हुआ है । मन्त्रोंके द्वारा भोग, मोक्ष एव भगवत्प्रेमकी सिद्धि हो सकती है । मन्त्रोंमे कौन सी ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा साधकको सिद्धि लाभ होता है, इसकी चर्चा यहाँ प्रासगिक नहीं है । यहाँ तो केवल कुछ मन्त्रोंकी जपविधि लिखी जाती है, *जिनकी श्रद्धा हो, विश्वास हो वे किसीसे सलाह लेकर* इनका अनुष्ठान कर सकते हैं । हाँ, इतनी बात दावेके साथ कही जा सकती है कि इन मन्त्रोंमे दैवी शक्ति है । अभिलाषा पूर्ण करनेकी अद्भुत शक्ति है । यदि सम्पूर्ण कामनाओंको छोड़कर निष्कामभावसे इनका जप किया जाय तो वे शीघ्र-से शीघ्र अन्त करण शुद्ध कर देते हैं और भगवान्की सन्निधिका परमानन्द अनुभव कराने लगते हैं ।

प्राय बहुत-से लोग अपनी कुलपरम्पराके अनुसार अपने *कुलगुरुओंसे दीक्षा ग्रहण करते हैं । समयके प्रभावमें अथवा अशिक्षा* आदि अन्य कारणोंसे आजकलके गुरुजनोंमें भी अधिकाश मन्त्रविधिसे अनभिज्ञ ही होते हैं । उनसे दीक्षा पाये हुए शिष्योंके मनमें यदि विधिपूर्वक मन्त्रानुष्ठानकी इच्छा हो तो वे इस विधिके अनुसार जप कर सकते हैं, इस सम्बन्धमें क्रमश कई मन्त्रोंकी चर्चा होगी ।

मन्त्रोंमें वासुदेव द्वादशाक्षर मन्त्र बहुत ही प्रसिद्ध है । इसीके जपसे ध्रुवको बहुत शीघ्र भगवान्के दर्शन हुए थे । पुराणोंमें इसकी महिमा भरी है । इसका स्वरूप है

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'। प्रातःकृत्य सन्ध्या-वन्दन आदिसे निवृत्त होकर इसका जप करना चाहिये। पवित्र आसनपर बैठकर तुलसी, रुद्राक्ष अथवा पद्माक्षकी मालाके द्वारा इसका जप किया जा सकता है। इसकी विधिका विस्तार तो बहुत है; परन्तु यहाँ संक्षेपमें लिखा जाता है। मन्त्रजपके पहले ऋषि, देवता और छन्दका स्मरण करना चाहिये। इस मन्त्रके ऋषि प्रजापति हैं, छन्द गायत्री है और देवता वासुदेव। इनका यथास्थान न्यास करना चाहिये। जैसे सिरका स्पर्श करते हुए 'शिरसि प्रजापतये ऋषये नमः'। मुखका स्पर्श करते हुए 'मुखे गायत्रीछन्दसे नमः'। हृदयका स्पर्श करते हुए 'हृदि वासुदेवाय देवतायै नमः'। इसके बाद करन्यास और अंगन्यास करना चाहिये। जैसे 'ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः'। 'ॐ नमः तर्जनीभ्यां स्वाहा'। 'ॐ भगवते मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ वासुदेवाय अनामिकाभ्यां हुम्'। 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय कनिष्ठाभ्यां फट्' इस प्रकार करन्यास करके इसी क्रमसे अंगन्यास भी करना चाहिये।

ॐ हृदयाय नमः। ॐ नमः शिरसे स्वाहा।

ॐ भगवते शिखायै वषट्। ॐ वासुदेवाय कवचाय हुम्।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय अस्त्राय फट्।

हो सके तो सिर, ललाट, दोनों आँखें, मुख, गला, बाहु, हृदय, कोख, नाभि, गुह्यस्थान, दोनों जानु और दोनों पैरोंमें मन्त्रके बारहों अक्षरोंका न्यास करना चाहिये। इस प्रकार न्यास करनेसे शरीर मन्त्रमय बन जाता है। सारी अपवित्रता दूर हो जाती है और मन अधिक एकाग्रताके साथ इष्टदेवके चिन्तनमें लग जाता है।

इसके पश्चात् मूर्ति-पञ्जरन्यासकी विधि है —

ललाटे—ॐ अं केशवाय धात्रे नमः ।
कुक्षौ—ॐ नम् आम् नारायणाय अर्यम्णे नमः ।
हृदि—ॐ मोम् इम् माधवाय मित्राय नमः ।
गलकूपे—ॐ भम् ईम् गोविन्दाय वरुणाय नमः ।
दक्षपार्श्वे—ॐ गम् उम् विष्णवे अंशवे नमः ।
दक्षिणांसे—ॐ वम् ऊम् मधुसूदनाय भगाय नमः ।
गलदक्षिणभागे—ॐ तेम् एम् त्रिविक्रमाय विवस्वते नमः ।
वामपार्श्वे—ॐ वाम् ऐम् वामनाय इन्द्राय नमः ।
वामांसे—ॐ सुम् ओम् श्रीधराय पूष्णे नमः ।
गलवामभागे—ॐ देम् औम् हृषीकेशाय पर्जन्याय नमः ।
पृष्ठे—ॐ वाम् अम् पद्मनाभाय त्वष्ट्रे नमः ।
ककुदि—ॐ यम् अः दामोदराय विष्णवे नमः ।

इस मूर्ति-पञ्जरन्यासके द्वारा अपने सर्वाङ्गमें भगवन्मूर्तियोंकी स्थापना करके किरीटमन्त्रसे व्यापकन्यास करते हुए भगवान्‌को नमस्कार करना चाहिये । किरीटमन्त्र यह है—

किरीटकेयूरहारमकरकुण्डलशङ्खचक्रगदाम्भोजहस्त-पीताम्बरधरश्रीवत्साङ्कितवक्षःस्थलश्रीभूमिसहितस्वात्म-ज्योतिर्मयदीप्तकराय सहस्रादित्यतेजसे नमः ।

इसके पश्चात् 'ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्', इस मन्त्रसे दिग्बन्ध करके यह भावना करे कि भगवान्‌का सुदर्शन चक्र चारों ओरसे मेरी रक्षा कर रहा है । मेरा शरीर और मन पवित्र हो गया है, मेरे ध्यान और जपमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पड़ेगी । मेरे चारों ओर, मेरे शरीरमें और मेरे हृदयमें भी भगवान्‌के ही

दर्शन हो रहे हैं। इस प्रकारकी भावनामें तन्मय हो जाना चाहिये। इस मन्त्रका ध्यान इस प्रकार बतलाया गया है—

> विष्णुं शारदचन्द्रकोटिसदृशं शंख रथाङ्गं गदा
> मम्भोजं दधतं सिताब्जनिलयं कान्त्या जगन्मोहनम्।
> आबद्धाङ्गदहारकुण्डलमहामौलिं स्फुरत्कङ्कणं
> श्रीवत्साङ्कमुदारकौस्तुभधरं वन्दे मुनीन्द्रैः स्तुतम्॥

'भगवान् वासुदेवका श्रीविग्रह शरत्कालीन करोड़ों चन्द्रमाओंके समान समुज्ज्वल, शीतल एवं मधुर है। वे अपनी चारों भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए हैं। वे श्वेत कमलपर विराजमान हैं और उनकी शरीर-कान्तिसे तीनों लोक मोहित हो रहे हैं। वे बाजूबन्द, हार, कुण्डल, किरीट और कङ्कण आदि नाना अलंकारोंसे अलङ्कृत हैं। उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्स चिह्न है और कण्ठमें कौस्तुभमणि शोभा पा रही है। बड़े-बड़े ऋषि मुनि सामस्वरसे उनकी स्तुति कर रहे हैं। ऐसे वासुदेव भगवानकी मैं वन्दना करता हूँ।'

ध्यानमें भगवानकी षोडशोपचारसे पूजा करनी चाहिये। मानसपूजाके पश्चात् दक्षिणाम सर्वतोभावेन आत्मसमर्पण कर देना चाहिये। भगवानसे प्रार्थना करनी चाहिये कि 'हे प्रभो! यह शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और आत्मा—जो कुछ मैं हूँ अथवा जो कुछ मेरा है–सब तुम्हारा ही है। भ्रमवश इसे मैंने अपना मान लिया था और अपनेको तुमसे पृथक् कर बैठा था। अब ऐसी कृपा कीजिये कि जैसा मैं तुम्हारा हूँ वैसा ही तुम्हारा स्मरण करता रहूँ। कभी एक क्षणके लिये भी तुम्हें न भूलूँ। तुम्हारा भजन हो, तुम्हारे मन्त्रका जप हो और तुम्हारा ही चिन्तन हो। मैं एकमात्र तुम्हारा ही हूँ।'

समय रुचि और श्रद्धा हो तो बाह्य उपचारोंसे भी भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। उसके पश्चात् स्मरण करते हुए द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये। जप करते समय माला किसीको दिखनी नहीं चाहिये। तर्जनीसे मालाका स्पर्श नहीं होना चाहिये। मन्त्र दूसरेके कानमें नहीं पड़ना चाहिये। बारह लाखका एक अनुष्ठान होता है। अन्तमें दशांश हवन करनेकी विधि है और उसका दशांश तर्पण तथा तर्पणका दशांश ब्राह्मण-भोजन है। यदि हवन आदि करनेकी शक्ति और सुविधा न हो तो जितना हवन करना हो उसका चौगुना जप और करना चाहिये। इस विधिके अनुसार श्रद्धापूर्वक यम-नियमका पालन करते हुए अनुष्ठान करनेसे अवश्य-अवश्य मनोवाञ्छित फलकी सिद्धि होती है। भगवान्‌के दर्शनकी लालसा करनेपर भगवान् वासुदेवके दिव्य दर्शन हो सकते हैं। और निष्कामभावसे केवल भगवत्प्रीत्यर्थ करनेसे भगवत्प्रेम या मोक्षकी प्राप्ति होती है।

'ॐ नमो नारायणाय' यह अष्टाक्षर मन्त्र बहुत ही प्रसिद्ध है। यह सिद्ध मन्त्र है, इसके जपसे अर्थ, काम, धर्म, मोक्ष चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। अन्तःकरण शुद्ध होता है; कृपा करके भगवान् दर्शन देते हैं और भगवत्प्रेमकी उपलब्धि होती है। अनेकों महापुरुषोंको इसके जपसे भगवान्‌के साक्षात् दर्शन हुए हैं। स्नान, सन्ध्या आदिसे निवृत्त होकर पवित्रताके साथ एक आसनपर बैठकर इसका जप किया जाता है। बोलकर जप करनेकी अपेक्षा मन-ही-मन जप करना अच्छा है। जपके पूर्व वैष्णवाचमन करने की विधि है। वैष्णवाचमनकी विधि इस प्रकार है—

ॐ केशवाय नमः, ॐ नारायणाय नमः, ॐ माधवाय नमः, इन मन्त्रोंसे दाहिने हाथको गौके कानके समान करके एक-एक बूँद जल तीन बार पीवे।

ॐ गोविन्दाय नम, ॐ विष्णवे नम, इनसे हाथ धोवे।

ॐ मधुसूदनाय नम, ॐ त्रिविक्रमाय नम, इनसे दोना अगूठे धो ले।

ॐ वामनाय नम, ॐ श्रीधराय नम, इनसे मुख धोवे।

ॐ हृषीकेशाय नम, इससे हाथ धोवे।

ॐ पद्मनाभाय नम, इससे पैरोंपर जल छिड़के।

ॐ दामोदराय नम, इससे सिर पोंछ ले।

ॐ सकर्षणाय नम, इससे मुँहका स्पर्श करे।

ॐ वासुदेवाय नम, ॐ प्रद्युम्नाय नम इससे अगूठा और तर्जनीके द्वारा नाकका स्पर्श करे।

ॐ अनिरुद्धाय नम, ॐ पुरुषोत्तमाय नम, इनसे अगूठा और अनामिकाके द्वारा दोनों आँखोंका स्पर्श करे।

ॐ अधोक्षजाय नम, ॐ नृसिंहाय नम, इनसे अगूठा और अनामिकाके द्वारा दोनों कानोंका स्पर्श करे।

ॐ अच्युताय नम, इससे अगूठा और कनिष्ठिकाके द्वारा नाभिका स्पर्श करे।

ॐ जनार्दनाय नम, इससे हथेलीसे हृदयका स्पर्श करे।

ॐ उपेन्द्राय नम इससे अगुलियोंके अग्रभागसे शिखा स्पर्श करे।

ॐ हरये नम, ॐ विष्णवे नम, इससे दोनो हाथ टेढ़े करके एक दूसरेका पखुरा (कवच) स्पर्श करे।

श्रद्धापूर्वक किये हुए इस वैष्णवाचमनसे बाह्य और अन्तरका मैल धुल जाता है और अभ्यास हो जानेपर सर्वत्र भगवान् नारायणका स्पर्श प्राप्त होने लगता है। इसके बाद सामान्य अर्घ्यदानसे लेकर मातृकान्यासपर्यन्त विधि हो सके तो करनी चाहिये और केशवकीर्त्यादिन्यास भी करना चाहिये। केशवकीर्त्यादिन्यास है तो कुछ लम्बा परन्तु बड़ा ही लाभदायक है। यह न्यास सिद्ध हो जाय तो साधक बहुत शीघ्र सफलमनोरथ हो जाता है। वह पवित्रताकी चरम सीमापर पहुँच जाता है। इस न्यासमें अँगुलियोंका निर्देश है। १ को अँगूठा और ५ को कनिष्ठिका समझना चाहिये। जहाँ दो-तीन संख्याएँ एक साथ ही हों वहाँ उन सब अँगुलियोंसे एक साथ ही स्पर्श करना चाहिये।*

ललाटमें—ॐ अं केशवाय कीर्त्यै नमः। १, ४।
मुखमें—ॐ आं नारायणाय कान्त्यै नमः। २, ३, ४।
दाहिने नेत्रमें—ॐ इं माधवाय तुष्ट्यै नमः १, ४।
बायें नेत्रमें—ॐ ईं गोविन्दाय पुष्ट्यै नमः १, ४।
दाहिने कानमें—ॐ उं विष्णवे धृत्यै नमः। १।
बायें कानमें—ॐ ऊं मधुसूदनाय शान्त्यै नमः। १।
दाहिने कानमें—ॐ ऋं त्रिविक्रमाय क्रियायै नमः १, ५।
बायीं नाकमें—ॐ ॠं वामनाय दयायै नमः। १, ५।
दाहिने गालपर—ॐ ऌं श्रीधराय मेधायै नमः। २, ३, ४।
बायें गालपर—ॐ ॡं हृषीकेशाय हर्षायै नमः। २, ३, ४।
ओष्ठमें—ॐ एं पद्मनाभाय श्रद्धायै नमः। ३।

* जिन्हें किसी सांसारिक पदार्थोंकी कामना हो, उन्हें प्रत्येक न्यासमन्त्रमें ॐ के पश्चात् 'श्रीं' जोड़ लेना चाहिये।

अधरमें—ॐ ऐं दामोदराय लज्जायै नमः । ३ ।
ऊपरके दाँतोंमें—ॐ ओं वासुदेवाय लक्ष्म्यै नमः । ३ ।
नीचेके दाँतोंमें—ॐ औं संकर्षणाय सरस्वत्यै नमः । ३ ।
मस्तकमें—ॐ अं प्रद्युम्नाय प्रीत्यै नमः । ३ ।
मुखमें—ॐ अः अनिरुद्धाय रत्यै नमः । २, ४ ।
बाहुमूलसे लेकर—ॐ कं चक्रिणे जयायै नमः, —ॐ खं
अंगुलीतक— गदिने दुर्गायै नमः, ॐ गं शार्ङ्गिणे,
(दाहिने) —प्रभायै नमः, ॐ घं खड्गिने सत्यायै नमः,
ॐ ङं शङ्खिने चण्डायै नमः । ३, ४, ५ ।
बाहुमूलसे लेकर—ॐ चं हलिने वाण्यै नमः, ॐ छं अंगुलीतक
(बायें) मुशलिने विलासिन्यै नमः, ॐ जं शूलिने विजयायै
नमः, ॐ झं पाशिने विरजायै नमः, ॐ ञं अंकुशिने
विश्वायै नमः । १ ।
पादमूलसे लेकर—ॐ टं मुकुन्दाय विनदायै नमः,
अंगुलियों तक दाहिने—ॐ ठं नन्दजाय सुनन्दायै नमः,
—ॐ डं नन्दिने स्मृत्यै नमः,
—ॐ ढं नराय श्रद्धयै नमः,
—ॐ णं नरकजिते समृध्यै नमः । १ ।
पादमूलसे लेकर—ॐ तं हरये शुद्धयै नमः,
अंगुलियों तक (बायें)—ॐ थं कृष्णाय बुद्धये नमः,
—ॐ दं सत्याय भक्त्यै नमः,
—ॐ धं सात्वताय मत्यै नमः ।
—ॐ नं शौरये क्षमायै नमः । १ ।

दाहिनी बगलमें—ॐ पं शूराय रमायै नमः । १ ।
बायीं बगलमें—ॐ फं जनार्दनाय उमायै नमः । १ ।
पीठमें—ॐ बं भूधराय क्लेदिन्यै नमः । १ ।
नाभिमें—ॐ भं विश्वमूर्त्यै क्लिन्नायै नमः । २,३,४,५ ।
पेटमें—ॐ मं वैकुण्ठाय वसुदायै नमः । १, ५ ।
हृदयमें—ॐ यं त्वगात्मने पुरुषोत्तमाय वसुधायै नमः । १,५ ।
दाहिने कंधेपर—ॐ रं असृगात्मने बलिने परायै नमः । १,५ ।
गर्दनपर—ॐ लं मांसात्मने बलानुजाय परायणायैनमः । १,५ ।
बायें कंधेपर—ॐ वं मेदात्मने बालाय सूक्ष्मायै नमः । १,५ ।
हृदयसे लेकर दाहिने—ॐ शं अस्थ्यात्मने वृषघ्नाय,
हाथ तक—सन्ध्यायै नमः । १—५ ।
हृदयसे लेकर बायें हाथ तक—ॐ षं मज्जात्मने वृषाय प्रज्ञायै नमः । १, ५ ।
हृदयसे बायें पैरतक—ॐ हं प्राणात्मने वराहाय निशायै नमः । १,५ ।
हृदयसे पेटतक—ॐ ळं जीवात्मने विमलाय अमोघायै नमः । १,५ ।
हृदयसे लेकरमुखतक—ॐ क्षं क्रोधात्मने नृसिंहाय विद्युतायै नमः । १५ ।

इनका यथास्थान न्यास करके ऐसा ध्यान करना चाहिये कि मेरे स्पर्श किये हुए अंगोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी श्यामवर्णके भगवान् नारायण पृथक्-पृथक् विराजमान हैं । उनके साथ वर्षाकालीन बादलमें चमकती हुई बिजलीके समान उनकी पृथक्-पृथक् शक्तियाँ शोभायमान हो रही हैं । कभी-कभी उनकी मुस्कराहटसे दाँत दीख जाते हैं और बड़ा ही सुन्दर सुखद शीतल प्रकाश चारों ओर फैल जाता है । मेरे शरीरमें; रोम-रोममें भगवान् विष्णुका

निवास है। मेरे हृदयकी एक-एक वृत्तिसे भगवान् नारायणका साक्षात् सम्बन्ध है। **मेरा हृदय पवित्र हो गया है, अब इसमें स्थायी रूपसे भगवान् विष्णुके दर्शन हुआ करेंगे। अब पाप, अपवित्रता और अशान्ति मेरा स्पर्श नहीं कर सकती।** इस न्यासके फलमें बतलाया गया है कि यह केशवादिन्यास न्यासमात्रसे ही साधकको अच्युत बना देता है अर्थात् वह किसी भी विघ्नके कारण साधनासे च्युत नहीं होता। भगवान्के चिन्तनमें तल्लीन होकर भगवन्मय हो जाता है।

इसके बाद नारायण अष्टाक्षर मन्त्रके जपका विनियोग करना चाहिये। हाथमें जल लेकर ॐ नारायणाष्टाक्षरमन्त्रस्य प्रजापति ऋषि गायत्री छन्दः अर्धलक्ष्मीहरिर्देवता भगवत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोग.। जल छोड़ दें। प्रजापति ऋषिका सिरमें, गायत्री छन्दका मुखमें और अर्धलक्ष्मीहरिदेवताका हृदयमें न्यास कर लें। नारायण अष्टाक्षर मन्त्रका न्यास केवल श्री बीजसे ही होता है। जैसे 'ॐ श्री अंगुष्ठाभ्यां नमः।' 'ॐ श्री तर्जनीभ्यां स्वाहा' इत्यादि। करन्यासकी भाँति ही अंगन्यास भी कर लेना चाहिये। इसका ध्यान बड़ा ही सुन्दर है—

> उद्यत्प्रद्योतनशतरुचिं तप्तहेमावदातं
> पार्श्वद्वन्द्वे जलधिसुतया विश्वधात्र्या च जुष्टम्।
> नानारत्नोल्लसितविविधाकल्पमापीतवस्त्रं
> विष्णुं वन्दे दरकमलकौमोदकीचक्रपाणिम् ॥

'भगवान् विष्णु उगते हुए सैकड़ों सूर्यके समान अत्यन्त तेजस्वी, तपाये हुए सोनेकी भाँति अंगकान्तिवाले और दोनों ओर लक्ष्मी एवं पृथ्वीके द्वारा सेवित हैं। अनेकों प्रकारके रत्नजटित

भूषणोंसे भूषित हैं एवं फहराते हुए पीताम्बरसे परिवेष्टित हैं। चार हाथोंमें शख, चक्र, गदा और पद्म शोभायमान हो रहे हैं और मन्द मन्द मुस्कराते हुए मेरी ओर देख रहे हैं। ऐसे भगवान् विष्णुकी मैं वन्दना करता हूँ।' इस प्रकारका ध्यान जब जम जाय तब मानस पूजा करनी चाहिये। मानस पूजामें ऐसी भावना की जाय कि सम्पूर्ण जलतत्त्वके द्वारा मैं भगवान्के चरण पखार रहा हूँ और सम्पूर्ण रसतत्त्वके द्वारा उन्हें रसीले व्यञ्जन अर्पण कर रहा हूँ, सम्पूर्ण पृथ्वीतत्त्वका आसन और सम्पूर्ण गन्धतत्त्वकी दिव्य सुगन्ध निवेदन कर रहा हूँ। सम्पूर्ण अग्नितत्त्वका दीपदान एवं आरति कर रहा हूँ तथा सम्पूर्ण रूपतत्त्वसे युक्त वस्त्राभूषण भगवान्को पहना रहा हूँ। सम्पूर्ण वायुतत्त्वसे भगवान्को व्यजन डुला रहा हूँ एवं सम्पूर्ण स्पर्शतत्त्वसे भगवान्के चरण दबा रहा हूँ। सम्पूर्ण आकाशतत्त्वमें भगवान्को विहार करा रहा हूँ एवं सम्पूर्ण शब्दतत्त्वसे भगवान्की स्तुति कर रहा हूँ। इस प्रकार पूजा करते करते अन्तमें जो कुछ अवशेष रह जाय मैं, मेरा यह सब दक्षिणास्वरूप भगवान्के चरणोंमें चढा देना चाहिये और अनुभव करना चाहिये कि यह सम्पूर्ण विश्व, मैं, मेरा जो कुछ है सब भगवान्का है, सब भगवान् ही हैं। दूसरे प्रकारसे भी मानस पूजा कर सकते हैं।

जब ध्यान टूटे तब सम्भव हो तो बाह्य पूजा करें, नहीं तो ऐसे ही मन्त्रका जप करना चाहिये। सोलह लाख जप करनेसे इसका अनुष्ठान पूरा होता है। यह मन्त्र सिद्ध हो जानेपर कल्पवृक्षस्वरूप बतलाया गया है। इसका दशांश हवन करना चाहिये या दशांशका चौगुना जप। वृहत् अनुष्ठान करना हो तो किसी जानकारसे सलाह भी ले लेना चाहिये। इतनी बात अवश्य है कि चाहे जैसे भी हो इसके जपसे हानि नहीं, लाभ ही-लाभ है।

(२)

'ॐ रां रामाय नमः' यह षडक्षर राममन्त्र बहुत ही प्रसिद्ध है। शास्त्रोंमें इसे चिन्तामणि नामसे कहा गया है। इसके जपसे भगवान् राम प्रसन्न होते हैं। सकाम साधकोंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण कर देते हैं। निष्काम साधकोंको यथाधिकार भगवत्प्रेम या ज्ञान दे देते हैं। इस मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि हैं, गायत्री छन्द है और राम देवता हैं। इनका यथास्थान न्यास कर लेना चाहिये। ॐ रां अंगुष्ठाभ्याम् नमः, ॐ रीं तर्जनीभ्याम् स्वाहा, ॐ रूं मध्यमाभ्याम् वषट्, ॐ रैं अनामिकाभ्याम् हुम्, ॐ रौं कनिष्ठिकाभ्याम् वौषट्, ॐ रः करतलकरपृष्ठाभ्याम् फट्, इसी प्रकार हृदय, सिर, शिखा, नेत्र, कवच और अस्त्रमें भी न्यास कर लेना चाहिये। फिर मन्त्रन्यास करना चाहिये। ब्रह्मरन्ध्रमें ॐ रां नमः, भौंहोंके बीचमें ॐ रां नमः, हृदयमें ॐ मां नमः, नाभिमें ॐ यं नमः, लिंगमें ॐ नं नमः, पैरोंमें ॐ मं नमः, इसके पश्चात् ॐ नमो भगवते वासुदेवाय मन्त्रकी विधिमें बतलाये हुए मूर्तिपञ्जर और किरीटन्यास करना चाहिये। इस मन्त्रका ध्यान निम्नलिखित है—

> कालाम्भोधरकान्तिकान्तमनिशं वीरासनाध्यासिनं
> मुद्रां ज्ञानमयीं दधानमपरं हस्ताम्बुजं जानुनि।
> सीतां पार्श्वगतां सरोरुहकरां विद्युन्निभां राघवं
> पश्यन्तं मुकुटाङ्गदादिविविधाकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे॥

'भगवान् श्रीरामके शरीरकी कान्ति वर्षाकालीन मेघके समान श्यामल है। एक-एक अङ्गसे सौन्दर्य टपक रहा है। वीरासनसे बैठे हुए हैं, एक हाथ घुटनेपर रखा हुआ है और दूसरा हाथ ज्ञानमुद्रायुक्त है। हाथमें कमल लिये श्रीसीताजी पास हैं

हुई हैं। उनके शरीरसे बिजलीके समान प्रकाश निकल रहा है। भगवान् श्रीराम उनकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देख रहे हैं। मुकुट, बाजूबन्द आदि दिव्य सुन्दर सुन्दर आभूषण शरीरपर जगमगा रहे हैं। ऐसे भगवान् रामकी मैं सेवा कर रहा हूँ।' ध्यानके पश्चात् मानस सामग्रीसे भगवान्की पूजा करनी चाहिये। पूजाकी विधि अन्यत्र देखनी चाहिये। इस मन्त्रका अनुष्ठान छः लाखका होता है, दशांश हवन होता है।

इस मन्त्रके कई भेद हैं। जैसे ॐ रां रामाय नमः, ॐ क्लीं रामाय नमः, ॐ ह्रीं रामाय नमः, ॐ ऐं रामाय नमः, ॐ श्रीं रामाय नमः, ॐ रामाय नमः, इनके ऋषि भी पृथक् पृथक् हैं। क्रमशः ब्रह्मा, सम्मोहन, शक्ति, दक्षिणामूर्ति, अगस्त्य, श्रीशिव। दूसरे मन्त्रके ऋषिके सम्बन्धमें मतभेद है, कहीं कहीं सम्मोहनके स्थानमें विश्वामित्रका नाम आता है। इन मन्त्रोंके न्यास, ध्यान, पूजा आदि पूर्वोक्त मन्त्रके समान ही हैं। सब के सब सिद्ध मन्त्र हैं। इनसे अभीष्टकी सिद्धि होती है।

(४)

भगवान् रामका दशाक्षर मन्त्र है 'ॐ हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा' इसके वशिष्ठ ऋषि हैं, विराट् छन्द है, सीतानाथ भगवान राम देवता हैं। इसका बीज हुं है और स्वाहा शक्ति है। करन्यास और अङ्गन्यास क्लींसे करना चाहिये। ॐ क्लीं अङ्गुष्ठाभ्याम् नमः इत्यादि। इसके दस अक्षरोंका न्यास शरीरके दस अङ्गोंमें होता है। जैसे मस्तकमें 'ॐ हुं नमः', ललाटमें 'ॐ जां नमः' भौंहोंके बीचमें 'ॐ नं नमः' इसी प्रकार शेष अक्षरोंका भी तालु, कण्ठ, हृदय, नाभि, ऊरु, जानु और दोनों पैरोंमें न्यास कर लेना चाहिये। इसका ध्यान निम्न लिखित है—

अयोध्यानगरे रम्ये रत्नसौन्दर्यमण्डपे ।
मन्दारपुष्पैराबद्धवितानतोरणान्विते ॥
सिंहासनसमारूढं पुष्पकोपरि राघवम् ।
रक्षोभिर्हरिभिर्देवैर्दिव्ययानगतैः शुभैः ॥
संस्तूयमानं मुनिभिः सर्वज्ञैः परिशोभितम् ।
सीतालङ्कृतवामाङ्गं लक्ष्मणेनोपसेवितम् ॥
श्यामं प्रसन्नवदनं सर्वाभरणभूषितम् ।

'मनोहर अयोध्यानगरीमें एक अत्यन्त सुन्दर रत्नोंका बना मंडप है। कल्पवृक्षके पुष्पोंसे उसकी चाँदनी व तोरण बने हुए हैं। सिंहासनके ऊपर बिछे हुए सुन्दर फूलोंपर भगवान् राम बैठे हुए हैं। राक्षस, वानर और देवगण दिव्य विमानोंसे आ आकर उनकी स्तुति कर रहे हैं। सर्वज्ञ मुनिगण चारों ओर रहकर उनकी सेवा कर रहे हैं। बायीं ओर माता सीता विराजमान हैं। लक्ष्मण निरन्तर सेवामें संलग्न हैं। भगवान् रामका शरीर श्याम वर्णका है। मुखमण्डल प्रसन्न है और वे सब प्रकारके दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके पूर्वोक्त पद्धतिसे मानस पूजा और बाह्य पूजा करनी चाहिये तथा मन्त्रका जप करना चाहिये। इसका अनुष्ठान दस लाखका होता है और उसके दशांश हवनादि होते हैं।

(५)

भगवान् रामका नाम ही परम मन्त्र है। राम-राम करते रहो, किसी मन्त्रकी आवश्यकता नहीं। सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो जायँगे। राममन्त्रका जप दो प्रकारसे किया जाता है—एक तो म

और दूसरा मन्त्रबुद्धिसे। नामके जपमें किसी प्रकारकी विधि आवश्यक नहीं है। सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते फिरते राम नामका जप किया जा सकता है। परन्तु मन्त्रबुद्धिसे जो जप किया जाता है उसमें विधिकी आवश्यकता है। उसका केवल जप भी हो सकता है और उसमें कई बीजाक्षर जोड़कर भी जप करते हैं; जैसे श्रीं राम श्रीं, ह्रीं राम ह्रीं, इनके साथ स्वाहा, नमः, हुं फट् आदि भी जोड़ सकते हैं। जैसे श्रीं राम श्रीं स्वाहा, ह्रीं राम ह्रीं नमः, क्लीं हुं फट्, इसी प्रकार ऐं भी जोड़ सकते हैं। इस प्रकार पृथक् योगसे त्र्यक्षर, चतुरक्षर, षडक्षर आदि राममन्त्र बनते हैं। ये सब-के-सब मन्त्र चतुर्विध पुरुषार्थको देनेवाले हैं। राम शब्दके साथ चन्द्र और भद्र शब्द जोड़नेपर भी रामभद्र और रामचन्द्र यह चतुरक्षर मन्त्र बनते हैं। रामाय नमः, श्रीं रामाय नमः, क्लीं रामाय नमः, अं रामाय नमः, आं रामाय नमः, इस प्रकार सम्पूर्ण वर्णोंको जोड़कर पचासों प्रकारके राममन्त्र बनते हैं। रा यह रामका एकाक्षर मन्त्र है। ये सब-के सब मन्त्र भगवान्के प्रसादजनक हैं। इन सब मन्त्रोंके ब्रह्मा ऋषि हैं, गायत्री छन्द है और रामचन्द्र देवता हैं। एकाक्षर मन्त्रका अनुष्ठान बारह लाखका होता है और अन्य मन्त्रोंका छः लाखका। इनके ध्यान, पूजा आदि पूर्वोक्त षडक्षर मन्त्रके समान ही हैं। जिस साधकको भगवान्का जो लीलाविग्रह रुचे, उसीका ध्यान किया जा सकता है। भगवान् रामके रूपका वर्णन इस श्लोकमें बड़ा सुन्दर हुआ है—

दूर्वादलद्युतितनुं तरुणाब्जनेत्रं
हेमाम्बरं वरविभूषणभूषिताङ्गम्।
कन्दर्पकोटिकमनीयकिशोरमूर्तिं
पू[illegible]रथभवां म[illegible] ज[illegible]म॥

'भगवान् रामका शरीर दूर्वादलके समान साँवला है, खिले हुए कमलके समान बड़े बड़े नेत्र हैं। करोड़ों कामके समान अत्यन्त सुन्दर किशोर मूर्ति है। पीताम्बर धारण किये हुए हैं और अनेकों उत्तम आभरणोंसे उनके अंग प्रत्यङ्ग आभूषित हैं। वे सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं और माँ जानकीके जीवनधन हैं। हम प्रेमपूर्वक उनका ध्यान कर रहे हैं।'

६

भगवान् श्रीकृष्णके सैकड़ों मन्त्र प्रसिद्ध हैं। यहाँ केवल कुछ गिने-चुने मन्त्रोंकी ही चर्चा की जायगी। श्रीकृष्णका दशाक्षर मन्त्र बड़े ही महत्त्वका माना जाता है। दशाक्षर-मन्त्र है 'गोपीजनवल्लभाय स्वाहा'। परन्तु इसके पूर्व 'क्लीं' जोड़नेका विधान है तथा बिना प्रणवके कोई मन्त्र होता ही नहीं है। इसलिये जपके समय 'ॐ क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा', इस प्रकार जप करना चाहिये। प्रातःकृत्य, विष्णवाचमन आदि करके इस मन्त्रका विशेष प्राणायाम करना चाहिये। इस मन्त्रका प्राणायाम दो प्रकारका होता है— एक तो क्लींके द्वारा और दूसरा दशाक्षर मन्त्रके द्वारा। दोनोंके नियम पृथक् पृथक् हैं। एक बार क्लींका उच्चारण करके दाहिनी नासिकासे वायु निकाल दे फिर सात बार जप करते हुए वायुको बायीं नाकसे खींचे, बीस बार जप करनेतक वायुको रोक रखे और फिर एक बार उच्चारण करके बायीं नाकसे वायु छोड़ दे। फिर दक्षिणसे पूरक, दोनोंसे कुम्भक एवं दक्षिणसे रेचक इस प्रकार तीन प्राणायाम करे। यदि मन्त्रसे ही प्राणायाम करना हो तो २७ बार पूरक, कुम्भक, रेचक करना चाहिये।

इस मन्त्रके ऋषि नारद हैं, छन्द गायत्री है और देवता भगवान् श्रीकृष्ण हैं। इसका बीज क्लीं है और स्वाहा शक्ति है। इनका क्रमशः सिर, मुख, हृदय, गुह्य और पादमें न्यास करना

चाहिये। मन्त्रकी अधिष्ठात्री देवी दुर्गा है। जप प्रारम्भ करनेके पूर्व उसका स्मरण और नमन कर लेना चाहिये। इसके न्यासकी विधि बहुत ही विस्तृत है। सक्षेपसे मूर्तिपञ्जरन्यास जो कि 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्रकी विधिमें लिखा गया है कर लेना चाहिये। ॐ गों नमः, ॐ पीं नमः, ॐ ज नमः, इस प्रकार मन्त्रके प्रत्येक अक्षरके साथ ॐ और नमः जोड़कर हृदय, सिर शिखा, सर्वाङ्ग, दिशाएँ, दक्षिण पार्श्व, वाम पार्श्व, कटि, पीठ, और मूर्धामें न्यास कर लेना चाहिये। इसका पंचागन्यास निम्न लिखित है—

ॐ आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः।
ॐ विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा।
ॐ सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट्।
ॐ त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा कवचाय हुम्।
ॐ असुरान्तकचक्राय स्वाहा अस्त्राय फट्।

इसके पश्चात् द्वादशाक्षरमन्त्रोक्त किरीट, केयूरादि मन्त्रसे व्यापकन्यास करके ॐ सुदर्शनाय अस्त्राय फट्, इससे दिग्बन्ध करके सम्पूर्ण बाधा-विघ्ननिवारक अपने चारों ओर रक्षकरूपसे स्थित चक्रभगवान्‌का चिन्तन करना चाहिये। इसके बाद ध्यान करना चाहिये।

रमणीय वृन्दावन-धाममें कमलनयन श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण प्रेममूर्ति गोपकन्याओंकी आँखें उनके सुन्दर साँवरे मुख-कमलपर लगी हैं और भगवान् श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये उनका हृदय उत्सुक हो रहा है। वे इतनी प्रेममुग्ध हो गयी हैं कि उन्हें अपने तन बदनकी सुधि नहीं है, गला रुँध गया है, बोलतक नहीं सकती। उनके शरीरके आभूषण जगमगा रहे हैं, वे ज्ञ

प्रेमगर्भित दृष्टिसे मुस्कराकर श्रीकृष्णकी ओर देखती हैं तो उनके लाल-लाल अधरोंपरसे दाँतोंकी उज्ज्वल किरणें नाच उठती हैं। भगवान् श्रीकृष्णका मुख चन्द्रमाके समान खिले हुए नीले कमलके समान शोभायमान हो रहा है। सिरपर मुकुटमें मयूरपिच्छ लगा हुआ है, वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न है और कौस्तुभमणि पहने हुए हैं। उनके सुन्दर शरीरपर पीताम्बर फहरा रहा है और शरीरकी ज्योतिसे उनके दिव्य आभूषणोंकी कान्ति भी मलिन पड़ रही है। वे बड़े ही मधुर स्वरसे बाँसुरी बजा रहे हैं। गौएँ एकटकसे उन्हें देख रही हैं। एक ओर ग्वाल-बाल घेरे हुए हैं तो दूसरी ओर गोपियाँ भी अपने नेत्रकमलोंसे उनकी पूजा कर रही हैं। ऐसे भगवान् श्रीकृष्णका हम निरन्तर चिन्तन करते रहें।

फुल्लेन्दीवरकान्तिमिन्दुवदनं बर्हावतंसप्रियं
श्रीवत्साङ्कमुदारकौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम्।
गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुं गोगोपसंघावृतं
गोविन्दं कलवेणुवादनपरं दिव्याङ्गभूषं भजे॥

मानस पूजा और सम्भव हो तो बाह्य पूजा करनेके पश्चात् मन्त्रका जप करना चाहिये। इसका अनुष्ठान दस लाखका होता है। उसका दशांश हवन आदि। इतना स्मरण रखना चाहिये कि यहाँ जो बातें लिखी जा रही हैं वे बहुत ही साधारण, संक्षिप्त और नित्य पूजाकी हैं। जिन्हें बृहत् अनुष्ठान करना हो वे किसी जानकारसे पूरी विधि जान लें तो बहुत ही अच्छा हो। यों तो भगवान् श्रीकृष्णके मन्त्रजपसे लाभ-ही-लाभ है।

७

श्रीकृष्ण दशाक्षर मन्त्रके साथ श्रीं, ह्रीं, क्लीं, जोड़ देनेपर त्रयोदशाक्षर मन्त्र बन जाता है। इन तीनोंको भिन्न-भिन्न क्रममें जोड़नेपर त्रयोदशाक्षर मन्त्र तीन प्रकारका हो जाता है, यथा—

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।
ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।

इन तीनोंकी विधि पूर्वोक्त दशाक्षर मन्त्रकी भाँति ही है ऋषि नारद, छन्द विराट् गायत्री और श्रीकृष्ण देवता। बीजशक्ति और मन्त्राधिष्ठात्री देवता पूर्ववत्। इनका अनुष्ठान पाँच लाखका है होता है। ये मन्त्र सर्वार्थसाधक, भगवत्प्रसादजनक और महापुरुषोंके द्वारा अनुभूत हैं। श्रद्धा विश्वासके साथ इनमें लग जानेसे महान् फलकी प्राप्ति होती है। इन मन्त्रोंका ध्यान भी दशाक्षर मन्त्रके समान ही करना चाहिये। किसी किसीके मतसे दूसरे और तीसरे मन्त्रोंके ध्यान भिन्न प्रकारके हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाका चिन्तन होना चाहिये। पूर्वोक्त ध्यानपर ही अधिकाश लोग ध्यान देते हैं।

(८)

गोपालतापिनी उपनिषद्का अष्टादशाक्षर मन्त्र तो बहुत ही प्रसिद्ध सिद्ध मन्त्र है। वह है 'ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा'। प्रातः कृत्यसे लेकर सम्पूर्ण क्रियाकलाप करके ऋष्यादिन्यास करना चाहिये। इसके भी ऋषि नारद हैं, गायत्री छन्द है, और श्रीकृष्ण देवता हैं। क्लीं बीज और स्वाहा शक्ति है। पूरे मन्त्रका उच्चारण करके तीन बार व्यापकन्यास कर लेना चाहिये। इसका करन्यास निम्नलिखित है—

ॐ क्लीं कृष्णाय अंगुष्ठाभ्याम् नमः।
ॐ गोविन्दाय तर्जनीभ्याम् स्वाहा।
ॐ गोपीजन मध्यमाभ्याम् वषट्।
ॐ वल्लभाय अनामिकाभ्याम् हुम्।
ॐ स्वाहा कनिष्ठाभ्याम् फट्।

इसी क्रमसे ॐ क्लीं कृष्णाय हृदयाय नमः आदि अंगन्यास करके अष्टादशाक्षर मन्त्रमें सिरसे पैरतक व्यापकन्यास कर लेना चाहिये। फिर ॐ क्लीं नमः, ॐ कृं नमः, ॐ ष्णा नमः, इस प्रकार मन्त्रके प्रत्येक वर्णका सिर, ललाट, आज्ञाचक्र, दोनों कान, दोनों आँख, दोनों नाक, मुख, गला, हृदय, नाभि, कटि, लिंग, दोनों जानु और दोनों जाँघोंमें न्यास कर लेना चाहिये। नेत्र, मुख, हृदय, गुह्य और चरणोंमें मन्त्रके प्रत्येक पदके साथ नमः जोड़कर न्यास कर लेना चाहिये। इस मन्त्रमें अंगन्यासका क्रम करन्यासके अनुरूप ही है। मूर्तिपञ्जरन्यास और किरीटन्यास पूर्व मन्त्रोंके अनुरूप ही इसमें भी होते हैं। ध्यान दशाक्षरमन्त्रवाला ही है। उसके पश्चात् मानस पूजा, बाह्य पूजा आदि करके जप करना चाहिये। इस मन्त्रका अनुष्ठान शीघ्र ही फलप्रद होता है। इस मन्त्रके साथ ह्रीं और श्रीं जोड़ देनेपर यही मन्त्र बीस अक्षरका हो जाता है। केवल ऋषि नारदके स्थानमें ब्रह्मा हो जाते हैं और न्यासमें 'ह्रीं श्रीं क्लीं अंगुष्ठाभ्याम् नमः' इस प्रकार कहना पड़ता है।

(९)

बालगोपालके अठारह मन्त्र बहुत ही प्रसिद्ध हैं। किसी एकके द्वारा भगवान्की आराधना करनेसे साधकका अभीष्ट सिद्ध होता है। यहाँ उन मन्त्रोंका संक्षेपरूपमें स्वरूपनिर्देश किया जाता है—

'ॐ कृः' यह एकाक्षर मन्त्र है।

'ॐ कृष्ण' यह द्व्यक्षर मन्त्र है।

'ॐ क्लीं कृष्ण' यह त्र्यक्षर मन्त्र है।

'ॐ क्लीं कृष्णाय' यह चतुरक्षर मन्त्र है।

'ॐ कृष्णाय नमः' 'ॐ क्लीं कृष्णाय क्लीं' ये दो पञ्चाक्षर मन्त्र हैं।

'ॐ गोपालाय स्वाहा', 'ॐ क्लीं कृष्णाय स्वाहा',

'ॐ क्लीं कृष्णाय नमः' ये तीन षडक्षर मन्त्र हैं।

'ॐ कृष्णाय गोविन्दाय', 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय क्लीं' ये सप्ताक्षर मन्त्र हैं।

'ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय' 'ॐ दधि भक्षणाय स्वाहा,'

'ॐ सुप्रसन्नात्मने नमः', यह अष्टाक्षर मन्त्र है।

'ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय क्लीं', 'ॐ क्लीं ग्लौं श्यामलाङ्गाय नमः' ये नवाक्षर मन्त्र हैं।

'ॐ बालवपुषे कृष्णाय स्वाहा' यह दशाक्षर मन्त्र है।

ॐ बालवपुषे क्लीं कृष्णाय स्वाहा, यह एकादशाक्षर मन्त्र है।

प्रातःकालके सारे नित्यकृत्य समाप्त होनेके पश्चात् इनमेंसे किसी एकका जप करना चाहिये। इन सब मन्त्रोंके ऋषि नारद हैं, गायत्री छन्द है और श्रीकृष्ण देवता हैं। इनका क्रमसे सिर, मुख और हृदयमें न्यास कर लेना चाहिये। करन्यास और अंगन्यास निम्नलिखित मन्त्रोंसे करना चाहिये—

ॐ क्लां अंगुष्ठाभ्यां नमः।
ॐ क्लीं तर्जनीभ्यां स्वाहा।
ॐ क्लूं मध्यमाभ्यां वषट्।
ॐ क्लैं अनामिकाभ्यां हुम्।
ॐ क्लौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्।
ॐ क्लः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

इसी क्रमसे ॐ क्ली हृदयाय नमः' इत्यादि अङ्गन्यास भी कर लेना चाहिये। इसके पश्चात् पूर्वमन्त्रोक्त भावना करके बालगोपालका ध्यान करना चाहिये। इन अठारहों मन्त्रोंका ध्यान एक ही है। यथा—

अव्याद् व्याकोषनीलाम्बुजरुचिररुणाम्भोजनेत्रोऽम्बुजस्थो
बालो जङ्घाकटीरस्थलकलितरणत्किङ्किणीको मुकुन्द।
दोर्भ्यां हैयंगवीनं दधदतिविमलं पायसं विश्ववन्द्यो
गोगोपीगोपवीतो रुरुनखविलसत्कण्ठभूषश्चिरं वः॥

'भगवान् गोपालके अङ्गकी कान्ति खिले हुए नील कमलके समान है। नेत्र रक्तकमलके समान हैं और वे बालकवेषमें कमलके ऊपर नृत्य कर रहे हैं। उनके चरणोंमें नूपुर रुनझुन कर रहे हैं और कमरमें किङ्किणीकी ध्वनि हो रही है। एक हाथमें नवनीत लिये हुए हैं और दूसरेमें अत्यन्त उज्ज्वल खीर। ये साधारण बालक नहीं, सारे संसारके वन्दनीय हैं। चारों ओरसे इन्हें गौ, ग्वाल और ग्वालिनें घेरे हुए हैं। कण्ठमें बाघके नखकी कँठुली शोभायमान है। ये सर्वदा सारे जगत्की रक्षामें तत्पर रहते हैं।' इस प्रकार ध्यान करते हुए मन ही मन भगवान्की षोडशोपचारसे पूजा करनी चाहिये। विशेष अनुष्ठानके लिये विशेष विधियाँ हैं। इनमेंसे किसी मन्त्रका अनुष्ठान एक लाखका होता है और घी, मिश्री और खीरसे दस हजार आहुतियोंका हवन होता है। हवनकी सामर्थ्य न होनेपर चालीस हजार जप और करना चाहिये। हवनकी संख्यासे ही तर्पणका भी विधान है। श्रद्धा भक्तिपूर्वक जप करनेपर ये मन्त्र अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, भगवद्दर्शन और भगवत्प्रेमको देनेवाले हैं। जो बिना श्रद्धा भक्तिके विधिपूर्वक जप करते हैं उनके अन्दर ये श्रद्धा भक्तिका संचार करनेवाले हैं।

(१०)

बालगोपालका एक दूसरा अष्टाक्षर मन्त्र है—

'ॐ गोकुलनाथाय नमः ।'

इसके ब्रह्मा ऋषि हैं, गायत्री छन्द है और श्रीकृष्ण देवता हैं। उनका यथास्थान न्यास करके मन्त्रका न्यास करना चाहिये—

ॐ गो कु अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।

ॐ ल ना तर्जनीभ्यां स्वाहा ।

ॐ था य मध्यमाभ्यां वषट् ।

ॐ नमः अनामिकाभ्यां हुम् ।

ॐ गोकुलनाथाय नमः कनिष्ठाभ्यां फट् ।

इसी प्रकार 'ॐ गो कु हृदयाय नमः' इत्यादि अङ्गन्यास भी कर लेना चाहिये। वैष्णवमन्त्रोंमें कई स्थानोंपर षडङ्गन्यासकी जगह पञ्चाङ्गन्यास ही आता है। इसके ध्यानका प्रकार निम्नलिखित है—

पञ्चवर्षमतिदृप्तमङ्गणे धावमानमतिचञ्चलेक्षणम् ।
किङ्किणीवलयहारनूपुरैरञ्जितं नमत गोपबालकम् ।

भगवान् बालगोपालकी अवस्था पाँच वर्षकी है। स्वभाव बड़ा ही चञ्चल है। आँगनमें इधर-उधर दौड़ रहे हैं। आँखें बड़ी चञ्चलताके साथ अपने भक्तोंपर कृपामृतकी वृष्टि करनेके लिये दौड़ रही हैं। किंकिणी, कङ्कण, हार, नूपुर आदि आभूषणोंसे भूषित हैं। ऐसे बालगोपालके सामने हम बड़े प्रेमसे प्रणत होते हैं।'

ऐसे ही भगवान्‌को नमस्कार करना चाहिये। इसी प्रकार ध्यान करके मानसपूजा करनी चाहिये। बालगोपालकी ऐसी ही मूर्तिकी प्रतिष्ठा करके बाह्यपूजा करनी चाहिये। इसका अनुष्ठान आठ लाखका होता है और आठ हजारका हवन होता है। जो साधक इस मन्त्रका जप करता है उसकी सांसारिक अभिलाषाएँ भी पूरी होती हैं और भगवान् तो मिलते ही हैं, परन्तु जहाँतक हो सके सांसारिक अभिलाषाओंकी पूर्तिके लिये इन मन्त्रोंका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

बालगोपालका एक दूसरा मन्त्र है—'ॐ क्लीं कृष्ण क्लीं।' इसके ऋषि आदि पूर्वोक्त मन्त्रके ही हैं और न्यास भी वैसे ही होता है। इसके ध्यानका वर्णन दूसरे प्रकारसे हुआ है—

श्रीमत्कल्पद्रुमूलोद्गतकमललसत्कर्णिकासंस्थितो यः
तच्छाखालम्बिपद्मोदरविशरदसंख्यातरत्नाभिषिक्तः
हेमाभःस्वप्रभाभिस्त्रिभुवनमखिलं भासयन् वासुदेवः
पायाद् वः पायसादोऽनवरतनवनीतामृताशीरसीम ॥

'कल्पवृक्षके मूलसे निकले हुए कमलकी सुन्दर कर्णिकापर श्रीगोपाल विराजमान हैं। इस कल्पवृक्षकी शाखाओंसे निकले हुए कमलोंसे असंख्यों रत्न झर रहे हैं और उनसे बालगोपालका अभिषेक हो रहा है। गोपालके शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान है। और उनकी अंगकान्तिसे तीनों लोक प्रकाशित हो रहे हैं।

ये गोपालरूपी वासुदेव निरन्तर पायस और मक्खनका रस लेते रहते हैं और इनका श्रीविग्रह अनन्त है। ये सर्वदा हम लोगोंकी रक्षा करें।' इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रका जप करना चाहिये। इस मन्त्रका अनुष्ठान चार लाखका होता है। चालीस

हजार हवन होता है । इस मन्त्रके दोनों 'क्लीं' में यदि रेफ जोड़ दिया जाय तो यह मन्त्रचूडामणि बन जाता है । उस मन्त्रका स्वरूप होगा—'ॐ क्रीं कृष्ण क्रीं' इसके ऋषि, देवता आदि भी पूर्वोक्त मन्त्रके समान हैं । इसका न्यास 'क्लीं' बीजसे होता है—यथा ॐ क्लीं अनुष्ठाभ्यां नमः, ॐ क्लीं हृदयाय नमः इत्यादि । इसके ध्यानका प्रकार निम्नलिखित है—

आरक्तोद्यानकल्पद्रुमतलविलसत् स्वर्णदोलाधिरूढं
गोपीभ्यां प्रेक्ष्यमाणं विकसितनवबन्धूकसिन्दूरभासम्।
बालं लोलालकान्तं कटितटविलसत्क्षुद्रघण्टाघटाढ्यं
वन्दे शार्दूलकामाङ्कुशललितगणाकल्पदीप्तं मुकुन्दम्॥

'अनुरागके रागसे रञ्जित लाल उद्यानमें कल्पद्रुमके नीचे सोनेके झूलनेपर भगवान् बालगोपाल झूल रहे हैं । दो गोपियाँ दोनों ओर खड़ी होकर धीरे-धीरे उन्हें झुला रही हैं और प्रेमभरी चितवनसे देख रही हैं । उनके शरीरकी कान्ति खिले हुए बन्धूकपुष्पके समान सिन्दूरवर्ण ा है । उनकी घुँघराली अलकें शीतल, मन्द, सुगन्ध वायुके झकोरोंसे कपोलोंपर लहरा रही हैं । कमरमें बँधे हुए घुँघरू पालनेके हिलनेसे झुनझुन कर रहे हैं। बघनहे आदिसे उनका गला बड़ा ही सुन्दर मालूम हो रहा है । ऐसे भगवान् बालगोपालको हम बार-बार वन्दना करते हैं ।'

ध्यानके पश्चात् मानपूजा करके उपर्युक्त मन्त्रका जप करना चाहिये । इसके सब विधि-विधान पहले मन्त्रके समान हैं । अनुष्ठान भी उतनेका ही होता है ।

(११)

भगवान् विष्णु, राम और कृष्णकी ही भाँति भगवान् शिवके भी अनेकों मन्त्र हैं। वास्तवमें विष्णु और शिवमें कोई भेद नहीं है। शिवके हृदय विष्णु हैं और विष्णुके हृदय शिव हैं। यदि शिव दिन-रात भगवान् विष्णुके नामका जप किया करते हैं तो भगवान् विष्णु भी शिवकी पूजा करते समय नियमित कमलोंकी संख्या पूर्ण न होनेपर अपना नेत्रतक चढ़ा देते हैं। एक होनेपर भी भिन्न भिन्न साधकोंकी रुचि भगवान्के भिन्न भिन्न रूपोंकी ओर होती है। जिनकी रुचि विष्णुमें हो वे विष्णुका मन्त्र जपें, जिनकी रुचि शिवमें हो वे शिवके मन्त्र जपें। दोनोंका फल समान है, दोनोंसे ही कामनाएँ पूर्ण होती हैं, अन्तःकरण शुद्ध होता है, परमज्ञान अथवा परमप्रेमका उदय होता है। यहाँ एक दो प्रधान मन्त्रोंकी ही चर्चा की जायगी। जो इन मन्त्रोंसे दीक्षित हों वे अथवा जिन्हें ये मन्त्र प्रिय हों वे दीक्षा लेकर अनुष्ठान कर सकते हैं।

'ॐ ह्रौं' यह शिवजीका एकाक्षर मन्त्र है। इसे शास्त्रोंमें प्रासादबीज कहा गया है। प्रातःकृत्यसे प्राणायामतकके कृत्य करके मातृकान्यासकी भाँति श्रीकण्ठादिन्यास करना चाहिये।

ॐ अं श्रीकण्ठपूर्णोदरीभ्यां नमः।
ॐ आं अनन्तविरजाभ्यां नमः।
ॐ इं सूक्ष्मशाल्मलीभ्यां नमः।
ॐ ईं त्रिमूर्तिलोलाक्षीभ्यां नमः।
ॐ उं अमरेश्वरवर्तुलाक्षीभ्यां नमः।
ॐ ऊं अर्घीशदीर्घघोणाभ्यां नमः।
ॐ ऋं भारभूतिसुदीर्घमुखीभ्यां नमः।

ॐ ॠं अतिथीशगोमुखीभ्यां नमः ।
ॐ ऌं स्थाणुकदीर्घजिह्वाभ्यां नमः ।
ॐ ॡं हरकुण्डोदरीभ्यां नमः ।
ॐ एं झिंटीशोर्ध्वमुखीभ्यां नमः ।
ॐ ऐं भूतिकेशविकृतमुखीभ्यां नमः ।
ॐ ओं सद्योजातज्वालामुखीभ्यां नमः ।
ॐ औं अनुग्रहेश्वरोल्कामुखीभ्यां नमः ।
ॐ अं अक्रूरसुश्रीमुखीभ्यां नमः ।
ॐ अः महासेनविद्यामुखीभ्यां नमः । *
ॐ कं क्रोधीशसर्वसिद्धिमहाकालीभ्यां नमः ।
ॐ खं चण्डेशसर्वसिद्धिसरस्वतीभ्यां नमः ।
ॐ गं पञ्चान्तकगौरीभ्यां नमः ।
ॐ घं शिवोत्तमत्रैलोक्यविद्याभ्यां नमः ।
ॐ ङं एकरुद्रमन्त्रशक्तिभ्यां नमः ।
ॐ चं कूर्मात्मशक्तिभ्यां नमः ।
ॐ छं एकनेत्रभूतमातृकाभ्यां नमः ।
ॐ जं चतुराननलम्बोदरीभ्यां नमः ।
ॐ झं अज्जेशद्राविणीभ्यां नमः ।
ॐ ञं सर्वनागरीभ्यां नमः ।
ॐ टं सोमेशखेचरीभ्यां नमः ।
ॐ ठं लाङ्गलिमञ्जरीभ्यां नमः । †

* अकारसे लेकर षोडश स्वरोंका न्यास कण्ठमें स्थित षोडशदल कमलपर करना चाहिये ।

† क से लेकर ठ तकके बारह वर्णोंका न्यास हृदयके द्वादशदल कमलपर करना चाहिये ।

ॐ डं दारुकरूपिणीभ्यां नमः ।
ॐ ढं अर्धनारीश्वरवीरणीभ्यां नमः ।
ॐ णं उमाकान्तकाकोदरीभ्यां नमः ।
ॐ तं आषाढिपूतनाभ्यां नमः ।
ॐ थं दण्डिभद्रकालीभ्यां नमः ।
ॐ दं अद्रियोगिनीभ्यां नमः ।
ॐ धं मीनशङ्खिनीभ्यां नमः ।
ॐ नं मेषगर्जिनीभ्यां नमः ।
ॐ पं लोहितकालरात्रिभ्यां नमः ।
ॐ फं शिखिकुब्जिकाभ्यां नमः । *
ॐ बं छगलण्डकपर्दिनीभ्यां नमः ।
ॐ भं द्विरण्डेशवज्राभ्यां नमः ।
ॐ मं महाकालजयाभ्यां नमः ।
ॐ यं त्वगात्मवालिसुमुखेश्वरीभ्यां नमः ।
ॐ रं असृगात्मभुजङ्गेशरेवतीभ्यां नमः ।
ॐ लं मांसात्मपिनाकीशमाधवीभ्यां नमः ।
ॐ वं मेदात्मखड्गीशवारुणीभ्यां नमः । †
ॐ शं अस्थ्यात्मबकेशवायवीभ्यां नमः ।
ॐ षं मज्जात्मश्वेतरक्षोविदारिणीभ्यां नमः ।
ॐ सं शुक्रात्मभृग्वीशसहजाभ्यां नमः । §

* ड से लेकर फ तकके दस वर्णोका न्यास नाभिके दशदल कमलपर करना चाहिये ।

† ब से लेकर ल तकके छः वर्णोका न्यास लिंगमूलमें स्थित षट्दल कमलपर करना चाहिये ।

§ व से लेकर स तकके वर्णोका न्यास मूलाधारके चतुर्दल कमलपर करना चाहिये ।

ॐ हं प्राणात्मनकुलीशलक्ष्मीभ्यां नमः।
ॐ लं बीजात्मशिवव्यापिनीभ्यां नमः।
ॐ क्षं क्रोधात्मसंवर्तकमायाभ्यां नमः। *

न्यास, पूजा आदिसे पवित्र होकर मन्त्रके ऋषि आदिका यथास्थान न्यास करना चाहिये। इस मन्त्रके ऋषि वामदेव हैं, पंक्ति छन्द है और सदाशिव देवता हैं। इसके करागन्यास 'ॐ ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः' इत्यादि छः दीर्घ मात्राओंसे युक्त हकारपर बिन्दु लगाकर होते हैं। इस मन्त्रका ध्यान निम्नलिखित है—

मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजवावर्णैर्मुखैः पञ्चभिः
त्र्यक्षैरञ्चितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम्।
शूलं टङ्कृपाणवज्रदहनान्नागेन्द्रघण्टाङ्कुशान्
पाशं भीतिहरं दधानममिताकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे॥

'श्रीमहादेवजीके पाँचों मुख पाँच वर्णके हैं। एक मुक्तावर्ण है, दूसरा पीतवर्ण है, तीसरा मेघवर्ण है, चौथा शुक्लवर्ण है और पाँचवाँ जपाकुसुमके समान (रक्तवर्ण) है। पाँचों मुखोंमें तीन-तीन नेत्र हैं और सबके ललाटमें अर्ध चन्द्रमा शोभायमान है। शरीरसे करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाओंके समान कान्ति निकलती रहती है। नौ हाथोंमें शूल, टङ्क (पत्थर तोड़नेकी टाँकी), खड्ग, वज्र, अग्नि, सर्प, घंटा, अङ्कुश और पाश धारण किये हुए हैं तथा दसवें हाथमें अभयमुद्रा शोभायमान है। इनके शरीरपर नाना प्रकारकी विचित्र वस्तुएँ हैं और बड़ा ही दिव्य कर्पूरके समान उज्ज्वल अंग है। मैं प्रेमसे ऐसे भगवान् शंकरका ध्यान करता हूँ।' इस प्रकार

* ह से लेकर क्ष तकके वर्णोंका न्यास आज्ञाचक्रमें करना चाहिये। (कोई कोई इस चक्रको तीन दलका मानते हैं।)

ध्यान करनेके पश्चात् मानसपूजा करनी चाहिये और अर्घ्यस्थापन करना चाहिये। शिवके अर्घ्यस्थापनमें यह विशेषता है कि शंखका प्रयोग नहीं करना चाहिये। इस मन्त्रका अनुष्ठान पाँच लाखका होता है, दशांश हवन होता है। इससे भगवान् शंकरकी प्रसन्नता सम्पन्न होती है।

(१२)

भगवान् शिवका दूसरा प्रसिद्ध मन्त्र है 'ॐ नमः शिवाय।' यह ॐकारके बिना पञ्चाक्षर है और ओंकार जोड़नेपर षडक्षर कहा जाता है। इसके वामदेव ऋषि हैं, पंक्ति छन्द है और ईशान देवता है। इनका यथास्थान न्यास कर लेना चाहिये। इसका मूर्तिन्यास निम्न प्रकारका है—

दोनों तर्जनीमें—ॐ नं तत्पुरुषाय नमः।
दोनों मध्यमामें—ॐ मं अघोराय नमः।
दोनों कनिष्ठिकामें—ॐ शिं सद्योजाताय नमः।
दोनों अनामिकामें—ॐ वां वामदेवाय नमः।
दोनों अँगूठोंमें—ॐ यं ईशानाय नमः।

इसके बाद मन्त्रके प्रत्येक वर्णसे करन्यास और अंगन्यास कर लेना चाहिये। श्रीशिवमन्त्रका व्यापक न्यास निम्नलिखित है—

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

'भगवान् शिवके शरीरकी कान्ति चाँदीके पर्वतके समान उज्ज्वल है। ललाटपर अर्ध चन्द्रमा शोभायमान है। एव रत्नराशिके-समान निर्मल अग है। दो हाथोंमें परशु और मृगचर्म धारण किये हुए हैं। एक हाथमें वरकी मुद्रा है और दूसरे हाथमें अभयकी। मुखसे प्रसन्नता टपक रही है। बाघम्बर पहने हुए कमलपर बैठे हुए हैं, पाँच मुख हैं। प्रत्येक मुखमें तीन आँखें हैं। सबका भय दूर करने के लिये उद्यत हैं और यही विश्वके बीज एव मूल कारण हैं। देवतालोग चारों ओरसे स्तुति कर रहे हैं।' ऐसे भगवान् शकरका ध्यान करना चाहिये मानसपूजाके पश्चात् मन्त्रका जप करना चाहिये। इस मन्त्रका अनुष्ठान छत्तीस लाखका होता है। साधक इसके द्वारा शीघ्रातिशीघ्र भगवान् शकरका कृपा प्रसाद प्राप्त करता है।

(१३)

श्रीहनुमान्‌जीके बहुत-से मन्त्र हैं, यहाँ केवल दो मन्त्रोंकी चर्चा की जाती है। भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे अर्जुनने इस मन्त्रका अनुष्ठान किया था। श्रीहनुमान्‌जीने प्रसन्न होकर अर्जुनको दर्शन दिया था और युद्धके समय उनके रथपर स्थित होकर रथको भस्म होनेसे बचाया था। उन्हींके कारण कर्णके बाणोंसे अर्जुनका रथ बहुत पीछे नहीं हटता था। वह मन्त्र है—'ॐ ह्रं हनुमते रुद्रात्मकाय हुं फट्।' यह द्वादशाक्षर मन्त्र है। नदीके तटपर, भगवान्‌के मन्दिरमें, निर्जन स्थानमें पर्वत या वनमें इस मन्त्रकी साधना करनी चाहिये। इस मन्त्रका ध्यान निम्नलिखित है—

महाशैलं समुत्पाट्य धावन्तं रावणं प्रति।
तिष्ठ तिष्ठ रणे दुष्ट घोररावं समुत्सृजन्॥
लाक्षारसारुणं रौद्रं कालान्तकयमोपमम्।

ज्वलदग्निलसन्नेत्रं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥
अङ्गदाद्यैर्महावीरैर्वेष्टितं रुद्ररूपिणम् ।
एवं रूपं हनूमन्तं ध्यात्वा यः प्रजपेन्मनुम् ॥
लक्षजपात् प्रसन्नः स्यात् सत्यं ते कथितं मया ।

श्रीहनुमान्‌जी बड़ा भारी पर्वत उखाड़कर रावणकी ओर दौड़ रहे हैं कि रे दुष्ट ! युद्धमें थोड़ी देर ठहर जा । लाक्षारसके समान अरुण वर्ण और प्रलयकालीन यमराजके समान भीषण श्रीहनुमान्‌जीकी आँखें धधकती हुई आगके समान जाज्वल्यमान हो रही हैं। करोड़ों सूर्यकी भाँति चमकता हुआ शरीर है, रुद्ररूपी हनुमान्‌को अङ्गदादि महावीरोंने घेर रखा है। इस प्रकार हनुमान्‌का ध्यान करके मन्त्रका जप करना चाहिये । एक लाख जप पूरा होनेपर हनुमान्‌जी साधकपर प्रसन्न होते हैं । श्रीशिवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! यह बात सर्वथा सत्य है । इस मन्त्रमें ध्यानकी प्रधानता है, एकमात्र ध्यानसे ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है ।

प्रातःकाल नदीमें स्नान करके कुशासन बिछाकर तटपर बैठ जाय और प्राणायाम एवं कराङ्गन्यास करे । तत्पश्चात् मूलमन्त्रसे आठ पुष्पाञ्जलि देकर सीतासहित भगवान् रामचन्द्रका ध्यान करते हुए ताम्रपत्रपर श्रीहनुमान्‌जीका यन्त्र अंकित करे । पहले केशरके साथ अष्टदल पद्म बनाना चाहिये। रक्त चन्दनकी कलमसे एवं घिसे हुए रक्तचन्दन से उसका निर्माण करना चाहिये। पद्मकी कर्णिकामें श्रीहनुमान्‌जीका आवाहन करे और अर्घ्य, पाद्य आदि देकर मूलमन्त्रसे गंध, पुष्प आदि समर्पण करे । कमलके आठ दलोंपर पूर्वसे लेकर ईशान कोणतक क्रमशः सुग्रीव लक्ष्मण, अंगद, नल, नील, जाम्बवान् कुमुद और केशरीकी पूजा करे । दलोंके अग्रभागमें वानरोंके लिये आठ पुष्पाञ्जलि दे । ध्यान करके एक लाख जप करे, जितने दिनोंतक

एक लाखकी संख्या पूरी न हो जाय उतने दिनोंतक ऐसा ही करना चाहिये। आखिरी दिन महान् पूजा करनी चाहिये। उस दिन एकाग्रचित्तसे तबतक जप करे जबतक श्रीहनुमान्‌जीके दर्शन न हो जायँ। साधककी दृढ़ता देखकर श्रीहनुमान्‌जी प्रसन्न होते हैं और आधीरातको साधकके सामने आकर दर्शन देते हैं। साधककी इच्छाके अनुसार वर देते हैं और उसे कृतकृत्य कर देते हैं। यह साधन बड़ा ही पवित्र और देवताओंके लिये भी दुर्लभ है।

(१४)

श्रीहनुमान्‌जीका एक दूसरा मन्त्र है 'ॐ ह्र पवननन्दनाय स्वाहा' यह दशाक्षर मन्त्र है। इसको कल्पवृक्षस्वरूप कहते हैं, इस मन्त्रके जपसे सारी अभिलाषाएँ पूरी होती हैं। इसकी विधि निम्नलिखित है। इसका नाम वीरसाधन है और यह अत्यन्त गोपनीय है।

ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर नित्यकृत्य करके नदीतटपर जाना चाहिये। वहाँ तीर्थका आवाहन करके स्नान करते समय आठ बार मूलमन्त्रका जप करना चाहिये। तत्पश्चात् बारह बार मन्त्र पढ़कर अपने ऊपर जल छिड़कना चाहिये। फिर वस्त्र पहनकर नदीके किनारे या पर्वतपर बैठकर, ॐ ह्रा अगुष्ठाभ्या नम इत्यादिसे करन्यास और ह्रा हृदयाय नम इत्यादिसे अगन्यास करे। इसकी प्राणायामविधि भी अलग है। अकारसे लेकर अः तक सब स्वरोंका उच्चारण करके बायीं नासिकासे पूरक करना चाहिये। क से लेकर म तकके पाँच वर्गके अक्षरोंका उच्चारण करके कुम्भक करना चाहिये और य से लेकर अवशेष वर्णोंका उच्चारण करके दाहिनी नासिकासे रेचक करना चाहिये। इस प्रकार तीन प्राणायाम करके मूलमन्त्रके अक्षरोंसे अंगन्यास करे। इसका ध्यान निम्नलिखित है—

ध्यायेद् रणे हनूमन्तं कपिकोटिसमन्वितम् ।
धावन्तं रावणं जेतुं दृष्ट्वा सत्वरमुत्थितम् ॥
लक्ष्मणं च महावीरं पतितं रणभूतले ।
गुरुं च क्रोधमुत्पाद्य गृहीत्वा गुरुपर्वतम् ॥
हाहाकारैः सदर्पैश्च कम्पयन्तं जगत्त्रयम् ।
आब्रह्माण्ड समाव्याप्य कृत्वा भीमं कलेवरम् ॥
इति ध्यात्वा षट् सहस्रं जपेत् ।

वीरवर लक्ष्मण रणक्षेत्रमें गिरे हुए हैं, यह दृश्य देखकर श्री हनुमान्जी करोड़-करोड़ वानरोंके साथ रणभूमिमें आकर रावणको पराजित करनेके लिये बड़े वेगसे आगे बढ़ रहे हैं। अतिशय क्रोधके कारण अपनी हुङ्कारध्वनिसे त्रिभुवनको कम्पित करते हुए हाथ में विशाल शैल लेकर आक्रमण करने जा रहे हैं। इस समय वे ब्रह्माण्डव्यापी भयङ्कर शरीर प्रकट करके स्थित हैं। ध्यानके पश्चात् मन्त्रका छः हजार जप करना चाहिये। इस मन्त्रका छः दिन तक जप करनेके पश्चात् सातवें दिन दिनरात जप करना पड़ता है। जप करनेसे रातके चौथे पहरमें बड़ा भय दिखाकर श्रीहनुमान्जी साधकके सामने प्रकट होते हैं। जो साधक धीर भावसे स्थित रह जाता है उसे वे उसकी इच्छाके अनुसार लौकिक सम्पत्ति अथवा पारलौकिक सम्पत्ति या दोनों देते हैं। ज्ञान देते हैं अथवा भगवत्प्राप्तिका मार्ग बताते हैं।

इन्द्रादि देवोंकी उपासना

हमारे पूर्वजोंका भी एक युग था। उनकी धन-सम्पत्ति पूर्ण थी, शरीर आरोग्य था, परिवार सुखी था, सबके हृदयमें शान्ति थी, ससारके व्यवहार उनके लिये क्रीड़ा कौतुक थे, उनके स्मरण करनेसे बड़े बड़े देवता आ जाते थे, इच्छामात्रसे उनका शरीर ब्रह्मलोकतक जा सकता था, उनके रथ और विमानोंकी गति अप्रतिहत थी, हजारों कोस दूरसे किसी भी वस्तुको वे देख लेते थे, सुन लेते थे, जान लेते थे, भविष्य और भूतका, दूर और निकटका व्यवधान उनके लिये नगण्य था। समस्त वस्तुओंका ज्ञान उनके करामलकवत् था। जिसपर प्रसन्न होते वरदान देते, जिसपर रुष्ट होते दण्ड भी देते। उनमें निग्रह अनुग्रहकी पूर्ण क्षमता थी। स्वर्गके देवता उनकी सहायताके लिये अपेक्षा किया करते थे। प्राचीन ग्रन्थोंमें इस बातके अनेकों प्रमाण हैं। वे केवल मनगढ़न्त नहीं, ऐतिहासिक हैं, सत्य हैं।

परन्तु आज हम कहाँ हैं? हमारे पास अपनी रहनेके लिये एक बित्ता जमीन नहीं, पेट भरनेके लिये दो रोटी नहीं, दुर्भिक्ष, महामारी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्दैव और अत्याचारसे पीड़ित होकर आज हम सुखसे सो नहीं सकते, एक क्षणके लिये मनको समाहित करके शान्तिका अनुभव नहीं कर सकते। चाहे धनी हो या गरीब, शरीरके भोगों और उपकरणोंके लिये ही इतने चिन्तित हो रहे हैं कि हम केवल स्थूलताओंके बन्धनमें ही जकड़कर मोहमस्त और त्रस्त हो रहे हैं और इसमें इतने उलझ गये हैं कि इस बातका पता ही नहीं रहा कि इन स्थूलताओं और स्थूल

बन्धनाके ऊपर हमारा एक सूक्ष्म रूप है और उसके भी सगी, साथी, सहायक और भी बहुत से लोग हैं, जिनके द्वारा शारीरिक और मानसिक दुखोंसे त्राण पाया जा सकता है और जिनके साथ सम्बन्ध कर लेनेसे लौकिक, पारलौकिक और पारमार्थिक उन्नतिको बहुत कुछ सरल बनाया जा सकता है। जो लोग केवल स्थूल शरीरको सत्य समझकर इसीको सुखी करना चाहते हैं, जो केवल स्थूल जगत्के उलझनोंमें लगे हुए हैं, यदि वे ससारमें एकच्छत्र सम्राट् हो जायें तब भी वे पूर्ण नहीं हो सकते; क्योंकि कोई-न-कोई अभाव उनके साथ लगा रहता है। कारण, स्थूल जगत्का जीवन सूक्ष्म जगत्की अपेक्षा बहुत न्यून है और हमारा हृदय स्थूल जगत्की नहीं, सूक्ष्म जगत्की वस्तु है।

अध्यात्मवादी हमें क्षमा करें। हम उनके चरणोंमें सिर रखकर प्रार्थना करते हैं कि आप जहाँ हैं वहाँसे विचार नहीं कर रहे हैं। जहाँ आपको पहुँच जाना चाहिये, वहाँसे विचार करते हैं। इस स्थूल जगत् और भगवत्प्राप्तिके बीचमें एक सूक्ष्म जगत् भी है, जो कि आध्यात्मिक उन्नतिमें सीढ़ीका काम करता है। उसकी सहायता लिये बिना आप अध्यात्मपथपर अग्रसर हो रहे हैं, इसका यह अर्थ है कि आप बिना किसी सहारेके, बिना किसी अवलम्बनके आकाशमें विचरण करना चाहते हैं। यदि आप स्थानसे ही यात्रा आरम्भ करते, जहाँ कि आप वास्तवमें उलझे हुए हैं, तो आप देखते कि इन स्थूलताओंके भीतर एक महान् सूक्ष्म लोक है, जिसमें इस लोककी अपेक्षा अधिक ज्ञान, अधिक शक्ति, अधिक सुख और अधिक सुव्यवस्था है। वहाँके शासक स्थूल जगत्पर भी आधिपत्य रखते हैं और यहाँकी प्रगति एवं प्रवृत्तियोंमें उनकी मुख्य प्रेरणा रहती है। जैसे यह स्थूलशरीर आप नहीं हैं, इसके अन्दर रहनेवाले जीव हैं; वैसे ही पृथिवीमें, जलमें, अग्निमें,

वायुमें, चन्द्रमें, सूर्यमें, प्रत्येक ग्रहमण्डल और भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें एक एक दिव्य जीव निवास करता है, जिसको पृथ्वीदेवता, अग्निदेवता आदि नामसे कहते हैं। ये स्थूल पृथ्वीमण्डल, जलमण्डल आदि जिनके शरीर हैं, इनकी सुव्यवस्थित एक राजधानी है, सेवक हैं, सहायक हैं, न्यायधीश हैं और राजा हैं। पृथ्वीकी नियमित गति, जलकी नियमित धारा, अग्निकी उष्णता, स्थूल-जगत्के रोग-शोक, इन्हींके द्वारा नियन्त्रित हैं, मर्यादित हैं। इनका एक सगठित राज्य है और उनके पद और पदाधिकारी, उनके समय की अवधि सब कुछ नियमसे होता है। कोई प्रत्येक युगमें बदलते हैं, प्रत्येक मन्वन्तरमें बदलते हैं, कोई प्रत्येक कल्पमें बदलते हैं। कभी-कभी इन पदोंपर बड़े-बड़े तपस्वी जीव भी आ जाते हैं और कभी कभी ब्रह्मलोकसे आधिकारिक पुरुष भी भेजे जाते हैं। देवताओंके राजा इन्द्र हैं। न्यायाधीश धर्मराज हैं। कोषाध्यक्ष कुबेर हैं। इन सबके आचार व्यवहार, सामर्थ्य शक्तिके वर्णन वेदोंसे लेकर काव्यतक सम्पूर्ण संस्कृत साहित्यमें और बाइबलमें, कुरान आदि अन्य धर्मोंके ग्रन्थोंमें भी मिलते हैं।

हमारे पूर्वजोंको जो ऐसी महान् शक्ति प्राप्त हुई थी, वह इन्हीं देवताओं की उपासना और सम्बन्धका फल था। यह स्थूल जगत् तो सूक्ष्म जगत्की प्रतिच्छायामात्र है। सूक्ष्म जगत्से सम्बन्ध होनेपर और उसमें अधिकार प्राप्त होनेपर स्थूल जगत्में मनमाने परिवर्तन किये जा सकते हैं। लौकिक उन्नति करनेकी इच्छा हो तो वह सरलतासे सिद्ध हो सकती है। ये देवोपासनाके छोटे से-छोटे फल हैं। जो लोग इससे ऊपर उठते हैं, स्थूल शरीर और स्थूल जगत्को क्षणिक समझकर सूक्ष्म जगत्में ही विहार करना चाहते हैं, वे देवोपासनाके द्वारा स्वर्गमें कल्पभरके लिये स्थान प्राप्त कर सकते हैं। वे अपनी तपस्या और उपासनाके अनुसार इन्द्र हो सकते

हैं और इन्द्रकी तो बात ही क्या, ब्रह्मातक हो सकते हैं। देवोपासनाके द्वारा यह सब कुछ बहुत ही सुलभ है। इस युगमें सबसे बड़ा ह्रास इस देवोपासनाका ही हुआ है। अध्यात्मवादियोंने यह कह कर कि 'हम ब्रह्मलोकतकके भोगपर लात मारते हैं' और आधिभौतिकोंने यह कहकर कि 'सूक्ष्म लोक कोई वस्तु ही नहीं है' देवोपासनाका त्याग कर दिया। वर्तमान समय इस बातका साक्षी है कि दोनों ही अपने अपने प्रयासमें असफल हो रहे हैं। अधिकांश अध्यात्मवादियोंका वैराग्य उन लोकोंके न देखनेके कारण अथवा उनपर विश्वास न होनेके कारण है। यह कितने आश्चर्यकी बात है कि जो लोग इस जगत्के एक पुष्पके सौन्दर्य और सौरभ पर लुभा जाते हैं, वे सूक्ष्म लोकाके अतुलनीय भोगोंपर लात मारनेकी बात करते हैं। आधिभौतिकोंके सम्बन्धमें यहाँ कुछ कहना अप्रासङ्गिक है, क्योंकि उन बेचारोंको इस विषयमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। क्या ही अच्छा होता कि वे हमारे प्राचीन इतिहासोंको सत्य मानते और श्रद्धायुक्त विवेकसे काम लेकर देवताओंके अस्तित्व एव महत्वको मानते और उनकी सहायतासे शीघ्र से शीघ्र अपने लक्ष्यतक पहुँच जाते।

इस कथनका यह भाव कदापि नहीं है कि अध्यात्मवादी इन लोकोंके वैभव से विरक्त न हों। विरक्त तो होना ही चाहिये, परन्तु वह विरक्ति कामवञ्चना नहीं हो, पूर्ण हो। पूर्ण वैराग्यसे देवताओंकी उपासना बाधक नहीं साधक ही है। देवता रुष्ट हों तो इन्द्रियों और मनका सयम अत्यन्त कठिन हो जाता है। क्योंकि वे इनकी अधिष्ठातृदेवता हैं। इसीसे प्राचीनकालमें ऋषिगण यज्ञ-यागादिके द्वारा इनको सन्तुष्ट किया करते थे। देवताओंकी उपासनामें मुख्यता राजसूय, वाजपेय आदि वदिक यज्ञोंकी ही है। समस्त वेदान्ती और भक्त आचार्योंने एक स्वरसे स्वीकार किया है

कि ये यज्ञ देवोपासना आदि यदि सकामभावसे किये जाते हैं तो इस लोककी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले होते हैं और परलोकमें इन्द्रत्व और पारमेष्ठ्यको भी देनेवाले होते हैं। और यदि ये ही कर्म निष्काम भावसे किये जाते हैं तो अन्तःकरणको शुद्ध करके भगवान्की भक्ति अथवा तत्त्वज्ञानके हेतु होते हैं। चाहे सकाम हो या निष्काम, किसी भी अवस्थामें देवोपासना लाभदायक ही होती है। जो लोग इन्द्रियोंका संयम करके मनको एकाग्र एवं परमात्मामें स्थिर करना चाहते हैं, उनके लिये भी देवोपासना बड़ी सहायक है। सूर्यकी उपासनासे, जो कि उनके सामने बैठकर गायत्रीके जपसे होती है, ब्रह्मचर्य स्थिर होता है और आँखें बुरे विषयोंपर नहीं जातीं। नित्य और नैमित्तिक कर्मोंमें देवपूजाके जितने भी मन्त्र हैं, उनमें कहा गया है— अमुक देवता मेरी इन्द्रियोंको संयत करें, मनको विषयोंसे विमुख करें और अपराधोंकी पुनरावृत्ति न हो, ऐसी कृपा करें। सन्ध्या और पञ्चमहायज्ञ जैसे नित्यकर्म भी एक प्रकारसे देवोपासना ही हैं और देवताओंकी सहायता प्राप्त करते रहनेके लिये ही आयु जीवनसे उनका घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ दिया गया है।

वर्तमान युगमें सर्वसम्मतिसे यह स्वीकार कर लिया गया है कि गीता अध्यात्मशास्त्रका एक उज्ज्वल प्रकाश है। इसकी गम्भीरता, महत्ता और तात्त्विकता सर्वमान्य है। गीता-ग्रन्थमें प्रसङ्गवश कई बार देवपूजाका उल्लेख हुआ है। सात्त्विक पुरुषोंका वर्णन करते हुए स्पष्ट शब्दोंमें कहा गया है कि सात्त्विक पुरुष देवताओंकी पूजा करते हैं 'यजन्ते सात्त्विका देवान्'। शारीरिक तपोंमें सर्वप्रथम स्थान देवपूजाको ही प्राप्त है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक स्थलोंमें जैसे यज्ञके साथ प्रजाकी सृष्टि बतलाते हुए कहा गया है कि 'यज्ञके द्वारा तुम उन्नति करो। यज्ञ तुम्हारी समस्त कामनाओंको

पूर्ण करे, वहाँ स्पष्ट कहा गया है कि मनुष्य यज्ञके द्वारा देवताओंको प्रसन्न करे और देवता मनुष्योंको उन्नत करें। इस प्रकार एक दूसरेके सहकारी बनकर परम कल्याण प्राप्त करें। आगे चलकर तो यह भी कहा गया है कि संसारकी सम्पूर्ण सुख-सम्पत्ति देवताओंसे ही प्राप्त होती है। इसलिये उनकी चीज उनको दिये बिना जो भोगते हैं, वे एक प्रकारसे चोर हैं—'स्तेन एव स'। भगवान्‌की यह वाणी प्रत्येक साधकको सर्वदा स्मरण रखनी चाहिये कि इस यज्ञचक्रका जो अनुष्ठान नहीं करता, वह इन्द्रियोंके भोगोंमें रमनेवाला पापी व्यर्थ ही जीवन धारण करता है। भगवान्‌के ये वचन इतने स्पष्ट हैं कि इनकी टीका-टीप्पणी आवश्यक नहीं है। हाँ, यह बात अवश्य है कि भगवान्‌ने सकामताको हेय बतलाया है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि कर्मका ही त्याग कर दिया जाय। यज्ञ करके यज्ञका फल नहीं चाहना यह गीताका सिद्धान्त है। उपासना न करनेवालेकी अपेक्षा तो उपासना करनेवाला श्रेष्ठ ही है, चाहे वह सकाम भावसे ही क्यों न करता हो। पुराणोंमें और उपासनासम्बन्धी ग्रन्थोंमें ये बातें बहुत स्पष्ट रूपसे लिखी हुई हैं।

परमार्थदृष्टिसे परमात्माके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं होनेपर भी व्यवहारदृष्टिसे सब कुछ है और ज्यों-का-त्यों सत्य है। इसलिये यदि स्थूल लोक सत्य है, तो सूक्ष्म लोककी सत्यतामें कोई सन्देह नहीं रह जाता। फिर इनकी उत्पत्तिका क्रम और इनकी व्यवस्था भी स्वीकार करनी ही पड़ती है। मूलतः इस सृष्टिके कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता एकमात्र ईश्वर ही हैं। वही परम देव हैं। उन्हींको कर्त्तापनकी दृष्टिसे ब्रह्मा, धर्त्तापनकी दृष्टिसे विष्णु और हर्त्तापनकी दृष्टिसे शिव कहते हैं। ये तीनों नाम एक ही ईश्वरके हैं। इसलिये ये भी परम देव ही हैं। इन तीनोंमेंसे ब्रह्माकी

उपासना प्रचलित नहीं है, क्योंकि वे अपने कामको स्वाभाविकरूपसे करते रहते हैं और सृष्टिके लिये प्रार्थना करना आवश्यक नहीं है। संसारकी स्थितिके लिये अथवा संसारसे मुक्त होकर परमात्माको प्राप्त करनेके लिये उपासनाकी जाती है। यही कारण है कि विष्णु और शिवकी उपासना अधिक प्रचलित है। संसारकी विभिन्नताओंके स्वामीके रूपमें गणेशकी और प्रकाशकके रूपमें सूर्यकी उपासना होती है। इन सबके साथ, यों कहिये कि सबके रूपमें भगवान्की अचिन्त्य शक्ति है, इसलिये केवल शक्तिकी भी आराधना होती है। इस प्रकार विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश और शक्ति ये पाँचों भगवान् ही हैं। इसलिये उपास्यदेवोंमें इन्हींका मुख्य स्थान है। जिस देवताकी जो शक्ति होती है वही उसकी पत्नी है और शक्तिमान्के साथ शक्तिका अभेद है। सामान्य देवताओंसे विलक्षण होनेके कारण इन पाँचोंकी गिनती देवताओंमें नहीं है। समय समयपर इन सभीके अवतार हुआ करते हैं और इस प्रकार निखिल जगत्की रक्षा दीक्षा होती है।

सूक्ष्म जगत्के देवताओंमें अनेक भेद हैं—ब्राह्मस्वर्गके देवता, महेन्द्रस्वर्गके देवता और भौमस्वर्गके देवता। इनमें कुछ तो प्रजा रूपमें निवास करते हैं और कुछ अधिकारीरूपसे। उनके शरीरमें स्थूल पञ्चभूत बहुत ही न्यून परिमाणमें होते हैं और पृथ्वी, जलकी मात्रा तो नहींके बराबर होती है। इसीसे उन्हें पार्थिव भोजनकी आवश्यकता नहीं होती, केवल सूँघनेसे या अमृतपान करनेसे ही उनका जीवन परिपुष्ट रहता है। ब्राह्मस्वर्गमें तो गन्ध या पानकी भी आवश्यकता नहीं होती, इसलिये यज्ञ यागादिका सम्बन्ध अधिकांश माहेन्द्रस्वर्गसे ही है। भौमस्वर्गके देवता पितर हैं।

देवता दो प्रकारके होते हैं—एक नित्य देवता और दूसरे नैमित्तिक देवता। नित्य देवताओंका पद प्रवाहरूपसे नित्य होता है।

जैसे प्रत्येक प्रलयके बाद इन्द्रपद रहेगा ही। ऐसे ही दिक्पाल, लोकपाल आदिके भी पद हैं। इनके अधिकारी बदलते रहते हैं किन्तु पद ज्यों-का-त्यों रहता है। इस समय जो बली हैं, वे ही आगे इन्द्र हो जायँगे। इनके बदलनेका समय निश्चित रहता है। यह नियम प्रत्येक ब्रह्माण्डमें चलता है। नैमित्तिक देवताका पद समय-समयपर बनता है और नष्ट हो जाता है। जैसे कोई नवीन ग्रामका निर्माण हुआ तो उसके अधिकारीके रूपमें नये ग्रामदेवता बना दिये जायँगे। नवीन गृहके लिये नवीन वास्तुदेवता भी नियुक्त कर दिये जायँगे। परन्तु उस ग्राम और गृहके टूटते ही उनका वह अधिकार नष्ट हो जायगा। ग्राम देवताकी पूजासे ग्रामका और गृह देवताकी पूजासे गृहका कल्याण होता है। अब भी भारतके गाँवोंमें किसी न-किसी रूपमें ग्राम देवता गृह-देवताकी पूजा चलती है।

देवताओंकी संख्या नहीं हो सकती। जितनी वस्तुएँ हैं उतने ही देवता हैं। इसीसे शास्त्रोंमें देवताओंको असंख्य कहा गया है। तैंतीस करोड़का हिसाब अन्नपादने दिखलाया है। कहीं-कहीं देवताओंकी संख्या तैंतीस हजार तैंतीस सौ तैंतीस कही गयी है। मुख्यतः तैंतीस देवता माने गये हैं। उनकी संख्या इस प्रकार पूरी होती है—प्रजापति, इन्द्र, द्वादश आदित्य, आठ वसु और ग्यारह रुद्र। निरुक्तके दैवतकाण्डमें देवताओंके स्वरूपके सम्बन्धमें विचार किया गया है। वहाँके वर्णनसे यही तात्पर्य निकलता है है कि वे कामरूप होते हैं, वे स्वेच्छासे स्त्री, पुरुष या अन्य रूप धारण कर सकते हैं। वेदान्त दर्शनमें कहा गया है कि देवता एक ही समय अनेक स्थानोंमें भिन्न भिन्न रूपसे प्रकट होकर अपनी पूजा स्वीकार कर सकते हैं। देवताओंके सम्बन्धमें और भी बहुत-सी बातें ज्ञातव्य हैं, परन्तु विस्तारभयसे उनका उल्लेख नहीं

किया जाता है। अपने लोकमें वे जिस रूपसे निवास करते हैं, वही उनका स्थायी रूप माना जाता है। उसी रूपमें उनका ध्यान एवं उपासना की जाती है। वेदोंमें प्रायः सभी देवताओंका वर्णन आया है, जैसे इन्द्रके लिये 'वज्रहस्त पुरन्दर'। उनके कर्मका ही वर्णन है कि वे वर्षाके अधिपति हैं और वृत्रवध आदि कर्म करते हैं। वैदिक यज्ञोंके द्वारा देवताओंकी जिस प्रकारसे पूजा उपासना की जाती है, यहाँ उसका संक्षिप्त निदर्शन भी सम्भव नहीं है। तान्त्रिकपूजा पद्धतिके अनुसार कुछ देवताओंके ध्यान और मन्त्र लिखे जाते हैं।

इन्द्र

इन्द्रका वर्ण पीला है, उनके शरीरपर मयूरपिच्छके सदृश सहस्र नेत्रोंके चिह्न हैं, उनके एक हाथमें वज्र है और दूसरेमें कमल। अनेकों प्रकारके आभूषण धारण किये हुए हैं। दिक्पतियोंके स्वामी इन्द्रका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये। इन्द्रका मन्त्र है—ॐ इं इन्द्राय नमः।

अग्नि

अग्निका वाहन छाग है। सात ज्वालाएँ निक[illegible] शरीर स्थूल है, पेट लाल है, भौंह, दाढ़ी, बाल [illegible] वर्णकी हैं। हाथमें रुद्राक्षकी माला और शक्ति [illegible] है—ॐ अग्नये नमः।

कुबेर

कुबेर धनाध्यक्ष हैं। उनके दो हाथ हैं [illegible] है। पीताम्बर धारण किये हैं। सर्वदा प्रसन्न [illegible] स्वामी हैं और धन देनेवाले हैं। इस प्रकार [illegible] मन्त्रका जप करना चाहिये। कुबेरका मन्त्र है

वास्तुदेव

वास्तुदेवका शरीर सोनेके रंगका है। उनके शरीरसे लालिमा निकलती रहती है। कानोंमें श्रेष्ठ कुण्डल हैं। अत्यन्त शान्त, सौभाग्यशाली और सुन्दर वेश है। हाथमें दण्ड है। सब लोगोंके आश्रय एवं विश्वके बीज हैं। जो प्रणाम करता है, उसके भयको नष्ट कर देते हैं। ऐसे वास्तु पुरुषका ध्यान करना चाहिये। इनका मन्त्र यह है–ॐ वास्तुपुरुषाय नमः।

देवताओंकी उपासनासे सभी प्रकारके अभाव पूर्ण हो सकते हैं। अनुकूल होनेपर ये भगवत्प्राप्तिमें भी सहायक होते हैं। इसलिये इनकी उपासना करनी चाहिये। भिन्न भिन्न देवताओंकी उपासना पद्धति भी पृथक्-पृथक् है। जिसकी उपासना करनी हो, उसकी पद्धतिके अनुसार करनी चाहिये।

नवग्रहोंकी उपासना

हिंदूजातिमें प्राचीन कालसे जो अनेकों प्रकारकी धारणाएँ या प्रथाएँ प्रचलित हैं, उनमें नवग्रहोंकी उपासना भी है। यह केवल रूढिमात्र अथवा प्रथामात्र नहीं है, इसके मूलमें हमलोगोंके शरीरसे नवग्रहोंका सम्बन्ध और ज्योतिषकी दृष्टिसे सुपुष्ट विचार भी है। यह उक्ति प्राय सर्वत्र प्रसिद्ध है कि यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे अर्थात् जो कुछ एक शरीर में है, वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें है और जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें है, वह एक शरीरमें भी है। हिंदू शास्त्रोंके अनुसार यह सृष्टि केवल उतनी ही नहीं है जितनी हमलोग देखते हैं। इन्द्रियोंसे जो कुछ देखा या सुना जाता है वह तो बहुत ही स्थूल है। यन्त्रोंका तत्त्वविश्लेषण केवल जड़तत्त्वोंतक ही सीमित है, वह कभी चेतनाका साक्षात्कार नहीं कर सकता, क्योंकि वे यन्त्र स्वयं जड़ हैं। प्रत्येक स्थूल वस्तुके एक-एक अधिष्ठातृदेवता हैं यह बात युक्ति, अनुभव और शास्त्रसे सिद्ध है। जैसे स्थूल नेत्रगोलक, जिन्हें हम देखते हैं, नेत्रके अधिभूत रूप हैं। नेत्र इन्द्रिय अध्यात्म है, जो कि इस स्थूल गोलकके द्वारा देखती है। इस दर्शनक्रियाका सहायक जो सूर्य है वह नेत्रका अधिदैव रूप है। नेत्रगोलकके द्वारा स्थूल रूपको देखें, यह सूर्यकी शक्तिकी सहायता लिये बिना असम्भव है। इसलिये नेत्रके अधिष्ठातृदेवता सूर्य हैं। सूर्यके भी तीन रूप हैं। जिस सूर्यको हमलोग देखते हैं, वह सूर्यका स्थूल अथवा अधिभूत रूप है। दृश्यमान सूर्यमण्डलके अभिमानी देवताका नाम सूर्य है। उनका रथ सात घोड़ोंका है और अरुण सारथी है। शनैश्चर, यमराज आदि

उनकी सन्तान हैं। और भी देवताके रूपम सूर्यका जितना वर्णन आता है वह सब इस दृश्यमान सूर्यमण्डलके अभिमानी देवता का ही है। सूर्य का अध्यात्म रूप है समष्टिका नेत्र होना। इन तीन रूपोंको ध्यानमें रखनेसे ही शास्त्रोंमें आ सूर्यका वर्णन हुआ है वह समझमें आ सकता है। यह बात सभी देवताओंके सम्बन्धमें समझ लेनी चाहिये।

अब यह बात सिद्धान्तरूपसे मान ली गयी है कि सम्पूर्ण स्थूल जगत् सूक्ष्म जगत्का ही प्रकाशमात्र है। समष्टिके मनमें जो दर्शनकी इच्छा है वह नेत्रइन्द्रियके रूपमें प्रकट हुई है। इन दोनोंके अभिमानी देवता हैं सूर्य, इसलिये नेत्र इन्द्रियका सीधा सम्बन्ध सूर्यसे है। सूर्यकी प्रत्येक स्थितिका प्रभाव इस पृथ्वीपर और इसपर रहनेवाले प्राणियोंपर पड़ता है। जैसे यह स्थूल शरीर ही जीव नहीं है उससे भिन्न है, वैसे ही यह दृश्यमान पृथ्वी ही पृथ्वी देवता नहीं है, पृथ्वी देवताका शरीर है। इन सब स्थूलताओंका निर्माण सूक्ष्म जगत्की दृष्टिसे ही हुआ है। क्रम ही स्थूल बना है, इसलिये जो लोग सूक्ष्म जगत् पर विचार नहीं करते, केवल स्थूल जगत्में ही अपनी दृष्टिको आबद्ध रखते हैं, वे ठीक ठीक इसका मर्म नहीं समझ पाते। जैसे पृथ्वी, समुद्र, चन्द्रमण्डल, विद्युत्, उष्णता आदिसे सूर्यका साक्षात् सम्बन्ध है, वैसे ही उन पदार्थोंसे बने हुए मानवशरीरके साथ भी है। प्रत्येक शरीरकी उत्पत्तिके समय चाहे वह गर्भाधान का हो या भूमिष्ठ होनेका हो, सूर्य और इतर ग्रहोंका पृथ्वीके साथ जैसा सम्बन्ध होता है और ग्रहचारपद्धतिके अनुसार उस प्रदेशमें, उस प्रकृतिके शरीरपर उनका प्रभाव पड़ता है वह जीवनभर किसी-न किसी रूपमें चलता ही रहता है। ग्रहमण्डलकी स्थिति, देशविशेषपर उनका विशेष प्रभाव और देहगत उपादानोंकी विभिन्नताके कारण प्रत्येक शरीरका ग्रहोंके साथ भिन्न सम्बन्ध होता

है और उसीके अनुसार फल भी होता है। प्रत्येक ग्रहके साथ पृथ्वीका और उसपर रहनेवाली वस्तुओंका जो महान् आकर्षण विकर्षण चल रहा है, उसके प्रभावसे कोई बच नहीं सकता और जगत्के परिवर्तनोंमें, अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियोंमें, सुख दुःखके निमित्तमें यह महान् शक्ति भी एक कारण है—इस सत्यको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसीसे योगसम्पन्न महर्षियोंने अपनी अन्तर्दृष्टिसे इस तत्त्वका साक्षात्कार करके जीवनोंके हितार्थ इसे प्रकट किया है।

संसारमें जो घटनायें घटती हैं उनके अनेकों कारण बतलाये जाते हैं—जीवका प्रारब्ध अथवा पुरुषार्थ, समष्टिकर्ता ईश्वरकी इच्छा अथवा प्रकृतिका नियमित प्रवाह। इन घटनाओंके साथ ग्रहोंके आकर्षण विकर्षणका क्या सम्बन्ध है? उपर्युक्त बलवान् कारणोंके रहते हुए जगत्के कार्योंमें वे क्या नवीनता ला सकते हैं? यह प्रश्न उठानेके पहले उन सबके एकत्वका विचार कर लेना चाहिये।

समष्टिकर्ताकी इच्छा ही प्रकृतिका प्रवाह है। प्रकृतिके सात्त्विक, राजसिक और तामसिक प्रवाहोंके अनुसार ही ग्रहोंकी निश्चित गति और जीवोंका प्रारब्ध है। इन गति और प्रारब्धोंके अनुसार ही पुरुषार्थ और फल होते हैं। शरीरकी उत्पत्ति प्रारब्धके अनुसार होती है, जिसका जैसा कर्म, उसका वैसा शरीर। जिस शरीरमें प्रारब्धके अनुसार जैसी कामवासनाएँ रहती हैं, उस जीवनमें जैसी घटनाएँ घटनेवाली होती हैं, उसीके अनुसार उस शरीरके जन्मके समय वैसी ही ग्रहस्थिति रहती है। यों भी कह सकते हैं कि वैसी ग्रहस्थितिमें ही उसका जन्म होता है अथवा ग्रहोंकी एक स्थितिमें रहनेपर भी भिन्न भिन्न देश और शरीरके भेदसे उनका भिन्न भिन्न प्रभाव पड़ता है। इसीसे ज्योतिषशास्त्रमें

कहा गया है की ग्रह किसी नवीन फलका विधान नहीं करते, बल्कि प्रारब्धके अनुसार घटनेवाली घटनाको पहले ही सूचित कर देते हैं—'ग्रहा वै कर्मसूचकाः' ग्रहोंकी स्थिति, गति, वक्रता, अतिचार आदिको जाननेवाला ज्योतिषी किसी भी व्यक्तिके जन्म-समयको ठीक-ठीक जानकर बतला सकता है कि इसके भविष्य जीवनमें कौन कौन सी घटनाएँ घटित होनेवाली हैं। स्थूल कर्म-चक्रके अनुसार केवल इतनी ही बात हैं, गणितकी सत्यताको इसरूपमें पाश्चात्य देशोंमें ग्रहोंकी स्थितिका अध्ययन करके गणितके आधारपर फलित ज्योतिष उसी प्रकार प्रतिष्ठित किया गया है, जैसे हिंदूशास्त्रोंमें। परन्तु यह बात इतनेसे ही समाप्त नहीं हो जाती, इसके आगे भी कुछ है।

हिंदुओंका देवता-विज्ञान इन स्थूल कार्यकारण परम्परा और सम्बन्धोंसे और भी ऊपर जाता है। मानस-शास्त्रके वेत्ताओंने एक स्वरसे यह बात स्वीकार की है कि शुद्ध, परिपुष्ट एवं बलिष्ठ मनके द्वारा स्थूल जगत्में अघटित घटना भी घटित की जा सकती है। यदि हम उन सूक्ष्मताओंके भी अन्तस्तलमें स्थित हो जायँ, जो स्थूल घटनाओंकी कारण हैं, तो हम न केवल स्थूल जगत्में, बल्कि सूक्ष्म जगत्में भी परिवर्तन कर सकते हैं। इस मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे विचार करनेपर यह सिद्ध होता है कि ग्रहोंके द्वारा भावी घटनाओंका ज्ञान हो जाने पर मानसिक साधनाके द्वारा उन्हें रोका भी जा सकता है। प्राचीन ऋषियों, योगियों और सिद्ध पुरुषोंके द्वारा ऐसा किया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि मन ऐसी स्थितिमें भी जा सकता है, जहाँसे वह घटनाओंका विधान और अवरोध कर सकता है। परन्तु सर्वसाधारणके पक्षमें यह बात दुःसाध्य है। इसलिये उन्हें ग्रहमण्डलाधिष्ठातृदेवताकी शरण लेनी पड़ती है। जिसके शरीरपर शनिग्रहका दुष्प्रभाव पड़ रहा है या

पड़नेवाला है, वह यदि सूर्यमण्डलके अभिमानी देवताका आश्रय ले और पूजा, पाठ, जप आदिके द्वारा यह अनुभव कर सके कि सूर्य देवता मुझपर प्रसन्न हैं, तो बहुत अंशमें उसका अरिष्ट शान्त हो जायगा और वह अपनेको सूर्यग्रहजन्य पीड़ासे बचा सकेगा। ग्रहशान्तिकी ये दोनों प्रणालियाँ शास्त्रीय हैं—पहलीका नाम अहंग्रह-उपासना और दूसरीका प्रतीक-उपासना है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि यह सूर्यदेवता केवल उपासनाके लिये ही हैं। वास्तवमें समस्त देवताओंका अलग अलग अस्तित्व है और सबके लोक, शक्ति, वाहन, क्रिया आदि अलग-अलग बँटे हुए हैं। जबतक विभिन्न शरीर, लोक, वस्तु, और नक्षत्रमण्डल प्रभावित हो रहा है, तबतक इनमें रहनेवाले देवताओंको अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

वर्तमान कालमें सम्पूर्ण संसार राष्ट्रविप्लव, पारस्परिक द्रोह, पारिवारिक वैमनस्य, ईर्ष्या द्वेष, रोग शोक और उद्वेग अशान्तिसे सर्वथा उपद्रुत हो रहा है। इसके अनेक कारणोंमें देवताओंकी उपेक्षा और उनसे प्राप्त होनेवाली सहायताका अस्वीकार कर देना भी है। अन्तर्जगत्के नियमानुसार देवताओंको जागतिक पदार्थोंके उत्पादन, विनिमय और वितरणका अधिकार प्राप्त है। मनुष्य देवताओंको सन्तुष्ट करें और देवता मनुष्योंको समृद्धि एवं अभिवृद्धिसे सम्पन्न करें। परन्तु मनुष्योंने अपनी बुद्धि और पुरुषार्थका मिथ्या आश्रय लेकर स्वयं ही आत्मवञ्चना कर ली है, जिसका यह सब, जो दुःख-दारिद्र्यके रूपमें दीख रहा है, फल है। वेदोंने और तदनुयायी शास्त्रोंने एक स्वरसे ग्रहशान्तिकी आवश्यकता स्वीकार की है। अथर्ववेदमें सब देवताओंकी पूजाके साथ साथ ग्रह-शान्तिका भी वर्णन आता है—

शनो ग्रहाश्चान्द्रमसा· शमादित्याश्च राहुणा...इत्यादि ।

प्राचीन आर्योंमें इस वैदिक मर्यादाका पूर्णरूपसे पालन होता था, इसीसे वे सुखी थे। आज भी जहाँ प्राचीन प्रथाओंका पालन होता है, वहाँ प्रत्येक शान्तिक और पौष्टिक कर्मोंमें पहले नवग्रहकी पूजा होती है। यह ध्यान रखना चाहिये कि इस पूजाका सम्बन्ध उन उन मण्डलोंमें रहनेवाले देवताओंसे है। यहाँ संक्षेपमें नवग्रहके ध्यान और मन्त्रका उल्लेख किया जाता है। पूजा-पद्धतिके अनुसार उनका अनुष्ठान करना चाहिये।

सूर्य

सूर्य ग्रहोंके राजा हैं। यह कश्यपगोत्रके क्षत्रिय एवं कलिङ्गदेशके स्वामी हैं। जपाकुसुमके समान इनका रक्तवर्ण है। दोनों हाथोंमें कमल लिये हुए हैं, सिन्दूरके समान वस्त्र, आभूषण और माला धारण किये हुए हैं। सिन्दूरके समान जगमगाते हुए हीरे, चन्द्रमा और अग्निको प्रकाशित करनेवाला तेज, त्रिलोकीका अन्धकार दूर करनेवाला प्रकाश। सात घोड़ोंके एकचक्र रथपर आरूढ़ होकर सुमेरुकी प्रदक्षिणा करते हुए, प्रकाशके समुद्र भगवान सूर्यका ध्यान करना चाहिये। इनके अधिदेवता शिव हैं और प्रत्यधिदेवता अग्नि। इस प्रकार ध्यान करके मानस पूजा और बाह्य पूजाके अनन्तर मन्त्र जप करना चाहिये। सूर्यके अनेक मन्त्रोंमेंसे एक मन्त्र है—'ॐ ह्रीं ह्रीं सूर्याय नमः'।

चन्द्रमा

भगवान् चन्द्रमा अत्रिगोत्रीय हैं। यामुन देशके स्वामी हैं। इनका शरीर अमृतमय है। दो हाथ हैं—एकमें वर-मुद्रा है, दूसरेमें गदा। दूधके समान श्वेत शरीरपर श्वेत वस्त्र, माला और अनुलेपन धारण किये हुए हैं। मोतीका हार है। अपनी सुधामयी किरणोंसे तीनों लोकको सींच रहे हैं। दस घोड़ोंके त्रिचक्र रथपर

आरूढ होकर सुमेरुकी प्रदक्षिणा कर रहे हैं। इनके अधिदेवता हैं उमादेवी और प्रत्यधिदेवता जल हैं। इनका मन्त्र है— 'ॐ ऐं क्लीं सोमाय नम'।

मङ्गल

मङ्गल भरद्वाजगोत्रक क्षत्रिय हैं। ये अवन्तिके स्वामी हैं। इनका आकार अग्निके समान रक्तवर्ण है, इनका वाहन मेष है, रक्तवस्त्र और माला धारण किये हुए हैं। इनके अङ्ग अङ्गमें कान्तिकी धारा छलक रही है। मेषके रथपर सुमेरुकी प्रदक्षिणा करते हुए अपने अधिदेवता स्कन्द और प्रत्यधिदेवता पृथ्वीके साथ सूर्यके अभिमुख जा रहे हैं। मङ्गलका मन्त्र है—'ॐ हुँ श्रीं मङ्गलाय नम'।

बुध

बुध अत्रिगोत्र एव मगध देशके स्वामी हैं। इनके शरीरका वर्ण पीला है। चार हाथोंमें ढाल, गदा, वर और खड्ग है। पीला वस्त्र धारण किये हुए हैं, बड़ी ही सौम्य मूर्ति है, सिंहपर सवारी है। इनके अधिदेवता हैं नारायण और प्रत्यधिदेवता हैं विष्णु। इनका मन्त्र है 'ॐ ऐं स्त्रीं श्रीं बुधाय नम'।

बृहस्पति

बृहस्पति अङ्गिरागोत्रके ब्राह्मण हैं। सिंधुदेशके अधिपति हैं। इनका वर्ण पीत है, पीताम्बर धारण किये हुए हैं, कमलपर बैठे हैं। चार हाथोंमें, रुद्राक्ष, वरमुद्रा, शिला और दण्ड धारण किये हुए हैं। इनके अधिदेवता ब्रह्मा हैं और प्रत्यधिदेवता इन्द्र। इनका मन्त्र है—'ॐ ऐं क्लीं बृहस्पतये नम'।

शुक्र

शुक्र भृगुगोत्रक ब्राह्मण हैं। भोजकट देशके अधिपति हैं। कमलपर बैठे हुए हैं। श्वेत वर्ण है, चार हाथोंमें रुद्राक्ष, वरमुद्रा

सारे के सारे संसारी सम्बन्ध ग्रस्त हैं । इसीसे चाहनेपर भी उनमें स्थायित्व नहीं आता । भगवान्‌के प्रेममें ये सब बातें नहीं होतीं, क्योंकि प्रेम मृत्युसे भी ठोस, अमर है, प्रकाशरूप है, रस है । वियोग तो इसकी वृद्धिमें सहायक है । प्रतिकूलतामें प्रियतमकी इच्छा पूर्तिका सुख है । प्रेम अपने विषय प्रियतम और आश्रय दोनोंको अपनी गोदमें लेकर झूला झुलाता रहता है । दोनोंकी शक्ल सूरत, आकार-प्रकार बनाता सजाता रहता है । कहीं अन्त नहीं है । वृन्दावनमें प्रियाप्रियतमको लता-वृक्ष, कीट-पतंग, पशु और पक्षियोंके रूपमें भी स्त्री पुरुष बनाकर यही प्रेम भिन्न भिन्न प्रकारका रसास्वादन कराता है—'**स्त्री राधा पुरुष कृष्णो विज्ञेयो व्रजमध्यग** ।' प्रेम कभी किसी भी निमित्तसे या बिना निमित्त स्वभावसे टूटने वाली वस्तु नहीं है ।

५-सूक्ष्मतमम्—प्रेम इतना सूक्ष्म होता है कि वह प्रेमीकी नस-नसमें व्याप्त हो जाता है । उसकी एक-एक क्रिया, सोना जागना सब प्रेमसे भर जाता है । प्रेमी समझता है कि मैं अपने लिये खाता पीता हूँ, लेकिन दरअसल वह अपने प्रियतमके लिये ही खाता पीता है । उसके हृदयकी सूक्ष्मतामें प्रियतम ही प्रियतम रहता है ।

एक जु मेरी अँखियनमें निसि द्यौस रह्यो करि भौंन ।
गाइ चरावन जात सुन्यो सखि सो धौं कन्हैया कौन ॥

या पश्यन्ति प्रियं स्वप्ने धन्यास्ता सखि योषितः ।
अस्माकं तु गते कृष्णे गता निद्रापि वैरिणी ॥

'सखि वे धन्य हैं, जो स्वप्नमें अपने प्यारेका दर्शन प्राप्त करती हैं । हमारी तो यह स्थिति है कि कृष्णके साथ निद्राने भी वैर साध लिया—वह भी मुझे छोड़कर चली गयी । यह प्रेमकी

श्री हरिः

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट के उद्देश्य

१. स्वामी श्री अखण्डानन्दजी सरस्वती तथा अन्य महात्माओंके प्रवचन, सत्सङ्ग, ग्रन्थ, जीवन, आत्मकथा आदिका सङ्कलन, सम्पादन, अनुवाद और प्रकाशन।

२. वेद, स्मृति, दर्शन, इतिहास-पुराण तथा तत्सम्बन्धी अनुसन्धानपूर्ण गम्भीर साहित्यका प्रकाशन तथा तदनुकूल सनातन धर्मका प्रचार, प्रसार करके जन-जीवनको उन्नत बनाना।

३. किसी भी भाषामें, दैनिक, साप्ताहिक आदि पत्र-पत्रिकाओंकी सामग्री संग्रह करके अनुवाद, सम्पादन एवं प्रकाशन करवाना, उसका विक्रय या वितरण करना।

४. इन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये प्रेस, विभिन्न प्रकारकी मशीन, रेकार्ड आदि प्राप्त करना।

८ उपर्युक्त उपायों में किसी एक या सभीके द्वारा समाजकी उन्नतिके लिये प्रयत्न करना ।

९ उपर्युक्त उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये सम्पत्तिकी व्यवस्था संरक्षण और संवर्द्धन करना ।

१० उपर्युक्त गतिविधियोंका लाभ जाति, समुदाय अथवा धर्मका भेदभाव किये बिना उन सभी व्यक्तियोंको उपलब्ध होगा जो इन उद्देश्योंमें रुचि रखते हैं और ऐसा लाभ प्राप्त करने योग्य हैं ।

ट्रस्टीगण

८. उपर्युक्त उपायोंमें किसी एक या सभीके द्वारा समाजकी उन्नतिके लिये प्रयत्न करना।

९. उपर्युक्त उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये सम्पत्तिकी व्यवस्था, संरक्षण और संवर्द्धन करना।

१०. उपर्युक्त गतिविधियोंका लाभ जाति, समुदाय अथवा धर्मका भेदभाव किये बिना उन सभी व्यक्तियोंको उपलब्ध होगा जो इन उद्देश्योंमें रुचि रखते हैं और ऐसा लाभ प्राप्त करने योग्य हैं।

ट्रस्टीगण :

सर्वश्री वल्लभदास वी. मरीवाला सर्वश्री हेमलता रतनसी खटाउ

हरिकृष्णदास अग्रवाल	फूलचन्द कागली
जे. एम. कामदार	कुसुम एच. कणिया
लक्ष्मीबाई सेवकराम	चन्द्रकांत पी. मर्चेन्ट
रुक्मिणीदेवी जालान	रतनसी मोरारजी खटाउ
कृष्णदास गोविन्दराम	म प्रेमानन्द 'दादा'